UNIVERSAL
LIBRARY

OU_186163

UNIVERSAL
LIBRARY

भारतीय ग्रन्थमाला; संख्या ५

भारतीय सहकारिता आंदोलन

—०—

लेखक

शंकरसहाय सकसेना,

एम.ए.(इकान.),एम.ए.(काम.),बी.काम.

अर्थशास्त्र प्रोफ़ेसर, बरेली कालेज, बरेली

रचयिता

प्रारम्भिक अर्थशास्त्र, आर्थिक भूगोल, पूर्व की राष्ट्रीय जागृति, गांवों की समस्याएं, आदि

—०—

प्रकाशक

भारतीय ग्रंथमाला, दारागंज, प्रयाग

—०—

दूसरा संस्करण | सन् १९४४ ई० | मूल्य पौने तीन रुपये

प्रकाशक :—
भगवानदास केला
व्यवस्थापक,
भारतीय ग्रन्थमाला,
दारागंज (प्रयाग)

[इस पुस्तक के पहले पांच फार्म अर्थात् पृष्ठ १ से ८० तक लिबर्टी प्रेस दारागंज, प्रयाग में छपे है। शेष पृष्ठ और कवर नारायण प्रेस, प्रयाग, में छपे हैं।]

Checked 1969

मुद्रक :—
गयाप्रसाद तिवारी बी० काम
नारायण प्रेस,
नारायण बिल्डिङ्ग, प्रयाग।

समर्पण

श्रीमन् पंडित शंकरप्रसाद भार्गव

एम. ए., एल-एल. बी.

प्रिंसिपल, राजऋषी, कालेज, अलवर,

भूतपूर्व प्रिंसिपल सनातन धर्म कालेज, कानपूर।

गुरुदेव !

जिस वस्तु को आपके चरणों में बैठकर प्राप्त किया है, वही भेंट करने चला हूँ; यह धृष्टता समझी जा सकती है, किन्तु मैं तो इस पुस्तक को परीक्षा रूप में लेकर उपस्थित हुआ हूँ। आशा है कि आप इसे स्वीकार का मुझे कृतार्थ करेंगे।

शंकर

निवेदन

'भारतीय सहकारिता आन्दोलन" के दूसरे संस्करण को लेकर पाठकों के सामने उपस्थित होते हुए हृदय को अत्यन्त हर्ष हो रहा है। सम्भवतः मैं इस विषय पर पुस्तक लिखने का प्रयास भी न करता, यदि श्रीयुत भगवानदास जी केला मुझे पुस्तक लिखने पर वाध्य न कर देते। श्री केला जी साहित्यिक तपस्वी हैं, भारतीय ग्रान्थमाला के द्वारा अर्थशास्त्र तथा राजनीति साहित्य उत्पन्न करके उन्होंने हिन्दी की महान् सेवा की है। कोई भी उनके सम्पर्क में आकर मातृभाषा को पुष्पाँजलि चढ़ाये बिना नहीं रह सकता। यही मेरे साथ हुआ। केला जी को हिन्दी में 'सहकारिता' पर एक भी पुस्तक का न होना खटक रहा था। स्वयं अन्य पुस्तकों के लिखने में व्यस्त होने के कारण उन्होंने मुझे पकड़ा, और मुझे यह पुस्तक लिखनी पड़ी।

सहकारिता आन्दोलन के बिना भारतवर्ष के ग्रामों का उद्धार नहीं हो सकता। रूस आयर्लैंड, डेनमार्क, तथा इटली में तो इस आन्दोलन की बदौलत किसानों की काया पलट गई। भारतवर्ष में जहाँ किसानों के जीवन मरण का प्रश्न उपस्थित है, बिना इस आन्दोलन के गति ही नहीं है। अंग्रेजी में इस विषय पर हज़ारों सुन्दर ग्रन्थों की रचना हो चुकी है, किन्तु इन पुस्तकों से अंग्रेज़ी न पढ़े हुए देशवासी कोई लाभ नहीं उठा सकते। हिन्दी भाषा भाषी इस आन्दोलन की अद्भुत राष्ट्रनिर्माण-शक्ति को जान सकें, इसी उद्देश्य से यह पुस्तक लिखी गई थी।

इस पुस्तक के पहले संस्करण का आशा से अधिक स्वागत हुआ। संयुक्तप्रान्त, मध्यप्रान्त, ग्वालियर, इंदौर तथा अन्य राज्यों के सहकारिता विभागों ने इस पुस्तक का यथेष्ट प्रचार किया। कई स्थानों पर यह सहकारिता विभाग के कर्मचारियों के लिये पाठ्य पुस्तक बना दी गई। कुछ ग्राम-सुधार संस्थाओं ने इसको प्रोत्साहन दिया। इससे यह प्रमाणित होता है कि हिन्दी जगत को इस प्रकार की पुस्तक की आवश्यकता थी।

पिछले दस वर्षों में सहकारिता आन्दोलन की गति विधि में बहुत महत्वपूर्ण परिवर्तन हुये हैं। उदाहरण के लिये फुटकर एक-उद्देश्य वाली सहकारी समितियों के स्थान एक गाँव में एक ही बहु-उद्देश्य वाली सहकारी समिति को स्थापित करने का प्रस्ताव, ग्राम्य सहकारी-साख समिति के दायित्व को परिमित कर देने का प्रस्ताव, रिजर्व बैंक का सहकारी साख आन्दोलन इत्यादि से सम्बन्ध, इत्यादि। भारतमें सन् १९३५ के शासन विधान के अनुसार प्रान्तों में उत्तरदायी मंत्रिमण्डलों की स्थापना हुई, और उन्होंने सहकारिता आन्दोलन का उपयोग ग्राम-सुधार, गृह उद्योग-धंधों की उन्नति तथा गाँवों के स्वास्थ्य-सुधार और कृषि-सुधार के लिये किया और उसे खूब प्रोत्साहन दिया।

इसी समय में बिहार, मध्यप्रान्त, बरार, सिंध, बङ्गाल तथा कई अन्य प्रान्तों में सहकारिता आन्दोलन के नवीन संगठन की योजनाएँ बनाई गयीं। इसके उपरांत महायुद्ध आरम्भ हुआ और उसका भी इस आन्दोलन पर गहरा प्रभाव पड़ा। अस्तु, इन सभी बातों को ध्यान में रखकर पुस्तक का संशोधन किया गया है। लेखक ने इस बात की भरसक चेष्टा की है कि आन्दोलन का स्पष्ट और सम्पूर्ण रूप पाठकों के सामने रख दिया जावे।

भविष्य में भारतीय राष्ट्र निर्माण योजना में हमें सहकारिता आन्दोलन का बहुत अधिक उपयोग करना पड़ेगा। उसकी सहायता के बिना

भारतीय आर्थिक समस्याओं में से बहुतों का हल निकाल सकना असम्भव होगा। इस दृष्टि से विचारवान व्यक्ति को, विशेषकर उन रचनात्मक कार्य करने वालों को, जो देश के सामाजिक तथा आर्थिक जीवन का नव-निर्माण करना चाहते हैं, यह पुस्तक सहकारिता आन्दोलन का पूर्ण परिचय करा दे, इसका विशेष ध्यान रखा गया है।

जहाँ-जहाँ लेखक को ऐसा अनुभव हुआ है कि विदेशों में सहकारिता के द्वारा उन समस्याओं को सफलतापूर्वक हल किया गया है, जो आज हमारे देश के सामने उपस्थित हैं, वहाँ वहाँ विदेश की उन सहकारी संस्थाओं का भी विवरण दे दिया गया है।

मुझे विश्वास है कि पुस्तक भारत के असंख्य निर्धन मज़दूरों और ग्रामवासियों की सेवा करने वाली गैरसरकारी संस्थाओं, उनसे सम्बन्ध रखने वाले सरकारी विभागों के कार्यकर्ताओं, तथा इस विषय का अध्ययन करने वाले विद्यार्थियों के लिए विशेष उपयोगी होगी।

बरेली — **शंकरसहाय सकसेना**

विषय सूची

परिच्छेद.	विषय.	पृष्ठ
१	सहकारिता के सिद्धान्त	१
२	भिन्न भिन्न प्रकार की सहकारी समितियाँ	१८
३	भारतीय ग्रामीण ऋण	३६
४	सहकारिता आन्दोलन का श्रीगणेश और सहकारिता कानून	६६
५	कृषि सहकारी साख समितिया	८६
६	नगर सहकारी साख समितिया	१०१
७	सेन्ट्रल बैङ्क तथा बैङ्किग यूनियन	१०६
८	प्रान्तीय बैङ्क या सर्वोपरि बैङ्क	१२३
६	सहकारी भूमि-बन्धक बैङ्क	१३४
१०	सहकारिता आन्दोलन का पुनः निर्माण	१५३
११	दूध सहकारी समितियां	१६४
१२	चकबन्दी समितियाँ	१७५
१३	सफ़ाई तथा स्वास्थ्य रक्षक समितियाँ	१८४
१४	क्रय-विक्रय समितियाँ	१६६
१५	कृषि सम्बन्धी समितियाँ	२०८
१६	उत्पादक सहकारी समितियाँ	२१६
१७	उपभोक्ता स्टोर, गृह-निर्माण और बीमा समितियाँ	२३०
१८	अन्य सहकारी समितियाँ	२४५
१६	निरीक्षण, प्रचार और शिक्षा	२५४
२०	ग्राम सुधार और सहकारिता	२६७
२१	उपसंहार	२७४
....	शब्दावली	२६०

भारतीय सहकारिता आन्दोलन

प्रथम परिच्छेद

सहकारिता के सिद्धान्त

समाज मे रह कर मनुष्य विना एक दूसरे के साथ सहयोग किये एक दिन भी अपना काम नहीं चला सकता। सभ्यता के प्रारम्भिक काल मे भी मनुष्य-समाज सहकारिता के सिद्धान्तों को समझता था और व्यवहारिक जीवन में उसका उपयोग भी करता था। यदि मनुष्य-समाज सहकारिता को न अपनाता तो मनुष्य-जाति आज इतनी उन्नत तथा सभ्य कदापि न होती। आज से हजारो वर्ष पहले ही अनुभव से यह ज्ञात होगया था कि मनुष्य-जीवन, बिना एक दूसरे के साथ सहयोग किये असम्भव होजायगा।

आज कल का युग प्रतिस्पधो का युग कहा जाता है। साधारणतया यह समझा जाता है कि जो प्रतिस्पर्धा में नहीं ठहर सकता उसके लिये संसार में कोई स्थान नहीं है, इस कारण लोगों की यह धारणा बन गई है कि मनुष्य-जीवन का मूल मन्त्र प्रतिस्पर्धा है, किन्तु देखने से ज्ञात होता है कि मनुष्य-जीवन का मूल मन्त्र सहकारिता है, न कि प्रतिस्पर्धा। मनुष्य एक दूसरे पर अपनी साधारण आवश्यकताओं के लिए इतना

निर्भर है कि यदि एक दिन के लिये भी उसको दूसरों का सहयोग न मिले तो उसका जीवन ही कष्टकमय हो जावे।

समाज में प्रत्येक मनुष्य की कार्य शक्ति एक सी नहीं है। सहकारिता तथा श्रम-विभाग के बिना मनुष्य, समाज में रह कर, अपनी आवश्यकताएँ पूरी नहीं कर सकता। मनुष्य-समाज की उन्नति तथा सभ्यता के विकास के लिये यह आवश्यक है कि पूर्ण श्रम-विभाग का सिद्धान्त काम में लाया जावे। यदि अधिक क्षमता वाले मनुष्य ऐसे साधारण कार्यों में अपनी शक्ति का दुरुपयोग करें, जिनको साधारण क्षमता वाले मनुष्य भी कर सकते हैं, तो समाज तथा मनुष्य की व्यक्तिगत उन्नति में भारी बाधा पड़ेगी। मनुष्य जाति तभी उन्नति कर सकती है, जब मनुष्य को अपनी कार्य-शक्ति के अनुसार किसी एक कार्य में विशेष योग्यता प्राप्त करने का अवसर दिया जावे। उदाहरण के लिये किसी भी वस्तु के तैयार कराने में हमें सैकड़ों मनुष्यों का सहयोग प्राप्त करना पड़ता है। मध्यप्रान्त अथवा बम्बई प्रान्त का किसान कपास उत्पन्न करता है। कपास उत्पन्न करने में उसे स्वयं बहुत से मनुष्यों का सहयोग प्राप्त करने की आवश्यकता पड़ती है। महाजन, जमींदार, बढ़ई, लुहार तथा मजदूर सभी उसे कपास उत्पन्न करने में सहायता देते हैं। दलाल, आढतिया तथा व्यापारी उस कपास को मोल लेकर अथवा व्यवसायियों के लिये खरीद कर जिनिङ्ग फैक्टरी में ले जाते हैं। जिनिङ्ग फैक्टरियों में सैकड़ों मजदूरों के द्वारा कपास ओटी जाती है और गाँठों में बाँध कर अहमदाबाद, बम्बई अथवा जापान के औद्योगिक केन्द्रों को भेज दी जाती है। इस कार्य में भी बैलगाड़ी, मोटर, रेल और जहाजों पर कार्य करने वाले, तथा व्यापारियों का सहयोग होता है।

इसके उपरान्त कारखानों में हजारों मजदूरों मिस्त्रियों तथा अन्य कार्यकर्ताओं की सहायता से कपड़ा तैयार किया जाता है। अन्त में वह कपड़ा रेलों, जहाजों, तथा बैलगाड़ियों और मोटरों के द्वारा दूकानदारों के पास आता है। ग्राहक उसको खरीद कर दर्जी से कोट, कमीज इत्यादि बनवाता है, तब कहीं वह वस्त्र पहिन सकता है। जब तक इतने लोग एक दूसरे के साथ सहयोग न करेंगे, वस्त्र तैयार नहीं हो सकते। इसी प्रकार किसान गाँवों में रह कर गेहूँ तथा अन्य अनाज उत्पन्न करता है, और नगरों में निवास करने वाले अध्यापक, क्लर्क, डाक्टर, वकील तथा दूसरे लोग उस गेहूँ को खाते हैं। गेहूँ उत्पन्न करने में तथा उसे शहरों तक लाने में सैकड़ों मनुष्यों की सहायता की आवश्यकता होती है। कोई भी काम ले लिया जावे, बिना सहयोग के वह सरलता पूर्वक नहीं हो सकता। आज हम लोगों का जीवन एक दूसरे के सहयोग पर इतना अधिक निर्भर है कि यदि सहकारिता के सिद्धान्त को त्याग दिया जावे तो यह ध्यान में भी नहीं आसकता कि संसार का कार्य कैसे चल सकेगा। मनुष्य की शक्ति सहकारिता में छिपी हुई है, और सहकारिता के द्वारा ही उसकी उन्नति हो सकती है।

मनुष्य जाति अब सहकारिता के सिद्धान्त को भली भाँति समझ गई है, और इसको मनुष्य जीवन के लिये आवश्यक समझती है। समाज में निर्बल और सबल बुद्धिमान और मन्दबुद्धि, साहसी और कायर, चतुर और मूर्ख, शीघ्र कार्य करने वाले तथा आलसी—सभी प्रकार के मनुष्य हैं, यदि समाज को उन्नति की ओर अग्रसर होना है तो इन सब को एक साथ काम करना होगा। यदि समाज प्रतिस्पर्धा के सिद्धांत

कौं अपनाले तो समाज की उन्नति ही रुक जावेगी। कुछ लोगों का कहना है कि मनुष्य जीवन एक भयङ्कर संग्राम है और इस संग्राम में वही जीवित रहकर सफल हो सकता है, जो संग्राम में ठहर सके। जो निर्बल हैं—जो जीवन-संग्राम में ठहर नहीं सकते, उनके लिये यहाँ कोई स्थान नहीं है। उनका कहना है कि यदि इस संग्राम में सबलों को निर्बलों की सहायता के लिये जाना पड़ा या अपनी गति को मन्द करना पड़ा तो उनकी व्यक्तिगत उन्नति में बाधा पड़ेगी; व्यक्तिगत उन्नति तथा यशोपार्जन के लिये सहकारिता नहीं, प्रतिस्पर्धा की आवश्यकता है, सहकारिता इसके लिए घातक सिद्ध होगी। सहकारितावादी शक्तातिजीवन के सिद्धान्त को स्वीकार नहीं करते। यह सिद्धान्त मनुष्य को समाज के ऊपर बिठा देता है, व्यक्तिगत इच्छाओं की पूर्ति के लिये सामूहिक स्वार्थ को ठुकरा कर अपने पथ पर अग्रसर होना ही इस सिद्धान्त के मानने वालों का उद्देश्य होता है। यह सिद्धान्त व्यक्तिगत लाभ के लिये सामूहिक लाभ को नष्ट करने की शिक्षा देता है और समाज में घोर असमानता उत्पन्न करता है। आधुनिक युग में पूँजीपतियों और श्रमजीवियों में जो भयङ्कर संग्राम छिड़ा हुआ है, "पूँजीपतियों को नष्ट करदो" की जो आवाज चारों ओर से सुनाई देरही है, वह इस सिद्धान्त के द्वारा उत्पन्न हुई आर्थिक असमानता के कारण ही उठाई गई है।

शक्तातिजीवन के सिद्धान्त को अपनाने का परिणाम हुआ व्यक्तिवाद का उदय; और उसने पूँजीवाद को जन्म दिया,। पूँजीवादी युग में प्रतिस्पर्धा उद्योग धन्धों का जीवन-प्राण समझा जाता है। लोगों का कहना है कि बिना प्रतिस्पर्धा किये एक फैक्टरी दूसरी फैक्टरी को बाजार में किस प्रकार हरा

सकती है और जब तक एक कारखाना दूसरे कारखानों से प्रतिस्पर्धा न करे तक तक वह आगे कैसे बढ़ सकता है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि आज के औद्योगिक सङ्गठन में प्रतिस्पर्धा का बहुत महत्व है परन्तु यदि ध्यान पूर्वक देखा जावे तो प्रतिस्पर्धा तभी प्रारम्भ होती है, जब सहयोग का पूरा उपयोग कर लिया जाता है; नहीं तो बड़े बड़े कारखानों को कच्चा माल तक न मिले। साथ ही प्रतिस्पर्धा के उपरान्त वे ही कारखाने फिर सहयोग भी करते हैं। उदाहरण के लिए बैङ्क और रेलवे एक दूसरे से प्रतिस्पर्धा करते हैं, परन्तु 'क्लियरिङ्गहाउस' स्थापित करके सहयोग के द्वारा बहुत से व्यर्थ के परिश्रम को बचा लेते हैं। इसी प्रकार बड़े बड़े कारखाने यद्यपि प्रतिस्पर्धा करते हैं पर साथ ही मिल-मालिक सङ्घ इत्यादि स्थापित करके अपने सामूहिक स्वार्थों की रक्षा करते हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि आज के पूँजीवादी युग में भी उद्योग धन्धों का मूल आधार प्रतिस्पर्धा न होकर सहकारिता ही है, परन्तु एक स्थिति में वह प्रतिस्पर्धा को भी अपनाता है। इस प्रतिस्पर्धा का परिणाम यह होता है कि समाज में कुछ थोड़े से व्यक्ति सम्पत्तिवान और धनवान हो जाते हैं उनके पास इतनी अधिक सम्पत्ति इकट्ठी हो जाती है कि वे राज्य को भी अपने संकेतों पर चलाते हैं और अधिकांश जनसमूह निर्धनता और निर्धनता का जीवन बिताता है। समाजवादी इस भयङ्कर आर्थिक असमानता को दूर करने के लिये ही पूँजीवाद को समाप्त कर देना चाहते हैं।

आधुनिक आर्थिक सङ्गठन में एक छोटी मात्रा में माल उत्पन्न करने वाला कारीगर-जुलाहा सूती कपड़े की मिल की प्रतिस्पर्धा में टिक नहीं सकता, उसे विवश होकर अपनी आर्थिक स्वतन्त्रता से हाथ धोना पड़ता है; वह उसी

कपड़ के मिल में काम करता है, जहाँ पूँजीपति उसका शोषण करने में सफल होता है। छोटा दूकानदार बड़े बड़े व्यवस्थित स्टोरों की प्रतिस्पर्धा में सफल नहीं होता। यही नहीं, यदि एक निर्धन व्यक्ति खेती अथवा अन्य किसी उत्पादन कार्य के लिए ऋण लेता है तो उसे ७½ प्रतिशत तक सूद देना पड़ता है और एक बड़ा मिल-मालिक ६ प्रतिशत में ही लाखों की पूँजी पाजाता है। कहाँ तक कहा जावे यदि एक निर्धन व्यक्ति आटा दाल इत्यादि आवश्यक वस्तुएँ थोड़े थोड़े पैसों की खरीदता है तो उसको रद्दी खाद्यवस्तु ऊँचे भाव में मिलती है, और यदि कोई धनी व्यक्ति इकट्ठी सामग्री लेता है तो उसे बढ़िया वस्तु उचित मूल्य पर मिल जाती है। इससे यह सिद्ध होता है कि आज के सङ्गठन में जो निर्बल हैं, निर्धन हैं और जिनमें सबल और धनिकों की प्रतिस्पर्धा में खड़े होने की क्षमता नहीं है, उनके लिए कोई स्थान नहीं है। तो क्या हमें इन असंख्य निर्धन और निर्बल व्यक्तियों को नष्ट हो जाने देना चाहिये? समाज के सामने यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है, जिसका निपटारा होना आवश्यक है।

समाज अपने निर्बल सदस्यों को ठीक उसी प्रकार नष्ट होते नहीं देख सकता, जिस प्रकार माता पिता अपने लँगड़े अथवा लूले पुत्र को मरते नहीं देख सकते। समाज का मूल मन्त्र शक्तिजीवन न होकर "निर्बलों की रक्षा" होना चाहिये। यदि हम चाहते हैं कि समाज में उत्पन्न हुई घोर आर्थिक विषमता के कारण, हमें भयङ्कर क्रांतियों का सामना न करना पड़े तो हमें सहकारिता को अपनाना होगा। सहकारिता निर्बलों की रक्षा करती है, वह उनको निर्बल नहीं रहने देती, वरन् उनको सङ्गठित करके शक्तिवान बनाने का प्रयत्न करती

है। सहकारिता आन्दोलन उन लोगों की उन्नति में बाधक नहीं होता जो कि शक्तिवान हैं और प्रतिस्पर्धा में अपने पैरों पर स्वय खड़े हो सकते हैं। सहकारिता का ऐसे लोगों से कोई सम्बन्ध नहीं है। वह तो केवल निर्धन तथा निर्बलों का आन्दोलन है; पारस्परिक सहायता और सहानुभूति इसके मुख्य सिद्धान्त है और सेवा इसका लक्ष्य है।

यह तो पहले ही कहा जा चुका है कि मनुष्य का कोई भी कार्य बिना दूसरों के सहयोग के नहीं हो सकता, किन्तु आधुनिक औद्योगिक सङ्गठन में धन-वितरण की प्रणाली इतनी दूषित है कि जो लोग उत्पादन कार्य में सहयोग देते हैं, उन्हें उचित हिस्सा नहीं मिलता, कुछ लोग तो उचित से अधिक पा जाते हैं, और अधिक संख्या वालों को जो कि निर्बल हैं, अपना हिस्सा भी नहीं मिलता। मिल में काम करनेवाला मजदूर, जो मिल को सफलतापूर्वक चलाने के लिये उतना ही आवश्यक है जितना कि पूँजीपति अथवा मिल-मेनेजर, बहुत थोड़ी मजदूरी पाता है, और मेनेजर और पूँजीपति अनुचित रूप से सम्पत्ति का अधिक भाग हड़प कर जाते हैं। किसान गेहूँ उत्पन्न करता है, दलाल, थोक व्यापारी तथा दूकानदार साधारण गृहस्थ को गेहूँ पहुँचाने में सहयोग करते हैं; किन्तु गेहूँ का जो मूल्य ग्राहक देता है उसका बहुत थोड़ा अंश किसान को मिलता है, और दलाल, थोक व्यापारी, तथा दूकानदार उसका अधिक अंश खा जाते हैं। किसान को खेत की पैदावार का इतना कम मूल्य मिलता है कि खेत का खर्चा निकालने पर उसके लिये बहुत कम बचता है, वह उसके परिश्रम को देखते हुए कुछ भी नहीं होता। रेलवे लाइन को डालने का ठेका बड़े बड़े ठेकेदार लेते हैं, वे हजारों

मजदूरों तथा कारीगरों को रख कर काम कराते हैं, काम करनेवाले मजदूरों और कारीगरों को बहुत कम मजदूरी देकर, ठेकेदार सारा लाभ डकार जाता है। सहकारिता धन-वितरण की अन्यायपूर्ण प्रणाली को स्वीकार नहीं करती और इसको नष्ट कर देना चाहती है। सहकारिता आन्दोलन वर्तमान दूषित प्रणाली का विरोध करता है और प्रत्येक मनुष्य को, जिसने सम्पत्ति के उत्पादन कार्य में सहयोग दिया है, उसके परिश्रम के अनुपात में सम्पत्ति देने का समर्थन करता है।

सम्पत्ति का उत्पादन केवल पूँजी के ही द्वारा नहीं होता, इसके लिए श्रम की भी आवश्यकता होती है। पूँजीपति को अपनी पूँजी पर सूद तो मिलना ही चाहिए, साथ ही वह जोखिम भी उठाता है उसके लिए भी उसे कुछ लाभ मिलना चाहिए। बेचारे मजदूर को तो पूँजीपति पूरी मजदूरी भी नहीं देते। अस्तु यह सब तथा अन्य, खर्चे निकाल कर भी कुछ अतिरिक्त लाभ बचता है। प्रश्न होता है कि वह अतिरिक्त लाभ किसको दिया जावे? आधुनिक औद्योगिक सङ्गठन मे तो यह सारा का सारा पूँजीपतियों को मिलता है। श्रमजीवी समुदाय इस कारण क्षुब्ध हो उठा है। जब मजदूर लोग देखते है कि उन्हे कठिन परिश्रम करने पर भी भरपेट भोजन नहीं मिलता और पूँजीपति अनन्त धन राशि प्रति वर्ष हड़प जाते है तो स्वभावतः वे लोग असन्तुष्ट हो जाते हैं। क्रमश औद्योगिक देशो में श्रमजीवी समुदाय आज सङ्गठित हो गया है और इस अत्याचार को सहन नहीं करना चाहता। ट्रेड-यूनियन आन्दोलन इसी प्रयत्न का फल है। समाजवाद तो पूँजीपतियों के अस्तित्व को ही नष्ट कर देना चाहता है। वह तथा श्रमजीवी आन्दोलन लाभ को केवल मजदूरो के ही लिए सुरक्षित रखना

चाहता है। सहकारिता अतिरिक्त लाभ का न्यायपूर्ण विभाजन करना चाहती है और किसी एक वर्ग को दूसरे वर्ग पर अत्याचार नहीं करने देती।

सहकारिता आन्दोलन एक आर्थिक आन्दोलन है। आज आर्थिक संगठन इस प्रकार का बन गया है कि पूँजीपति श्रमजीवी वर्ग का शोषण कर रहे हैं। फल-स्वरूप श्रमजीवी समुदाय पूँजीपतियों के अस्तित्व को नष्ट करदेना चाहता है। दोनों वर्गों में भयंकर युद्ध छिड़ा हुआ है; दोनों एक दूसरे को दबाने का प्रयत्न कर रहे हैं। सहकारिता आन्दोलन एक ऐसी समाज का निर्माण करना चाहता है जिसमें इस प्रकार युद्ध न होगा, जहां भिन्न भिन्न वर्ग एक दूसरे का साथ देंगे, और आर्थिक विषमता का यह भयंकर रूप नष्ट हो जायगा। "जब समाज के निर्बल सदस्य किसी भी आर्थिक कार्य अर्थात् उत्पत्ति उपभोग, विनिमय, तथा वितरण में सम्मिलित प्रयत्न से उत्पन्न हुए लाभ को आपस में न्यायपूर्ण प्रणाली से बाँट लें तो ऐसे सङ्गठन को सहकारी समिति कहेंगे।" कुछ लोग सहकारी समितियों की तलना ट्रेड-यूनियन से करते हैं, किन्तु सहकारी समितियाँ इससे भिन्न हैं। ट्रेड-यूनियन आधुनिक आर्थिक सङ्गठन को स्वीकार करती है और केवल श्रमजीवी समुदाय की आर्थिक स्थिति को सुधारना चाहती है; यदि पूँजीपति मज़दूरों की मांग को स्वीकार नहीं करते तो ट्रेड-यूनियन हड़तालों के द्वारा उनको विवश कर देती है। सहकारी समितियों के कार्य का ढङ्ग दूसरा ही है, ट्रेड-यूनियन विघातक कार्य करती हैं, और सहकारी समितियां रचनात्मक कार्य करती हैं।

प्रत्येक आर्थिक हलचल में सहकारिता के सिद्धान्तों का उपयोग किया जा सकता है। सहकारिता के सिद्धान्त को

पूर्णतया समझने के लिये यह आवश्यक है कि हम सहकारी समितियों तथा आधुनिक औद्योगिक संस्थाओ का भेद समझ लें। मानलो कि कुछ मोची अपनी आर्थिक स्थिति को सुधारने की दृष्टि से, अपनी थोड़ी-थोड़ी पूँजी को लेकर एक सङ्गठन में सम्मिलित होते हैं और निश्चय करते है कि वे सम्मिलित रूप में जूते का व्यवसाय करेंगे, समिति के कार्य का संचालन करने मे प्रत्येक सदस्य का समान अधिकार होगा, और वार्षिक लाभ सदस्यों की पूँजी के अनुपात में न बांटा जाकर, सदस्यो की जूतो की उत्पत्ति के अनुपात में बांटा जावे, तो ऐसी समिति को सहकारी उत्पादक समिति कहेंगे। सहकारी उत्पादक समितियो तथा मिश्रित पूँजी वाली कम्पनियो मे यही भेद है कि एक तो मनुष्यों का संघ है और दूसरा पूँजी का संघ है। मिश्रित पूँजी वाली कम्पनियो मे कार्य-संचालन का अधिकार तथा लाभ, हिस्सेदारों को पूँजी के अनुपात मे ही मिलता है। उत्पादक सहकारी समतियों के संगठन मे मज़दूर, पूँजी को किराये पर लेकर, धन्धे की जोखिम उठाते हैं, किंतु पूँजी वाली कम्पनियों में हिस्सेदार स्वयं कार्य न करके मज़दूरो को नौकर रखते हैं और धन्धे की जोखिम उठाते हैं। उत्पादक सहकारी समितियां पूँजी के लिये उचित सूद दे देती हैं और लाभ आपस मे बांट लेती हैं। किन्तु मिश्रित पूँजी वाली कम्पनियों में निश्चित मज़दूरी देकर मज़दूर रखे जाते हैं और लाभ हिस्सेदारों में पूँजी के अनुपात में बांट दिया जाता है। सहकारी समितियो में पूँजी को अधिक महत्व नही दिया जाता। उसको, सम्पत्ति उत्पन्न करने के लिये, एक साधन मात्र समझा जाता है। यही कारण है कि समिति के प्रत्येक सदस्य को केवल एक 'वोट' मिलती है, उसका समिति के कार्य-सञ्चालन में उतना ही

अधिकार होता है जितना कि किसी दूसरे सदस्य का; परन्तु मिश्रित पूँजी वाली कम्पनियों में पूँजी का ही सर्वोच्च स्थान होता है. धन्धे का लाभ तथा कार्य-सञ्चालन-अधिकार हिस्सेदारों में पूँजी के अनुपात में दिया जाता है।

सहकारी समितियों और मिश्रित पूँजी वाली कंपनियों मे एक और मौलिक भेद है। एक बार स्थापित हो जाने के उपरान्त कंपनी नये हिस्सेदारों को नहीं लेती। अतएव जब कंपनी सफलता पूर्वक चलने लगती है और ढेरों लाभ देने लगती है तो उसका सौ रुपये का हिस्सा हजारों रुपयों में बिकता है। लेकिन सहकारी समिति का द्वार सदैव खुला रहता है। जब भी कोई व्यक्ति चाहे, उसका सदस्य बन सकता है, अतएव उसके हिस्सों का मूल्य कभी बढ़ता नहीं। यही नहीं, कंपनियों में एक व्यक्ति चाहे जितने हिस्से खरीद सकता है और उसी के अनुपात में उसे कंपनी के प्रबंध में हिस्सा मिलता है, किन्तु सहकारी समिति में प्रत्येक व्यक्ति जितने हिस्से चाहे उतने नहीं ले सकता और यदि हिस्से कम और अधिक भी हों तो प्रत्येक सदस्य को केवल एक वोट का अधिकार होता है।

इन दोनों में एक भेद और भी है, जो अत्यन्त महत्वपूर्ण है। मिश्रित पूँजी वाली कम्पनियों की सफलता, अन्य कम्पनियों की प्रतिद्वन्दता में सफलता पूर्वक खड़े रहने पर निर्भर है। प्रत्येक कंपनी का अपना एक व्यक्तित्व होता है, और प्रत्येक कंपनी दूसरी कम्पनियों को कुचल कर आगे बढ़ने का प्रयत्न करती है। सहकारिता आन्दोलन इस व्यक्तिवाद के सिद्धान्त को नही मानता। सहकारी समितियां एक दूसरे की प्रतिद्वन्दिता में नहीं खड़ी होतीं। वे मिल कर एक संघ की स्थापना करती हैं, और

उसके संरक्षण में कार्य करती है। यह संघ सहकारी समितियों को एक दूसरे की प्रतिस्पर्धा नहीं करने देता। यद्यपि यह स्वीकार करना पड़ेगा कि व्यवहार में प्रतिस्पर्धा बिलकुल नष्ट नहीं हो गई है—और यहां तक सहकारिता आन्दोलन को अपने ध्येय में असफल ही कहना चाहिए—किन्तु इससे यह न समझना चाहिए कि यह सिद्धान्त ही गलत है। बात यह है कि समाज का संगठन ही दूषित है, और जब तक सहकारिता के सिद्धान्तों के अनुसार समाज संगठित नहीं हो जाता, तब तक प्रतिस्पर्धा जड़ से नष्ट नहीं हो सकती। यदि उपभोक्ता भी अपने को सहकारी समितियों में संगठित करलें, और फिर संगठित उत्पादक सहकारी समितियों से अपनी आवश्यक वस्तुओं को खरीदें तो प्रतिस्पर्धा को नष्ट किया जा सकता है। सहकारिता आन्दोलन का यही लक्ष्य है। अस्तु, सहकारिता तथा अन्य प्रणालियों में यही मुख्य भेद है कि एक प्रतिस्पर्धा का समूल नाश करना चाहती है, दूसरी प्रतिस्पर्धा को स्वीकार करती है। यह तो पूर्व ही कहा जाचुका है कि अभी तक यह सिद्धान्त पूर्ण रूप से कार्य में परिणत नहीं हो सका है।

सहकारिता आन्दोलन केवल सम्पत्ति उत्पन्न करने वालों की ही रक्षा नहीं करता, यह सब वर्गों को सहायता पहुँचाता है। आधुनिक औद्योगिक संगठन में उपभोक्ता का वस्तुओं के मूल्य-निर्धारण में कोई हाथ नहीं होता, और न धन्धों के संचालन में ही उसकी आवाज सुनी जाती है। उत्पादकों तथा उपभोक्ताओं के बीच में अगणित दलाल काम करते हैं, जो उपभोक्ता तथा उत्पत्ति करने वालों को लूटते हैं। उपभोक्ता वस्तु का जो मूल्य देता है, उसका बहुत थोड़ा अंश उत्पत्ति करनेवाले को मिलता है, अधिक अंश तो दलालों की जेब में जाता है। सहकारिता आन्दोलन जहां यह प्रयत्न करता है कि उत्पादकों

को अधिक से अधिक लाभ हो, वहां उसका यह भी प्रयत्न होता है कि उपभोक्ताओं को सस्ते दामों पर वस्तुएँ मिलें, जिससे कि उनका बोझ हलका हो। यदि देखा जावे तो लाभ उपभोक्ताओं से मिलता है; यदि उपभोक्ता तैयार माल को न ले तो केवल उत्पत्ति से लाभ नहीं मिल सकता। अस्तु, सहकारिता आन्दोलन केवल श्रमजीवी तथा पूँजीपति को ही लाभ का अधिकारी नहीं मानता, वरन उपभोक्ताओं को भी लाभ के कुछ अंश का हक़दार समझता है। सहकारिता के सिद्धान्तानुसार, समाज में केवल दो वर्ग होने चाहिए, उत्पादक और उपभोक्ता। किन्तु इस पूँजीवाद के युग में उपभोक्ता तथा उत्पादक के बीच में अगणित दलाल हैं, जो दोनों वर्गों को लूट रहे हैं। सहकारिता दलालों के द्वारा इन दोनों वर्गों के शोषण का घोर प्रतिवाद करती है और दोनों वर्गों को संगठित करके इतना समीप लाना चाहती है कि फिर दलालों की आवश्यकता ही न पड़े। दलालों को अपने स्थान से हटा देना सहकारिता आन्दोलन का मुख्य उद्देश्य है।

अब एक प्रश्न यह उठता है कि धन्धों का नियन्त्रण किस वर्ग के हाथ में होना चाहिये; धन्धों का संचालन उपभोक्ता करें, अथवा उत्पादक। इस विषय में सहकारिता आन्दोलन में कार्य करनेवालों के दो मत हैं। एक मत के लोग कहते हैं कि उपभोक्ता वर्ग को धन्धों का संचालन करना चाहिये, दूसरे मत के लोग यह अधिकार उत्पादक वर्ग को देना चाहते हैं। सहकारिता आन्दोलन में कार्य करनेवालों का बहुमत इस पक्ष में है कि खेती-बारी को छोड़कर अन्य धन्धों के संचालन का अधिकार उपभोक्ता को होना चाहिए, और इन धन्धों में काम करनेवालों की स्थिति मजदूरी पानेवालों से अच्छी नहीं होगी। जहां-जहां

उपभोक्ता सहकारी समितियों का सगठन हुआ है और उनके सम्मिलित संघ ने स्वयं आवश्यक वस्तुओं को तैयार करने के लिए मिल और कारखाने खोले हैं, उनमे काम करने वाले मजदूरों को उस कारखाने के संचालन मे कोई अधिकार नहीं है। यद्यपि इन कारखानों में मजदूरों की स्थिति साधारणत कारखानों से बहुत अच्छी होती है, किन्तु उनका कोई अधिकार नहीं होता। हां, यदि वे भी उन उपभोक्ता समितियों के सदस्य होते हैं, जिनके सम्मिलित संघ ने उस कारखाने को चलाया है, तो वे उस रूप में उस कारखाने की व्यवस्था में भाग लेते हैं। मजदूरों को व्यवस्था में भाग न लेने देने का कारण यह भी है कि उससे व्यवस्था के शिथिल हो जाने का भय रहता है। जिन समितियों में उत्पादक ही सदस्य होते हैं और वे ही मजदूर होते हैं, वहां व्यवस्था उन्हीं के हाथ में रहती है। किन्तु कहीं कहीं ऐसा देखने में आता है कि ऐसी समितियों में भी, उन सहकारी साख समितियों अथवा सहकारी उपभोक्ता समितियों का व्यवस्था में अधिक अधिकार रहता है, जो उत्पादक समितियों को पूँजी देती हैं। ऐसी दशा में उत्पादक समिति के सदस्य अर्थात् मजदूरों का व्यवस्था में नाम-मात्र को अधिकार होता है। जहां तक सहकारिता आन्दोलन उत्पादकों को उस धंधे की व्यवस्था का अधिकार नहीं दिला सका है, वहां तक उसको अपने लक्ष्य में असफल ही समझना चाहिए।

यद्यपि सहकारिता आन्दोलन विशेषकर आर्थिक आन्दोलन है, किन्तु इसकी नींव ऊँचे आदर्श पर जमाई गई है। यह आन्दोलन समाज में एक नवीन भावना को जागृत करता है। स्वावलम्बन तथा भ्रातृभाव ही वह भावना है, जिसके बल पर यह आन्दोलन खड़ा किया गया है। सहकारिता आन्दोलन समाज में

किसी एक वर्ग का अत्याचार सहन नहीं करता, वह तो समाज के सदस्यों में आत्मनिर्भरता तथा भाईचारे का भाव उत्पन्न करता है। सब मिलकर एक उद्देश्य के लिए प्रयत्न करें, यही सहकारिता का अर्थ है। व्यक्तिवाद को हटाकर सहकारिता आन्दोलन सामूहिक स्वार्थ को प्रधानता देता है। पूँजीवाद के युग में व्यक्तिगत स्वार्थ की प्रधानता है, किन्तु सहकारिता समूह को व्यक्ति के ऊपर रखती है।

पूँजीवाद के युग मे आर्थिक असमानता तथा अन्य दोषों के कारण समाज घबरा उठा है। कोई कोई तो पूँजीवाद को समूल नाश कर देना चाहते हैं। समाजवाद इसी असमानता को नष्ट करने का एक प्रयोग है। किन्तु सहकारिता आन्दोलन समाजवाद के सिद्धांतो को स्वीकार नहीं करता। जो लोग संसार के देशों को समाजवादी होने से बचाना चाहते है, उन्हे सहकारिता आन्दोलन की शरण मे आना चाहिए। बीसवीं शताब्दी में सहकारिता आन्दोलन ने यथेष्ट उन्नति की है; और आशा है भविष्य में इसका अधिकाधिक उपयोग समाज के निर्बल सदस्यो की आर्थिक स्थिति के सुधारने में किया जावेगा।

भारतवर्ष के लिये सहकारिता का सिद्धान्त नया नहीं है। भारतीय समाज अत्यन्त प्राचीन काल से सहकारिता का उपयोग करता आ रहा है। यद्यपि वर्तमान रूप में सहकारी समितियाँ इस देश के लिए नई वस्तु हैं, किन्तु सिद्धान्त रूप से तो सहकारिता हिन्दू समाज के जीवन में ओत-प्रोत है। सम्मिलित कुटुम्ब, जो कि हिंदुओं की एक अत्यन्त प्राचीन सामजिक संस्था है, सहकारी संस्था नहीं तो क्या है? आज भी बहुत से कार्य गांवों में किसान लोग सामूहिक रूप में करते हैं। संयुक्तप्रान्त के ईख उत्पन्न करने वाले किसानों में यह बात बहुत से गावों में प्रचलित

है कि वे एक या दो कोल्हू मिलकर मोल ले लेते हैं अथवा किराये पर ले आते हैं तथा बारी-बारी से अपनी ईख पेर लेते हैं। अपने अर्थशास्त्र में सामूहिक रूप से कार्य करने के लिये आदेश करते हुए, आचार्य कौटिल्य ने कई बार सहकारिता का महत्व बतलाया है। प्राचीन काल में कारीगरों के संघ भारतवर्ष में बहुत थे, जिनका विवरण वेदों तथा मनुस्मृति में मिलता है। 'रूरल इकनामिक्स' नामक पुस्तक में लिखते हुए, श्री० एम. एल डार्लिंग ने पञ्जाब के गांवों के विषय में जो विवरण दिया है उससे ज्ञात होता है कि वहां गांवों में आज भी सामूहिक रूप से बहुत सा कार्य होता है। किसी किसी गांव में दो से दस तक किसान सम्मिलित होकर एक वर्ष के लिये भूमि जोतते हैं। फसल के कटने पर पैदावार को, प्रत्येक किसान द्वारा खेत पर किये गये काम तथा उसके बैलों के उपयोग के अनुपात से, बांट दिया जाता है। यह वार्षिक साझेदारी कभी कभी कई वर्षों तक चलती है। बहुत से गांवों में जब फसल पकने पर होती है तो एक रखवारा खेतों की देख भाल के लिए रख लिया जाता है। फसल काटने तथा दौनें के समय भी पड़ोसी एक दूसरे की सहायता करते हैं। प्रत्येक घर के मनुष्य गांव के कुओं की मरम्मत के लिये बारी-बारी से काम करते हैं। कहीं कहीं गांव के लोग सड़क भी मिल कर बनाते हैं। मदरास प्रान्त में, सहकारिता आन्दोलन के श्रीगणेश के पूर्व, 'निधि' स्थापित हो चुकी थीं। निधियां एक प्रकार की अर्ध-सहकारी संस्था होती हैं।

लेखक को कई बार राजस्थान में यात्रा करने का अवसर मिला है और उसे यह देख कर अत्यन्त आश्चर्य हुआ कि वहां बहुत से गांवों में समाज शुद्ध सहकारिता का उपयोग करता है। राजस्थान के दक्षिण में मेवाड़ का प्रसिद्ध राजपूत राज्य है,

जिसकी राजधानी उदयपुर है। उदयपुर से लगभग ३० मील की दूरी पर मैनार नामक एक गांव है। बहुत समय हुआ जब कि उदयपुर के महाराओं ने यह गांव कुछ ब्राह्मणों को दान कर दिया था। आज भी वह गांव उन्हीं ब्राह्मणों की संतान के अधिकार में है। दो हजार की आबादी वाले इस गांव में अधिकतर ब्राह्मण लोगों की बस्ती है। पंचायत ने कुछ निम्न जाति के लोग बसा लिये हैं जो कि गांव की सेवा करते हैं। पञ्चायत यहां का शासन करती है। गांव के बीच में एक शिवालय है जो कि पञ्चायत का न्यायालय है। प्रति दिन पञ्च लोग वहीं बैठ कर गांव की समस्याओं पर विचार करते हैं और मुकदमों को निपटाते हैं। मन्दिर में एक पुजारी रहता है, जिसको पञ्चायत थोड़ी सी भूमि दे देती है। घर पीछे पञ्चायत छटांक भर घी, सवा सेर तेल, पावभर रुई प्रति वर्ष मन्दिर के खर्चे के लिये लेती है।

मेवाड़ में सिंचाई के लिये तालाबों का उपयोग अधिक होता है। मैनार में एक विशाल जलाशय है, जिसका क्षेत्रफल लगभग तीन वर्ग मील होगा। प्रति वर्ष, वर्षा के पूर्व पंचायत उसके बांध की मरम्मत करवाती है। यह मरम्मत गांववाले स्वयं कर लेते हैं। नियम यह है कि गांव का प्रत्येक पुरुष, स्त्री तथा लड़का एक घन फुट मिट्टी खोद कर बांध पर डाले। गांव की लड़कियों से यह कार्य नहीं लिया जाता, क्योंकि हिन्दुओं में लड़की को पूज्य समझा जाता है। पञ्च लोग खुदी हुई भूमि को नाप लेते हैं। यदि गांव को किसी बाहरी आदमी अथवा गांव से, राजकीय अदालतों में मुक़दमा लड़ना होता है तो पंचायत घर पीछे कर लगा देती है। यदि कोई पंडित मिल जाता है तो पंचायत उसको रखलेती है और वह गांव के लड़कों को पढ़ाता है। राजस्थान के गाँवों में नदी नालों का, जिनमें कि पानी सदा

बहता हो, अभाव है, और गरमियों में पशु जब चरने को जाते हैं तो उनको जल का कष्ट होता है; इस कारण वहाँ यह नियम सर्वत्र प्रचलित है कि प्रत्येक किसान बारी-बारी से एक दिन कुए पर अपने बैल और चरस लेकर उपस्थित रहता है और जब गांव के पशुओं को जल की आवश्यकता हो तो उन्हें जल पिलाता है। भारतवर्ष मे ऐसे बहुत से प्रांत हैं जहां के ग्रामीण जीवन में हमें शुद्ध सहकारिता का स्वरूप देखने को मिलता है। किन्तु जहां जहां पश्चिमी सभ्यता का प्रभाव अधिक पड़ गया है, वहां व्यक्तिवाद के कारण सामूहिक जीवन नष्ट हो गया है।

भारतवर्ष जैसे कृषि-प्रधान देश में जहां कि कृषि ही मनुष्यों की जीविका का प्रधान साधन है, सहकारिता आंदोलन कितना आवश्यक है, यह आगे के परिच्छेदो में स्पष्ट हो जावेगा। यदि पुरानी संस्थाओं को पुनर्जीवित किया जावे और उन्हे आधुनिक सहकारी संस्थाओं का रूप देदिया जावे तो देश में ग्राम-सुधार का कार्य सफलता-पूर्वक हो सकता है।

द्वितीय परिच्छेद

भिन्न भिन्न प्रकार की सहकारी समितियाँ

पिछले परिच्छेद में सहकारिता के सिद्धांतों की चर्चा की गई है। उससे स्पष्ट हो जाता है कि सहकारिता आन्दोलन का उपयोग प्रत्येक आर्थिक समस्या के हल करने में किया जासकता है। वास्तव में सहकारिता आन्दोलन का क्षेत्र इतना विस्तृत है

कि किसी भी देश में सब प्रकार की सहकारी समितियों की एक सी उन्नति दिखाई नहीं देती। यदि इंगलैंड में उपभोक्ता-सहकारी-स्टोर्स को आश्चर्यजनक सफलता मिली है, जर्मनी में सहकारी साख समितियों तथा बैंकों ने आशातीत सफलता प्राप्त की है, फ्रांस ने उत्पादक सहकारी समितियों की ओर अधिक ध्यान दिया है, इटली में श्रमजीवी सहकारी समितियां विशेष सफल हुई हैं तो डैनमार्क ने सहकारिता का उपयोग खेती-बारी के लिये किया है। भारतवर्ष में सहकारी साख समितियां ही अधिक संख्या में दृष्टिगोचर होती हैं। बात यह है कि प्रत्येक देश ने अपनी आवश्यकता को पूरा करने के लिये सहकारिता आंदोलन का उपयोग किया है। जहां जिस प्रकार की सहकारी समितियों की अधिक आवश्यकता थी, वहां उसी प्रकार की समितियां स्थापित की गईं। हमें अब देखना यह है कि सहकारी समितियां कितनी तरह की होती हैं, और उनकी विशेषता क्या है।

यदि हम समाज का आर्थिक दृष्टि से विभाजन करें तो वह तीन समूहों में बांटा जा सकता है :—सम्पत्ति की उत्पत्ति करने वाले, सम्पत्ति का उपभोग करने वाले, तथा दलाल जो उत्पन्न की हुई सम्पत्ति को उपभोक्ताओं तक पहुँचाते हैं। उत्पन्न करने वालों में वे सभी लोग आजाते हैं जो कि किसी रूप में सम्पत्ति का उत्पादन करते हैं, जैसे किसान, सब प्रकार के कारीगर जो कि गृह-उद्योग-धंधों में लगे हुए हैं, मिल-मालिक तथा मिल-मजदूर। दलालों की श्रेणी के अंतर्गत वे सभी लोग आते हैं, जो कि उत्पन्न की हुई सम्पत्ति को उपभोक्ता के समीप पहुँचाते हैं, जैसे बड़े बड़े व्यापारी, जो विदेशों से व्यापार करते हैं, थोक व्यापारी, फुटकर बेचने वाले, बैलगाड़ी मोटर तथा रेलवे लाइनों पर काम करने वाले, जहाज चलाने वाले, तथा कमीशन-एजन्ट।

तीसरा समूह उपभोग करने वालों का है। देश की समस्त जन-संख्या ही इस समूह में आजाती है, क्योंकि कुछ चीजें ऐसी हैं जिन्हें उत्पन्न तो थोड़े से ही लोग करते हैं, किन्तु उपभोग प्रत्येक मनुष्य करता है। अस्तु; उपभोक्ता समूह सब से बड़ा है, इसके बाद उत्पादक समूह आता है, और सबसे छोटा दलाल समूह है।

सहकारिता आन्दोलन मुख्यतः आर्थिक आन्दोलन है। जिस वर्ग की आर्थिक स्थिति कमजोर है, उस वर्ग को संगठित करके सबल बनाना ही उसका उद्देश्य है। किसी ने ठीक ही कहा है "सहकारिता! तू निर्धनों का बल है।" जो निर्धन हैं, वे ही धनिकों की प्रतिद्वन्द्विता में खड़े होने के लिये सहकारिता की शरण आते हैं। वे ही अपना संगठन करते हैं क्योंकि ऐसा किये बिना वे धनी प्रतिद्वन्द्वी की प्रतिस्पर्धा में खड़े नहीं रह सकते। दलाल-समूहों के लोगों को जो कि शक्तिवान और सम्पन्न होते हैं, और जिन्होंने बाजार पर अपना एकाधिपत्य जमा रखा है, सहकारिता की सहायता नहीं चाहिये। दलाल, उत्पादक समूह को उसके परिश्रम के लिये कम से कम मूल्य देकर, उपभोग करने वालों से अधिक से अधिक मूल्य लेते हैं। सहकारिता आन्दोलन ऐसे समूह की कोई सेवा नहीं कर सकता। उत्पादक समूह तथा उपभोक्ता समूह में से भी सहकारिता उन्हीं लोगों की सेवा कर सकती है, जो कि निर्बल हैं और जिन पर आर्थिक अत्याचार हो रहा है।

उत्पादक समूह, उत्पादक सहकारी समितियां स्थापित कर सकता है। उत्पादक सहकारी समितियां प्रत्येक धंधे तथा प्रत्येक स्थान के लिये पृथक् होंगी। उदाहरण के लिये बुनकर सहकारी समितियां प्रत्येक स्थान के लिये पृथक् होंगी, जैसे बनारस सिल्क-वीवर्स सहकारी समिति, लुधियाना बुनकर सहकारी समिति। इसी प्रकार उपभोक्ता समितियां भी प्रत्येक

स्थान के लिये अलहदा होगी। यही नहीं, उपभोक्ता सहकारी समतियाँ एक पेशे में काम करने वालों के लिये भी अलग अलग होती हैं, जैसे इलाहाबाद के लिये एक सहकारी उपभोक्ता स्टोर्स हो सकता है, प्रयाग विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों के लिये विश्व विद्यालय सहकारी स्टोर्स हो सकता है, तथा रेलवे कर्मचारियों के लिये रेलवे स्टोर्स चलाया जा सकता है। अस्तु, सहकारी समितियों के दो मुख्य भेद हैं, उत्पादक समितियां और उपभोक्ता समितियां। उत्पादक समतियों का उद्देश्य यह होता है है कि माल को कम व्यय करके तैयार किया जावे और उसे अच्छे दामों पर बेचा जावे, जिससे कि उत्पत्ति करने वालों को अधिक लाभ हो। उपभोक्ता स्टोर्स का ध्येय यह होता है कि तैयार माल को सस्ते दामों पर खरीदें और अपने सदस्यों को सस्ते दामों पर दें। इस प्रकार दोनों ही तरह की सहकारी समितियां दलालों को अपने स्थान से हटा देने का प्रयत्न करती हैं।

उपभोक्ता स्टोर्स बीच के दलालों को तो हटा ही देते हैं उनका लक्ष्य यह होता है कि आवश्यक वस्तुओं का उत्पादन भी वही करें। जहां उपभोक्ता समितियां अधिक संख्या में स्थापित हो गई हैं वहां वे उत्पादन कार्य भी करने लगी हैं दूसरी ओर उत्पादक समितियां बीच के सब दलालों को अपने स्थान से हटा उपभोक्ता से सीधा सम्बन्ध स्थापित करना चाहती है। पाठक कह सकते हैं कि तब तो यह दो प्रकार की समितियां एक दूसरे की विरोधी हुईं और देखने से ऐसा प्रतीत भी होता है। किन्तु जब समाज का आर्थिक संगठन सहकारिता के के सिद्धांतों के अनुसार होगा और समाज एक वृहद् सहकारी संगठन का रूप धारण कर लेगा तब इन दो प्रकार की समितियों का पारस्परिक विरोध मिट जायगा और उत्पत्ति करने

वालों को अपने माल का उचित मूल्य मिलेगा तथा उपभोग करने वालों को उचित मूल्य देना होगा।

इन दो प्रकार की समितियों के अन्तर्गत बहुत प्रकार की समितियां होती हैं उदाहरण के लिये साख समितियां, तथा बैंक। भारतवर्ष में सहकारी साख समितियां ही अधिकतर स्थापित की गई हैं। भारतवर्ष कृषि प्रधान देश है; यहां की तीन चौथाई जनसंख्या खेती-बारी पर अपने उदर पालन के लिये निर्भर रहती है। इसके अतिरिक्त देश की ८० प्रति शत जन-संख्या गांवों में निवास करती है। गांव की आवश्यकताएँ शहरों से भिन्न होती हैं। गांव वालों को खेती-बारी के लिये साख की अत्यन्त आवश्यकता होती है प्रत्येक मनुष्य को, जो कि किसी धंधे में लगा हुआ है, साख की आवश्यकता पड़ती है। उसकी स्थिति इतनी खराब होती है कि उसको कोई व्यापारिक बैंक पूंजी नहीं देता इस कारण उसको महाजन की शरण जाना पड़ता है। महाजन किसान का इस प्रकार दोहन करता है कि वह कभी पनप ही नहीं सकता और सर्वदा ऋणी रहता है। सहकारी साख समितियां उसकी आर्थिक स्थिति को सुधारने का प्रयत्न करती हैं। साख समितियों के अतिरिक्त किसानों के लिये अन्य प्रकार की सहकारी समितियां भी स्थापित की गई हैं, जैसे चकबंदी सहकारी समितियां, दूध सहकारी समितियां, सिंचाई सहकारी समितियां, क्रय समितियां, विक्रय समितियां इत्यादि। भारतवर्ष में किसानों के अत्यन्त ऋणी होने के कारण तथा साख का विशेष महत्व होने के कारण, यहां सहकारी समितियां दो श्रेणियों में बांटी जाती हैं, साख समितियां, गैर-साख-समितियां।

अन्तर्राष्ट्रीय कृषि इंस्टीट्यूट ने समितियों का निम्नलिखित विभाजन किया है:— (१) साख, (२) उत्पादक, (३) क्रय और

(४) विक्रय। एक ही समिति एक, या एक से अधिक कार्य कर सकती है। उदाहरण के लिये एक ही समिति क्रय और विक्रय दोनों का कार्य करती है।

वास्तव में सहकारी समितियां कितने प्रकार की होती हैं, यह बताना कठिन है। यह तो पूर्व ही कहा जा चुका है कि प्रत्येक आर्थिक समस्या को हल करने के लिये सहकारिता का उपयोग किया जा सकता है और किया गया है। आगे के परिच्छेदों में हम भारतीय सहकारी समितियों के विषय में विस्तार पूर्वक लिखेंगे, किन्तु पहले हमें, भिन्न-भिन्न प्रकार की समितियों का संगठन कैसे होता है, यह जान लेना चाहिये।

खेती-बारी के लिये साख समितियाँ—भारतवर्ष कृषि-प्रधान देश है, इस कारण हम पहले साख समितियों पर विचार करेंगे। आधुनिक आर्थिक संगठन में साख का अत्यन्त महत्व है, बड़े से बड़ा व्यवसायी और छोटे से छोटा कारीगर भी बिना साख के अपना कार्य नहीं चला सकता। बड़े बड़े व्यवसायी आरम्भ में लाखों रुपये लगाकर मिल खड़ी करते हैं, जब मिल चलने लगती है और तैयार माल बिकने लगता है तब कहीं मिल-मालिक को रुपया मिलता है। व्यवसायियों को औद्योगिक बैंकों से आरम्भ में पूँजी मिल जाती है और मजदूरों के वेतन के लिये व्यापारिक बैंकों से पूँजी उधार लेलेते हैं। व्यापारी तथा दलालों को, जो कि तैयार माल का अथवा खेती-बारी की पैदावार का व्यापार करते हैं, माल लेते समय तो उसका मूल्य देना पड़ता है, परन्तु वह माल बहुत दिनों के बाद बिकता है। ऐसी स्थिति में यदि उन्हें कहीं से पूँजी न मिले तो उनका व्यापार ही चौपट हो जावे। अस्तु; व्यापारियों को व्यापारिक बैंक से रुपया

मिल जाता है। जो व्यापारी विदेशी व्यापार करते हैं उन्हे विनिमय बैंक से साख मिल जाती है। साख के साथ जोखिम भी है। जो बैंक अथवा मनुष्य किसी को ऋण देता है, वह पूँजी के मारे जाने की जोखिम भी उठाता है। अस्तु, बिना जमानत के कोई भी साख नहीं देता। साख और जमानत का साथ है; बिना जमानत के साख नहीं मिल सकती। एक निर्धन किसान अथवा कारीगर जिसके पास पूँजी नहीं है, इन बैंकों से ऋण नहीं पासकता, क्योंकि उनके पास जमानत कुछ भी नहीं होती। बड़े बड़े व्यापारी व्यवसायियों के पास निजी पूँजी यथेष्ट होती है, इस कारण व्यापारिक बैंक उन्हें कर्ज देते हैं। जो बैंक जमानत के बिना कर्ज देता है उसका दिवाला निकलने में देर नहीं लगती।

निर्धन किसानों के पास इतनी सम्पत्ति नहीं होती कि उससे उनको साख हो; इसके अतिरिक्त एक कठिनाई और भी उपस्थित होती है. उनकी पूँजी की मांग इतनी थोड़ी होती है कि बड़े बड़े व्यापारिक बैंक ऐसा काम लेना पसन्द नहीं करते। मान लीजिये कि एक हजार किसान जो कि भिन्न भिन्न गांवों में रहते हैं. बैंक से फसल बोने के समय कुल पचास हजार रुपया उधार लेना चाहते हैं. अर्थात प्रत्येक किसान केवल पचास रुपये लेना चाहता है। यदि बैंक इन किसानों को रुपया देना स्वीकार करे तो उसे चार या पांच कर्मचारी केवल इस लिये नियुक्त करने होंगे कि वे इन किसानों की हैसियत की जांच करें और यह बतलावें कि वे ईमानदार हैं अथवा नहीं, और, उसको रुपया उधार देना चाहिये या नहीं। प्रत्येक बैंक क़र्ज़ देने से पूर्व, क़र्ज़ लेने वाले की आर्थिक स्थिति. वह ईमानदार है अथवा नहीं. उसका कारबार कैसा चल रहा

है. इत्यादि बातों की पूरी जांच करता है, तब ही क़र्ज़ देता, है । जो बैंक इस विषय मे सतर्कता से काम नहीं लेता उसको हानि उठानी पड़ती है। बैंक व्यापारिक केन्द्रों में होते है, इस कारण बड़े बड़े व्यापारियों की आर्थिक स्थिति की जांच सरलता पूर्वक हो सकती है। व्यापारिक केन्द्र के बड़े बड़े व्यापारियों तथा व्यवसायियों के विषय मे बैंक पूरी जानकारी रखता है। किंतु भिन्न भिन्न गांवों मे बिखरे हुए किसानों की आर्थिक स्थिति की ठीक ठीक जांच करना कठिन ही नहीं, व्यय-साध्य भी है। इसके अतिरिक्त एक हज़ार किसानों का हिसाब रखना तथा उनसे समय पर वसूल करना भी कठिन तथा व्यय-साध्य होता है। यदि एक व्यापारी पचास हज़ार रुपये उधार लेता है तो बैंक उसकी स्थिति की जांच भी कर लेता है। उसके हिसाब के रखने तथा उससे रुपया वसूल करने मे न तो अधिक कठिनाई और न अधिक व्यय ही करना पड़ता है। इन्हीं कारणों से किसान, छोटे कारीगर तथा अन्य निर्धन लोग इन बड़े बैंकों से क़र्ज़ नहीं पा सकते। यह तो पूर्व ही कहा जा चुका है कि बिना पूँजी के उत्पादन कार्य चल नहीं सकता. इस कारण किसान और कारीगर को पूँजी की आवश्यकता होती है। उनकी आवश्यकता को महाजन और साहूकार पूरी करते हैं।

महाजन किस प्रकार किसान और कारीगर का दोहन करते हैं यह तो अगले परिच्छेदों में लिखा जावेगा, यहाँ यह कह देना अतिशयोक्ति न होगा कि महाजनों का क़र्ज़दार होकर किसान चिर-दास बन जाता है। वह कठिन परिश्रम करता है, किंतु उसका लाभ मिलता है महाजन को। किसान को तो भूखे रहकर महाजन की थैलियों को भरना पड़ता है। किसानों और कारीगरों को इस आर्थिक दासता से छुड़ाने के लिये. और उनको अपने

धन्धे के लिये उचित मूल्य पर पूँजी देने का आयोजन करने के लिये सर्व प्रथम जर्मनी में सहकारी साख समितियों की स्थापना हुई। जर्मनी में शुल्ज़ और रैफीसन नामक दो सज्जनों को निर्धन किसानों और कारीगरों की अत्यन्त शोचनीय आर्थिक स्थिति ने आकर्षित किया और दोनों ने ही लगभग एक ही समय देश के दो भिन्न भिन्न भागों में दो प्रकार की सहकारी साख समितियों की स्थापना की।

रैफ़ीसन तथा शुल्ज प्रणाली की सहकारी साख समितियां—रैफीसन तथा शुल्ज़ दोनों ही ने निर्धन किसानों और कारीगरों को सामूहिक साख पर पूँजी उधार लेने का आयोजन किया। कुछ लोगों का विचार है कि रैफ़ीसन सहकारी साख समितियां केवल गांव वालों के लिये उपयुक्त हैं तथा शुल्ज़ सहकारी साख समितियां नगर निवासी कारीगरों के लिये उपयुक्त हैं। वास्तव में बात ऐसी नहीं है। रैफीसन सहकारी साख समितियां उन स्थानों के लिये उपयुक्त हैं, जहां अधिक जनसंख्या न हो, निवासी एक दूसरे से भली भाँति परिचित हों, तथा उस स्थान पर स्थायी रूप से रहने वाले हों, साथ ही जनसंख्या अधिक निर्धन हो। गांवों के निवासियों में अधिकतर ऊपर लिखी हुई बातें मिलती हैं, इस लिये गांवों में रैफीसन सहकारी साख समितियां अधिक पाई जाती हैं। यही कारण है कि साधारणतः लोग समझते हैं कि रैफीसन सहकारी समितियां गांवों के लिये हैं।

इसके विपरीत, शुल्ज़ सहकारी साख समितियां ऐसे स्थानों के उपयुक्त होती हैं, जहां जनसंख्या अधिक हो, जिसके कारण निवासी एक दूसरे से भली भाँति परिचित न हों, जनसंख्या

स्थायी रूप से निवास न करती हो, अर्थात् वहां के निवासी काम की खोज मे दूसरे स्थानो पर चले जाते हों तथा वे अत्यन्त निर्धन न हो। यह स्थिति अधिकतर नगरो मे होती है, इस कारण शुल्ज सहकारी साख समितियां शहरों मे कारीगरो तथा अन्य लोगो के लिये खोली जाती हैं।

बात यह है कि रैफीसन सहकारी साख समितियां अपरिमित दायित्व वाली होती है, इस कारण उनके सदस्यो को स्थायी रूप से एक स्थान का निवासी होना तथा एक दूसरे से भली भाँति परिचित होना आवश्यक है। शुल्ज समितियां परिमित दायित्व वाली होती है इस कारण उनके लिये यह आवश्यक नही है।

रैफ़ीसन सहकारी साख समितियां—रैफ़ीसन साख समितियो के संस्थापक श्री. रैफीसन महोदय का जन्म १८१८ मे हैम नामक ग्राम में हुआ था। युवा अवस्था मे वे सेना मे भरती होगये किन्तु शीघ्र ही उन्हे सैनिक जीवन त्यागना पड़ा क्योंकि आंखें खराब होगई। सैनिक जीवन से हट कर वे सिविल सर्विस में आये और शीघ्र ही बरगोमास्टर नियुक्त किये गये। वे एक ज़िले के ज़िलाधीश बनाये गये। यहां पर उनको किसानो की दयनीय दशा का करुणाजनक दृश्य देखने को मिला। उन्होने देखा कि वर्ष भर कठिन परिश्रम करते रहने पर भी निर्धन किसान को भर-पेट भोजन नहीं मिलता और वह सर्वदा क़र्ज़दार ही रहता है। यहूदी साहूकार किसान को जोंक की भाँति चूसता था और सरकार का उस ओर ध्यान भी नहीं था। किसानों की पैदावार को साहूकार बहुत सस्ते दामो पर खरीद लेता था और सूद की दर इतनी अधिक थी कि किसान उसके चँगुल से कभी भी नहीं निकल सकता था। किसान का

मकान भूमि तथा हल और बैल सभी साहूकार के यहां गिरवी रख दिये जाते थे, और किसान उसका दास बन जाता था।

रैफ़ीसन का हृदय इस नग्न निर्धनता को देख कर अत्यन्त दुखी हुआ। इसके उपरान्त वे उसी प्रदेश में एक दूसरे ज़िले में भेज दिये गये, वहां की दशा पहले से भी बुरी थी। बस, रैफ़ीसन ने निर्धनता तथा भयंकर कर्ज़दारी से युद्ध छेड़ दिया। क्रमशः रैफ़ीसन ने सहकारी साख समितियों का देश में एक जाल सा फैला दिया। यह ध्यान में रखने की बात है कि रैफ़ीसन को कोई सरकारी सहायता अथवा सहानुभूति प्राप्त नहीं हुई। आन्दोलन सफल होगया, तब भी उन्होंने सरकारी सहायता लेना पसंद नहीं किया। सहकारी साख समितियों ने जर्मनी के गांवों की कायापलट कर दी। किसान, साहूकारों के चँगुल से निकल कर, ऋण-मुक्त होगये और उनकी आर्थिक स्थिति बहुत सुधर गई।

रैफ़ीसन पद्धति की साख समितियों की निम्न लिखित विशेषताएँ हैं :—

रैफ़ीसन महोदय एक गांव में एक ही साख समिति की स्थापना ठीक समझते हैं। यदि गांव अधिक छोटे हों तो दो या तीन गांवों के लिये एक समिति की स्थापना की जा सकती है। रैफ़ीसन का मत है कि समिति के सदस्य बनाने में बहुत छानबीन की आवश्यकता है। अधिक सदस्यों की इतनी आवश्यकता नहीं है, जितनी कि चरित्रवान सदस्यों की।

सदस्यों में चाहे कितनी ही आर्थिक विषमता हो, किन्तु ग़रीब और अमीर को समिति के प्रबन्ध में बराबर अधिकार है।

सब सदस्यों की सभा को साधारण सभा कहते हैं। साधारण सभा नीति निर्धारित करती है और वही प्रबन्ध-कारिणी समिति के सदस्यों को चुनती है। साधारण सभा प्रबन्धकारिणी समिति को कार्य चलाने तथा सभा द्वारा निर्धारित नीति के अनुसार कार्य करने का अधिकार देती है। साधारण सभा अपने में से ही एक निरीक्षण कौंसिल का चुनाव करती है। निरीक्षण कौंसिल प्रबन्धकारिणी समिति के सदस्यों के कार्य का निरीक्षण करती है। प्रबन्धकारिणी समिति तथा निरीक्षण कौंसिल के सदस्यों को कोई वेतन, फीस, अथवा कमीशन नहीं दिया जाता। केवल कैशियर को थोड़ा वेतन दिया जाता है, किन्तु उसको कोई अधिकार नहीं होता, वह केवल समिति का नौकर होता है।

रैफीसन के अनुसार साख समितियों के सदस्यों से न तो फीस लेने की आवश्यकता है और न उन्हें समिति का हिस्सा खरीदने की। जब जर्मन सरकार ने एक क़ानून बना दिया कि सदस्यों को हिस्से खरीदने चाहियें, तब भी रैफीसन सहकारी समितियों ने अपने हिस्से का मूल्य नाममात्र रखा; इसका उद्देश्य यह है कि गरीब किन्तु सच्चरित्र किसान, समिति के सदस्य बनने से वंचित न रह जावें।

रैफीसन, समिति के लाभ को बांटने नहीं देता। उसका कथन है कि यदि लाभ सदस्यों में बांटा जावेगा तो उन में लालच बढ़ जावेगा। वार्षिक लाभ रक्षित कोष में जमा होना चाहिये। रक्षित कोष को क्रमशः बढ़ाते रहने पर रैफीसन ने बहुत ज़ोर दिया है। वह कहता था कि रक्षित कोष ही इस आन्दोलन का स्तम्भ है। यदि किसी वर्ष समिति को हानि हो तो वह इस कोष

से पूरी की जा सकती है। इसके अतिरिक्त सबसे बड़ा लाभ यह है कि अधिक कोष हो जाने से समिति के पास अपनी निज की कार्यशील पूँजी हो जायगी और उधार नहीं लेनी होगी। इसका फल यह होगा कि समिति सूद की दर को घटा सकेगी और सदस्यों को कम सूद पर कर्जा मिल सकेगा।

यदि रक्षित कोष अधिक हो जावे तो यह रुपया गांव में किसी सार्वजनिक हित के कार्य में व्यय किया जाता है। यदि कभी समिति टूट जावे तो भी सदस्य रक्षित कोष को आपस में नहीं बांट सकते; समिति के टूट जाने पर कोष में जमा किया हुआ रुपया किसी ऐसी सार्वजनिक संस्था के पास जमा कर दिया जाता है, जो भविष्य में, यदि उस गांव में कोई दूसरी सहकारी समिति स्थापित हो, तो उसको देदे। कुछ समय व्यतीत हो जाने पर भी कोई दूसरी सहकारी समिति स्थापित न हो तो वह रुपया उसी गांव के सार्वजनिक हित के कार्यों पर व्यय कर दिया जावे। रैफीसन ने यह नियम इस लिये बनाया कि कहीं ऐसा न हो कि अधिक कोष जमा हो जाने पर सदस्य समितियों को तोड़ कर कोष का धन बांट लें।

क़र्जा देने के लिये रैफीसन ने यह सिद्धांत निश्चित किया कि ऋण केवल उसी आदमी को दिया जाना चाहिये जो समिति की प्रबन्ध-कमेटी को निश्चय करा सके कि उसको पूँजी की आवश्यकता है और जिस कार्य को वह करने जारहा है, उसमें सफल होने की सम्भावना है। समिति उत्पादक कार्यों के लिये ही रुपया दे। अनुत्पादक तथा व्यर्थ कार्यों के लिये रुपया न देना चाहिए। जब समिति एक बार सदस्य की आवश्यकता के विषय में छान-बीन करके कर्जा देदे तब यह देखना चाहिए कि जिस कार्य के

लिये सदस्य ने कर्ज लिया है, उस अतिरिक्त और किसी कार्य में तो व्यय नहीं किया। निरीक्षण-कौंसिल प्रत्येक तीन महीने के उपरांत सदस्य और उसकी ज़मानत देने वालों की आर्थिक स्थिति की, तथा उस रुपये के उपयोग की, जांच करती है। यदि यह ज्ञात हो कि सदस्य ने कर्ज़ का ठीक उपयोग नहीं किया तो उस से फौरन ही रुपया वापिस मांगना चाहिये। समिति की आर्थिक स्थिति को मज़बूत बनाये रखने के लिये यह अत्यन्त आवश्यक है।

सदस्य को कर्ज देते समय ही, उस पर सूद का हिसाब लगा कर, किश्तें बांध दीजाती हैं। रैफीसन ने किश्तों को ठीक समय पर वसूल करने के लिये बहुत ज़ोर दिया है। उसका कहना है कि समिति इस नियम के पालन करने तथा सदस्यों से पालन करवाने में बड़ी कड़ाई से काम ले। सदस्य को ठीक समय पर ही किश्त का रुपया देना चाहिये। इससे सदस्यों को एक बहुत बड़ा लाभ यह होता है कि वे अपने क़र्ज को ठीक समय पर चुका देने के लिये बाध्य होते हैं; इसलिये वह लापरवाह नहीं होते।

रैफीसन का मत था कि सदस्य को क़र्ज देने का कार्य ऐसी सरलता पूर्वक होना चाहिये कि न तो उसमें सदस्य को कोई कठिनाई हो, और न क़र्ज मिलने में देरी हो। क़र्ज के विषय में जांच कर चुकने के उपरान्त एक या दो ज़मानत लेकर रुपया देना चाहिये।

जर्मनी में रैफीसन सहकारी साख समितियों ने तो देश की दशा ही पलट दी। जर्मनी की ग्रामीण जनसंख्या कर्जे के भयंकर बोझ से दबी हुई आर्थिक दासता को भोग रही थी, वहीं

निर्धन किसान वर्ग रैफ़ीसन सहकारी समितियों की सहायता से स्वावलम्बन का पाठ सीख गया और महाजनों की दासता से स्वतन्त्र होकर सुखी जीवन व्यतीत करने लगा। सच तो यह है कि रैफ़ीसन ने अपने देश के लिये वह कार्य किया जो कि बड़े से बड़ा राजनीतिज्ञ भी नहीं कर सकता था। यही कारण था कि जब किसानों की सेवा में अपने जीवन को लगा देने वाले श्री० रैफ़ीसन का स्वर्गवास हुआ तो आधा जर्मन साम्राज्य शोक-ग्रस्त होगया था। आज भी जर्मनी में पिता रैफ़ीसन का नाम अत्यन्त श्रद्धा और भक्ति से लिया जाता है।

जब जर्मनी में रैफ़ीसन सहकारी साख समितियां फैल गईं तो उत्पादक, क्रय, विक्रय, दूध सहकारी समितियां तथा अन्य सभी प्रकार की समितियां स्थापित होगईं। सहकारी समितियां अधिक होजाने के कारण, समितियों के समूहों की यूनियन स्थापित की गई है। जर्मनी में इस प्रकार की १२ यूनियन हैं, जो सब रैफ़ीसन सहकारी समितियों का संरक्षण करती हैं। इन यूनियनों के भी ऊपर एक कौंसिल है जो रैफ़ीसन सहकारिता आन्दोलन की बागडोर संभालती है। कौंसिल की देखभाल में एक बैंक भी स्थापित किया गया है, जो साख-समितियों की आवश्यकताओं को पूरी करता है।

रैफ़ीसन सहकारी साख समितियों की विशेषता अपरिमित दायित्व है। रैफ़ीसन ने अपरिमित दायित्व पर बहुत जोर दिया है। रैफ़ीसन के अनुसार वास्तविक सहकारिता वही है, जहां प्रत्येक सदस्य अपने को समिति-रूपी बड़े कुटुम्ब का सदस्य समझे, और, उन सदस्यों का आदर्श हो -"एक सब के लिये सब एक के लिये"। इस आदर्श को वास्तविक रूप में सदस्यों

को समझाने के लिये अपरिमित दायित्व अत्यन्त आवश्यक है। इस का अर्थ है कि प्रत्येक सदस्य समिति के समस्त ऋण को सम्मिलित तथा व्यक्तिगत रूप से देने का ज़िम्मेदार है। रैफ़ीसन सहकारिता आंदोलन का यह आधार-स्तम्भ है, जिस पर इतना बड़ा आन्दोलन खड़ा किया गया है।

शुल्ज़ सहकारी साख समितियाँ—जर्मनी में रैफ़िसन के अलावा सहकारिता का दूसरा भक्त शुल्ज था। दोनों सज्जन लगभग एक ही समय में एक ही देश में स्वतन्त्र रूप से कार्य कर रहे थे। किन्तु प्रारम्भ में वे एक दूसरे को बिलकुल न जानते थे और न उनको एक दूसरे के कार्य का परिचय मिला। एक पूर्व जर्मनी में सहकारिता का प्रचार कर रहे थे तो दूसरे सज्जन पश्चिम में। दोनों ही के हृदय में अपने ग्रामवासियों की दरिद्रता को देखकर सेवा-भाव जागृत हुआ, और उसके फल-स्वरूप उन्होंने सहकारिता आन्दोलन चलाया। अस्तु, शुल्ज़ ने अपने मित्र डाक्टर वर्नहार्डी की सहायता से अपने गांव डैलिट्ज़ तथा अपने मित्र के गांव ईलनबर्ग में वहां के चमारों तथा अन्य कारीगरों के लिये कच्चा माल खरीदने के लिये दो सहकारी समितियां खोलीं। तब से क्रमशः क्रय-समितियों का प्रचार बढ़ता गया और अब वे जर्मनी में सर्वत्र पाई जाती हैं। क्रय समितियों की सफलता से उत्साहित होकर शुल्ज़ ने १८६० में पहली साख समिति स्थापित की। किन्तु वह पूर्णतया सहकारी समिति नहीं थी। इसी बीच में शुल्ज़ को कुछ समय के लिये कार्यवश बाहर जाना पड़ा और उसके मित्र डाक्टर वर्नहार्डी ने ईलनबर्ग में एक शुद्ध सहकारी समिति स्थापित की। जब शुल्ज़ डैलिट्ज़ को लौटा तो वह, अपने मित्र द्वारा स्थापित

समिति के शुद्ध सहकारी रूप को देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ और उसने वही सिद्धान्त अपनालिया।

अब शुल्ज़ ने बड़े उत्साह से इस सिद्धांत का प्रचार करना प्रारम्भ किया। शुल्ज़ के व्यक्तित्व, उनकी धारा-प्रवाहिणी भाषण-शक्ति, तथा उनका सच्चा लगन का फल यह हुआ कि सारे समितियां बहुत बड़ी संख्या में स्थापित होगईं। किन्तु अभाग्य-वश जमन सरकार उनके इस कार्य से अप्रसन्न होगई और शुल्ज़ को (जो कि न्यायाधीश था), अपने पद से त्यागपत्र देना पड़ा। इसके उपरान्त शुल्ज़ ने अपना समय इस कार्य में लगा दिया।

शुल्ज़ सहकारी समितियों का अध्ययन करते समय यह बात ध्यान में रखने की है कि शुल्ज़ ने यह आन्दोलन मध्य श्रेणी के मनुष्यों और विशेषकर कारीगरों के लिये चलाया था। और अब भी इन समितियों से मध्य श्रेणी के मनुष्यों को ही लाभ होता है। शुल्ज़ ने अपने आन्दोलन को चरित्र-सुधार का साधन नहीं बनाया, उसने केवल आर्थिक समस्या को ही सुलझाने का प्रयत्न किया इन सहकारी समितियों में निर्धनों के लिये स्थान नहीं है, क्योंकि शुल्ज़ समितियों में सदस्यों को हिस्सा अवश्य ख़रीदना पड़ता है, और हिस्से का मूल्य अधिक होता है। उसका मत था कि समिति का उधार ली हुई पूँजी पर निर्भर नहीं रहना चाहिये, सदस्यों को हिस्से ख़रीदने चाहिये और बैंक के पास निजी यथेष्ट पूँजी होनी चाहिये।

जिस समय शुल्ज़ ने आन्दोलन चलाया, उस समय परिमित दायित्व का सिद्धान्त जर्मनी में किसी को ज्ञात नहीं था और न राजकीय क़ानून ही उसको मानता था। इस कारण

प्रारम्भ में यह समितियां अपरिमित दायित्व वाली थीं। किन्तु शुल्ज़ ने रैफ़ीसन की भांति अपरिमित दायित्व को आवश्यक नहीं माना। इसका फल यह हुआ कि उसकी मृत्यु के उपरान्त जब जर्मनी में परिमित दायित्व का सिद्धान्त मान लिया गया तो बहुत सी समितियों ने इस सिद्धान्त को अपना लिया। किन्तु इस समय भी यथेष्ट संख्या में शुल्ज़ समितियां अपरिमित दायित्व को अपनाये हुये हैं।

शुल्ज़ समितियों की विशेषता यह है कि वे अपनी यथेष्ट पूँजी इकट्ठी करना चाहती हैं। इसी कारण सदस्यों के लिये हिस्सों का ख़रीदना आवश्यक समझा गया। इसके अतिरिक्त शुल्ज़ ने सुरक्षित कोष को जमा करने पर बहुत ज़ोर दिया है, क्योंकि उसका उद्देश्य किसी प्रकार बैंक की निजी पूँजी को बढ़ाना था। किन्तु यह न समझ लेना चाहिये कि यह सहकारी साख समितियां लाभ नहीं बांटतीं। लाभ का कुछ भाग सुरक्षित कोष में जमा करने के उपरान्त, शेष लाभ सदस्यों में बांट दिया जाता है।

शुल्ज़ ने व्यक्तिगत ज़मानत पर क़र्ज़ देने के सिद्धान्त को अपनाया है, तथा क़र्ज़ों को वसूल करने पर बहुत ज़ोर दिया है। इन समितियों में सदस्य अपनी वार्षिक बैठक में एक कमेटी का निर्वाचन करते हैं, और वह कमेटी अपने सदस्यों में से एक कार्यकारिणी समिति का निर्वाचन करती है। कार्यकारिणी समिति, समिति का कार्य चलाती है तथा कमेटी उसके कार्य का निरीक्षण करती है। शुल्ज़, कार्यकारिणी समिति के सदस्यों तथा पदाधिकारियों को, वेतन देने के पक्ष में है।

वास्तव में यह सहकारी साख समितियां विस्तृत क्षेत्र के लिये उपयुक्त हैं। इस कारण वे पूर्ण रूप से व्यापारिक संस्था होती है। व्यापारिक कार्य सफलता-पूर्वक करने के लिये अधिक पूंजी की आवश्यकता होती है और वेतन-भोगी कर्मचारी रखने पड़ते हैं।

लुज्ज़ती समितियाँ (पीपुल्स बैंक)— लुज़्ज़ती ने शुल्ज़ प्रणाली का सुधार करके उसे अपनाया। आस्ट्रिया राज्य का कोप-भाजन बन कर भागा हुआ लुज़्ज़ती इटली में अपनी योग्यता के कारण अर्थशास्त्र का अध्यापक बन गया और उसने शुल्ज़ के विचारों का अध्ययन करने के उपरान्त मिलन में बैंक स्थापित किया। किंतु लुज़्ज़ती जैसा योग्य व्यक्ति यह भली भांति समझता था कि जर्मन संस्था इटली में सफल न होगी। इस कारण उसने शुल्ज़ समितियों का नवीन संस्कार करके उसका प्रचार किया।

लुज़्ज़ती ने अपरिमित दायित्व के स्थान पर सिद्धान्त रूप में परिमित दायित्व को अपनाया। इसके अतिरिक्त उसने शुल्ज़ की भांति अधिक मूल्य के हिस्से न रखकर बहुत थोड़े मूल्य के हिस्से रखे और बहुत सी किस्तों में हिस्सों के मूल्य चुकाने का नियम बनाया, जिससे कि निर्धन मनुष्य समिति के सदस्य बन सकें। लुज़्ज़ती ने यह नियम बनाया कि दस मास के अन्दर सदस्य को हिस्से का मूल्य चुका देना होगा। लुज़्ज़ती का विचार यह था कि यह थोड़ी सी पूंजी बाहर की पूंजी को आकर्षित कर सकेगी, अर्थात इसकी गारंटी पर बाहर से कर्ज मिल सकेगा। साथ ही उसने अधिकतर सेविंग्स डिपाज़िट लेकर अपनी कार्यशील पूँजी को बढ़ाने पर ज़ोर दिया। उसका कहना था

क यदि कार्यशील पूँजी की आवश्यकता हो तो सेविंग्स डिपाजिट आकर्षित करो। यद्यपि हिस्सों की पूँजी तो बाहरी कर्ज के लिये ज़मानत का काम देगी ही, किन्तु लुज्जत्ती के मतानुसार वास्तविक ज़मानत तो समिति के सदस्यों की ईमानदारी होगी। उसने कहा कि "ईमानदारी को पूँजी में परिणत करो।" इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए उसने ऐसा संगठन बनाया कि जिससे सदस्यों को ईमानदार रहने में ही अपना हित दिखलाई दे और वे एक दूसरे को ईमानदार बनाने में सहायक हों। लुज्जत्ती ने इस बात को लक्ष्य में रखकर समिति के कार्य की ज़िम्मेदारी को बांट दिया, जिससे कि प्रत्येक सदस्य को कुछ न कुछ ज़िम्मेदारी का कार्य करना पड़े। इस कारण लुज्जत्ती समितियों में सदस्यों को लेते समय उनके चरित्र पर विशेष ध्यान रखा जाता है। प्रत्येक सदस्य को समिति का थोड़ा बहुत कार्य करना पड़ता है। जो कर्ज़ दिया जाता है, वह बहुत जांच करने के बाद दिया जाता है। कोई बात गुप्त नहीं रखी जाती, जिससे कि प्रत्येक सदस्य समिति की दशा से पूर्ण परिचित रहे। लुज्जत्ती, प्रबन्धकारिणी समिति तथा अन्य पदाधिकारियों को वेतन देने के पक्ष में बिलकुल नहीं है।

लुज्जत्ती समितियों में प्रबन्ध का कार्य एक कमेटी करती है, जिसका निर्वाचन साधारण सभा करती है। प्रबन्ध कमेटी के सदस्य संख्या में अधिक होते हैं और यह आवश्यकता समझी जाती है कि प्रबन्ध कमेटी में सब प्रकार के सदस्यों के प्रतिनिधि हों। किंतु कमेटी बड़ी होने के कारण उसके सदस्य बैंक के दैनिक कार्य को सुचारु रूप से नहीं चला सकते; इस कारण कमेटी अपने में से एक उप-समिति बना देती है, जो इस कार्य

को करती है। यह उप-समिति केवल एक वर्ष के लिए बनाई जाती है, फिर दूसरे वर्ष दूसरे सदस्यों की उप-समिति बनाई जाती है। उप-समिति का एक सदस्य प्रति दिन बैंक में रहता है, उसकी आज्ञा के बिना कार्य नहीं हो सकता।

इटली की ग्रामीण साख समितियां—इटली में जिस प्रकार शुल्ज़ के विचारों को अपनाकर लुज़्ज़ती ने पापुलर बैंक स्थापित किये, ठीक उसी प्रकार इटली ने अपने रैफ़ीसन को भी ढूँढ निकाला। पीपुल्स बैंक छोटे व्यापारियों तथा सम्पन्न किसानों के लिए अत्यन्त उपयोगी प्रमाणित हुए, किंतु निर्धन छोटे छोटे किसानों के लिये, जो गांवों में निवास करते हैं, उनका कोई उपयोग नहीं था। साथ ही गांव में निवास करने वाले छोटे छोटे किसानों को साख की अत्यन्त आवश्यकता थी। इटली के ग्रामों की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं है, किसान निर्धन है, लगान अधिक है, भूमि की कमी है और खेती-बारी भी अधिक उन्नत नहीं है; इसका फल यह है कि छोटे किसान अधिकतर कर्ज़दार हैं और महाजन उनका शोषण करते हैं।

डाक्टर वोलैम्बर्ग का हृदय गांवों की इस आर्थिक शोचनीय दशा को देखकर सिहर उठा और उन्होंने रैफ़ीसन सहकारी साख समितियों के ढङ्ग की समितियां स्थापित करके देश की सेवा करने का निश्चय किया। उन्होंने सब प्रथम अपने गांव में एक समिति की स्थापना की। प्रारम्भ में तो सदस्य बहुत कम थे और डिपाज़िट भी बहुत ही कम आई किंतु डाक्टर अथक परिश्रम से कार्य करते रहे। जब समिति को स्थापित हुए तीन महीने हो गये और समिति के मन्त्री ने सदस्यों को लिखा कि वे १॥ प्रति शत सूद, लिए हुये कर्ज़ पर, देजावें तो सदस्यों के

आश्चर्य का ठिकाना न रहा। पहिले तो उन्होंने समझा कि समझने में कुछ भूल हो गई है, किंतु जब उन्हें ज्ञात हुआ कि यह ठीक है तो यह खबर बड़ी तेजी से समीप के गांवों में फैल गई और धड़ाधड़ समितियां स्थापित होने लगीं।

डाक्टर वोलैम्बर्ग ने अपनी समितियों का संगठन रैफीसन के भांति ही रखा, भेद केवल इतना ही है कि इटली की ग्रामीण समिति जर्मनी की समिति से छोटी होती है। प्रत्येक कार्य में किफायत पर अत्याधिक ध्यान दिया जाता है। इन समितियों में सदस्य समिति के कार्य में खूब भाग लेते हैं। प्रत्येक सदस्य, जो कि साधारण बैठक में आने के योग्य होता है, अवश्य आता है। साधारण बैठक जल्दी जल्दी होती है और जो सदस्य बिना उचित कारण के सम्मिलित नहीं होता, वह और सदस्यों की दृष्टि में गिरजाता है, और उसको नाम मात्र का जुर्माना देना होता है। समिति का संचालन सब सदस्य मिलकर करते हैं। साधारण बैठक प्रबन्धकारिणी समिति के लिये आज्ञा देती है, और प्रबन्धकारिणी समिति केवल उन आज्ञाओं का पालन करती है। साधारण बैठक का संचालन में अधिक हाथ रहता है।

तीसरा परिच्छेद

भारतीय ग्रामीण ऋण

भारतवर्ष में लगभग ९० प्रति शत जनता गांवों में निवास करती है, और ग्रामीण जनसंख्या अधिकतर खेती-बारी पर ही

निर्भर रहती है। अधिकतर ग्रामीण तो किसान ही होते हैं और कुछ ग्रामीण उद्योग-धंधों में लगे रहते हैं। किंतु गांव के धंधे भी अप्रत्यक्ष रूप से खेती-बारी पर ही निर्भर है। यदि हम यह कहें कि समस्त ग्रामीण जनता खेती-बारी पर निर्भर है तो अतिशयोक्ति न होगी। जो मनुष्य भारतीय ग्राम्य जीवन से परिचित नहीं है, वह सम्भवतः ग्रामीण जनता के विषय में धोखा खा जावे। आज भारतीय किसान की आर्थिक दशा जितनी खराब है सम्भवतः संसार के अन्य किसी देश के किसानों की नहीं है। भारतीय ग्रामीण कर्ज के भयङ्कर बोझ से बहुत दबा हुआ है और कर्जदार होने के कारण उसका राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक तथा चरित्र-विषयक पतन हो रहा है। यह तो आगे के पृष्ठों में बतलाया जावेगा कि ऋणी होने का कैसा भीषण परिणाम किसान-वर्ग को भुगतना पड़ रहा है किन्तु यह निर्विवाद सत्य है कि देश की आर्थिक दशा को सुधारने के लिए इस समस्या को हल करना होगा। जब तक कि देश की जनसंख्या का एक बहुत बड़ा भाग आर्थिक दासता का जीवन व्यतीत करता रहेगा तब तक देश की आर्थिक स्थिति को सुधारने का प्रयत्न करना स्वप्न मात्र है

१९३० में सैंट्रल बैंकिङ्ग इनक्वायरी कमेटी के साथ सहयोग करने के लिये प्रत्येक प्रांतीय सरकार ने प्रांतीय बैंकिङ्ग इनक्वायरी कमेटी बैठाई। प्रांतीय कमेटियों ने अपने अपने प्रांतों में ग्रामीण ऋण का अनुमान लगाने का प्रयत्न किया। यद्यपि अनुमान बिलकुल सही नहीं हो सकता फिर भी हमें कर्जे की भयङ्करता का ज्ञान भली भांति हो सकता है। -

आसाम २२ करोड़, बङ्गाल १०० बिहार-उड़ीसा १५५

बम्बई ८१, बर्मा ५०-६० मध्यप्रांत ३६, मदरास १५०, पञ्जाब १३१ संयुक्तप्रांत १२४, केन्द्रीय सरकार द्वारा शासित प्रदेश १८ करोड़। इस प्रकार ब्रिटिश भारत का ग्रामीण ऋण लगभग सौ सौ करोड़ होता है।

अभी तक किसी कमेटी ने देशी राज्यों के ग्रामीण ऋण को मालूम करने का प्रयत्न नहीं किया। किंतु जिन्होंने राज्यों की आर्थिक स्थिति का कुछ भी अध्ययन किया है, वे जानते हैं कि देशी राज्यों के ग्रामीणों की आर्थिक दशा ब्रिटिश भारत के ग्रामीणों से कुछ अच्छी नहीं है। यदि हम सारे देशी राज्यों का ग्रामीण ऋण ब्रिटिश भारत का एक तिहाई मानलें तो कुछ भूल न होगी। इस हिसाब से समस्त देश का ग्रामीण ऋण ७००० करोड़ रुपये होता है।

अब प्रश्न यह है कि यह कर्ज़ घट रहा है अथवा बढ़ रहा है। प्रांतीय कमेटियों की सम्मति में भारतीय ग्रामीण ऋण पिछले १०० वर्षों में बराबर बढ़ता गया है। सर एडवर्ड मैकलेगन ने १९११ में कहा था "यह तो स्पष्ट है कि ग्रामीण ऋण भारतवर्ष के लिये कोई नई बात नहीं है, इतिहास को देखने से ज्ञात होता है कि ब्रिटिश शासन के पूर्व भी यह समस्या उपस्थित थी। किन्तु यह भी मानना पड़ेगा कि यह ऋण ब्रिटिश शासन में और विशेषकर पिछले पचास वर्षों में, बहुत बढ़ गया है।" शाही कृषि कमीशन की भी इस विषय में लगभग यही सम्मति है। कमीशन का कहना है कि प्रांतों का ग्रामीण ऋण अवश्य ही पिछले वर्षों में बढ़ गया है। पिछले दस वर्षों में तो इस की भयङ्करता बहुत ही बढ़ गई है। इसका अनुमान केवल संख्या में नहीं किया जा सकता। १९२९ के बाद खेतों की पैदावार का मूल्य

लगभग ५० प्रति शत घट गया। अस्तु, किसानों के कर्ज का बोझ पहले से दुगना होगया है।

१९२९ से १९३९ तक जो विश्वव्यापी आर्थिक मन्दी हुई, उसका प्रभाव भारतवर्ष पर भी पड़ा। भारतीय किसानों के कर्जे का बोझा बेहद बढ़ गया; स्थिति ऐसी भयावह हो उठी कि १९३६ के उपरान्त प्रत्येक प्रान्त में कांग्रेस मन्त्रिमडलों ने किसान के कर्जे के बोझ को हलका करने के लिए कुछ कानून बनाये। परन्तु शीघ्र ही देश में राजनैतिक स्थिति गड़बड़ हो गई और महायुद्ध के कारण उत्पन्न हुई परिस्थिति में कुछ भी सुधार न हो सका।

१९३९ में युद्ध के समय खाद्य पदार्थों तथा खेती की उपज का मूल्य कल्पनातीत बढ़ गया। किसान की आर्थिक स्थिति कुछ अच्छी हुई, उसके हाथ में रुपया आया। परन्तु उसने वह रुपया प्राय. सोने चांदी खरीदने में, सामाजिक कृत्य धूमधाम से करने में तीर्थ पर्व इत्यादि करने में और मुकदमेबाजी में नष्ट कर दिया। यदि उस समय किसान को यह बतलाया जाता कि अपने कर्जे का चुकादेने का यह अच्छा अवसर आया है, साथ ही कानून बना कर उनके कर्जों को उचित सीमा तक घटा दिया जाता और किस्तों में घटे हुए कर्जे को चुकाने की सुविधा दी जाती तो किसान को कुछ हद तक ऋण मुक्त किया जा सकता था। किन्तु वह अवसर निकल जाने दिया गया। फिर भी उस समय में किसान का भार कुछ कम हुआ।

प्रांतीय कमेटियों ने यह जानने का भी प्रयत्न किया है कि प्रति शत कितने लोग कर्जदार नहीं हैं। लेकिन उन अङ्कों से यह स्पष्ट नहीं होता कि वास्तव में कितने किसान ऋण मुक्त हैं।

अर्थ शास्त्र के कतिपय विद्वानों का मत है कि लगभग ७० प्रति शत किसान कर्जदार हैं।

प्रांतीय बैंकिङ्ग इन्क्वायरी कमेटियों ने विस्तार पूर्वक उन कारणों का विवेचन किया है जो किसान को क़र्ज़दार बनाते हैं। ग्रामीण जन-संख्या के क़र्ज़दार होने के बहुत से कारण हैं। किसान का पुराना ऋण उसको कर्जदार बनाने में बहुत सहायक है। किसान पुराने कर्ज को चुकाने के लिये नया कर्ज लेता है। भारतीय किसान को भयङ्कर सूद देना पड़ता है क्योंकि उनकी आर्थिक दशा अत्यन्त शोचनीय है। दूसरा मुख्य कारण यह है कि भारतीय किसान के पास इतनी भूमि नहीं है कि वह उस पर खेती करके अपने कुटुम्ब का पालन पोषण कर सके, कारण यह है कि देश के अन्य धंधे, विदेशी माल तथा देशी मिलों की प्रतिद्वन्दिता के कारण, नष्ट हो गये और उनमें लगी हुई जन-संख्या खेती-बारी मे लग गई। भारतवर्ष में खेती-बारी की भूमि का अकाल पड़ गया और प्रति किसान भूमि कम हो गई। यही नहीं, हिन्दुओं तथा मुसलमानों में पिता के मरने पर सब लड़कों मे बराबर-बराबर भूमि बांटने की प्रथा के कारण वह थोड़ी भूमि भी छोटे-छोटे टुकड़ों में विभाजित हो जाती है और एक स्थान पर सारे खेत न होकर खेत मीलों मे बिखरे होते है, जिसके कारण खेती वैज्ञानिक ढंग से नहीं की जा सकती और न इस धंधे मे लाभ ही हो सकता है। इस कारण किसान साधारणतया बिना कर्ज़ लिये अपना काम नहीं चला सकता। इसके अतिरिक्त बैलों की आकस्मिक मृत्यु तथा अनिश्चित खेती भी किसान को कर्ज़दार बनाती है। भारतवर्ष के किसान के पास पशुधन ही उसकी अत्यन्त मूल्यवान पूँजी है, किंतु पशुओं

की बीमारी इतनी भयङ्कर हैं और पशुओं की मृत्यु-संख्या इतनी अधिक है कि किसान का उससे बहुत हानि होती है और कर्ज़ लेकर नये पशु खरीदने पड़ते हैं। भारतवर्ष में खेती अधिकतर वर्षा पर निर्भर है, किन्तु वर्षा यहां अनिश्चित होती है जिसके कारण फसल भी अनिश्चित होती है। यदि वर्षा आवश्यकता से बहुत कम हो अथवा अति वर्षा हो तो फसल खराब होजाती है। कभी टिड्डी दल नष्ट कर देता है तो कभी कोई हवा, अथवा कीड़ा फसल को नष्ट कर देता है। जिन वर्षों में फसल अच्छी होती है उनमें तो किसान किसी प्रकार अपना काम चला लेता है किन्तु फसल खराब होने पर तो उसको कर्ज़ ही लेना पड़ता है। कुछ अर्थशास्त्रज्ञों का मत है कि किसान विवाह, मृत्यु-संस्कार तथा अन्य सामाजिक कृत्यों में अपनी स्थिति को देखते बहुत अधिक व्यय कर देता है और उसे कर्ज़ लेना पड़ता है। हो सकता है कि इसमें कुछ सत्य हो किन्तु इसमें अतिशयोक्ति की मात्रा अधिक है। कुछ प्रान्तीय बैंकिंग इनक्वायरी कमेटियों की भी इस विषय में यही सम्मति है। हां, जिस वर्ष फसल अच्छी होती है और किसान को कुछ अधिक रुपया मिल जाता है, तब बैंक इत्यादि न होने के कारण वह उसे सामाजिक तथा अन्य धार्मिक कार्यों पर खर्च कर डालता है। लेखक के मतानुसार मुक़द्दमेबाज़ी भी किसान के कर्ज़दार होने का एक मुख्य कारण है। जो लोग भारतीय अदालतों से परिचित हैं, वे जानते हैं कि किसान भूखे रहकर भी कर्ज़ लेकर मुक़द्दमे में व्यय कर देता है, वह उसमें अधाधुन्ध धन फूँकता है।

इसके अतिरिक्त लगान और मालगुज़ारी* भी किसान के

* ज़मींदारी प्रथा वाले प्रान्तों में किसान भूमि के उपयोग के लिये जो रक़म ज़मींदार को देता है, वह लगान कहलाती है, और

कर्ज़दार होने का एक मुख्य कारण है। सरकार तथा सरकारी अर्थ-भागी अर्थशास्त्र के विद्वान इस बात को मानने के लिये तैयार नहीं हैं कि लगान अथवा मालगुज़ारी अधिक है। किन्तु लेखक का तथा अन्य बहुत से विद्वानों का यह मत है कि लगान तथा मालगुज़ारी उचित से अधिक है, क्योंकि खेती-बारी में लाभ बहुत कम है। लगान या मालगुज़ारी अधिक है अथवा कम, इस विषय में मतभेद है, किन्तु इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि तीस वर्ष के लिये लगान और मालगुज़ारी पहले से निश्चित कर देने के कारण, जब कभी फ़सलें नष्ट हो जाती हैं अथवा खेती की पैदावार की कीमत बहुत गिर जाती है तो किसानों को लगान या मालगुज़ारी देना कठिन हो जाता है। यद्यपि ऐसे समय में छूट देने का प्रयत्न किया जाता है किन्तु वह आवश्यकता से बहुत कम होती है। निर्धन किसान को कर्ज़ लेकर मालगुज़ारी या लगान देना पड़ता है, क्योंकि ज़मींदार तथा सरकारी कर्मचारी उसे बड़ी सख्ती से वसूल करते हैं। यह तो पूर्व ही कहा जा चुका है कि खेती में लगे हुए मनुष्यों की संख्या आवश्यकता से अधिक है, इस कारण खेती के योग्य भूमि का अकाल है। अतः, किसान भूमि लेने के लिये लम्बे पट्टे लेता है और उचित से अधिक लगान देता है। कभी कभी कर्ज़ लेकर वह भूमि भी मोल लेलेता है। कहीं कहीं इन दो कारणों से भी वह कर्ज़दार बना हुआ है। इन कारणों के होते हुए तथा महाजन के कर्ज़ देने का ढङ्ग और भयंकर सूद को देखते हुए

सरकार जो रक़म ज़मींदार से लेती है, उसे मालगुज़ारी कहते हैं। रैयतवारी प्रान्तों में किसान जो रक़म सरकार को देता है उसे मालगुज़री कहते हैं।

यह आश्चर्य की बात नहीं है कि किसान सदा कर्जदार रहता है। किन्तु इन सब कारणों के अतिरिक्त एक कारण जिसके विषय म ऊपर के पृष्ठो में संकेत किया जा चुका है, मुख्य है; अर्थात् खेती में लगी हुई जनसंख्या की वृद्धि। १८९१ की मनुष्य-गणना मे ६१ प्रति शत मनुष्य खेती-बारी मे लगे हुए थे, यही संख्या १९०१ में ६६ प्रतिशत, १९११ मे ७१ प्रति शत, १९२१ में ७२ प्रतिशत, तथा १९३१ में ७३ प्रति शत होगई। ग्रामीण उद्योग-धन्धो का नष्ट हो जाना भी इस बढ़ी हुइ क़ज़-दारी का एक कारण है।

इस बढ़ी हुई क़र्जदारी का फल बहुत भयङ्कर हो रहा है। किसान और कारीगर महाजन के क्रीत-दास बन गये हैं। वर्ष भर परिश्रम करने के उपरांत भी उनको भर पेट भोजन नहीं मिलता एक बार क़र्ज़ ले लेने पर वह लोग महाजन के चङ्गुल से बचकर कभी निकल ही नही सकते। महाजन उनका दोहन करके आनन्द करता है, और निर्धन किसान परिश्रम करता है महाजन के लाभ के लिये। किसान किसी प्रकार अपनी आवश्यकताओ को घटा कर गुज़ारा करता है। किसी वर्ष भी यदि फ़सल नष्ट हो गई तो उसे महाजन की शरण जाना पड़ता है, और एक बार वह महाजन के पास गया नहीं कि चिर-दास बना नहीं।

क़ज़ लेना कोई बुरी बात नहीं है और न कज़दार होना ही आर्थिक हीनता का सूचक है, यदि कर्ज़ उत्पादक कार्य के लिये लिया गया हो; किन्तु अनुत्पादक कार्य के लिये लिया हुआ कर्ज़ किसान की आर्थिक मृत्यु का कारण होता है। भारतीय किसान का ऋण अधिकतर अनुत्पादक कार्यों के लिये

लिया गया है और जो ऋण उत्पादक कार्यों के लिया जाता है, उस पर इतना अधिक सूद देना पड़ता है कि किसान दिवालिया हो जाता है। किसान को इतना अधिक सूद देना पड़ता है कि खेती बारी में उसे लाभ हो ही नहीं सकता। भारतवर्ष के प्रत्येक प्रांत में सूद की दर भिन्न-भिन्न है, परंतु २० प्रति शत से लेकर ३ प्रति शत तक साधारण सूद की दर है। किन्तु कहीं कहीं ५० प्रति शत से लेकर १२० प्रति शत तक सूद देना पड़ता है। भारतीय अदालतों में ऐसे बहुत से मुक़द्दमे आये, जिनमें सूद की दर १००० प्रति शत से भी अधिक थी। कभी-कभी चतुर महाजन जितनी रक़म देता है, उससे कई गुनी लिख लेता है और अशिक्षित किसान उस पर अंगूठा लगा देता है! महाजन किसान से मूलधन तो नहीं मांगता और सूद लेता रहता है।

महाजन का सूद निकालना ही किसान के लिये कठिन होजाता है, मूलधन की बात ही क्या। फल यह होता है कि किसान सदा के लिये क़र्ज़दार बन जाता है और वर्ष भर परिश्रम करके महाजन की थैलियां भरता रहता है। किसी ने ठीक ही कहा है कि भारतीय किसान ऋणी जन्म लेता है, ऋणी ही मरता है और ऋण को भावी पीढ़ियों के लिये छोड़ जाता है। यह ऋण पीढ़ी दर पीढ़ी चलता है। क्रमशः भारतीय किसान के हृदय में यह बात बैठ गई है कि क़र्ज़दार होना अवश्यम्भावी है, इससे छुटकारा हो नहीं सकता। अस्तु, वह मुक्त होने का प्रयत्न करना भी छोड़ देता है। फल यह होता है कि जब कभी सामाजिक रूढ़ियों तथा बिरादरी के दबाव के कारण उसको सामाजिक कार्यों में धन व्यय करना पड़ता है

तो वह निश्चिन्त होकर और क़र्ज़ ले लेता है। वह जानता है कि मैं क़र्ज़दार तो अवश्य रहूँगा फिर थोड़े से अधिक खर्च के लिये बिरादरी से हँसी क्यों कराऊँ। क़र्ज़दार होने के कारण भारतीय किसान तथा गृह उद्योग-धन्धों में लगे हुए कारीगर इतने हताश हो चुके हैं कि यदि आप किसान को वैज्ञानिक ढंग से खेती करके अधिक पैदावार प्राप्त करने का आदेश दें तो वह कदापि मानने को तैयार नहीं होता, क्योंकि वह जानता है कि यदि अच्छा बीज, खाद और यन्त्रों का उपयोग करके मैंने अधिक पैदावार की भी तो वह महाजन के पास जायेगी; मैं तो जैसा पहले था वैसा फिर भी रहूँगा, मैं क्यों व्यर्थ में परिश्रम करूँ। यदि हम चाहते हैं कि कृषि की उन्नति हो और भारतीय ग्रामीणों की आर्थिक दशा सुधरे तो हमें उनको इस भयङ्कर बोझ से मुक्त करना होगा। जब तक भारतीय किसान इस भयङ्कर बोझ से पिसा जा रहा है, तब तक देश की आर्थिक दशा का सुधारना स्वप्न-तुल्य है, केवल एक सुन्दर कल्पना है, इसमें तथ्य कुछ भी नहीं है।

किसान फसल बोने के समय महाजन से सवाये अथवा ड्योढ़े पर बीज लाता है तथा खाद इत्यादि डालने के लिये क़र्ज़ लेता है। फ़सल तैयार होने पर अधिकतर उसे अपनी फ़सल शीघ्र ही बेच देनी पड़ती है क्योंकि ज़मींदार लगान के लिये, सरकार आबपाशी के लिये, तथा महाजन अपने क़र्ज़ के लिये जल्दी मचाते हैं। उस समय किसान अपना पीछा छुड़ाता है। महाजन बाजार भाव से बहुत सस्ते दामों पर फ़सल मोल लेता है। कभी-कभी तो कर्ज़ देने के समय यह निश्चय होजाता है कि किसान फ़सल महाजन के ही हाथ बेचेगा। यदि कोई

किसान समीपवर्ती मंडी में फसल बेचने जाता है तो वहां दलाल, आढ़तिया तथा व्यापारी उसको लूटते हैं। साथ ही फ़सल कटने के थोड़े दिनों के बाद तक बाज़ार का भाव बहुत मंदा रहता है और किसान को मन्दे भाव पर अपनी फ़सल बेच देनी पड़ती है। जूट, गन्ने तथा अन्य औद्योगिक कच्चे माल के किसान तो खड़सारियों तथा जूट के व्यवसायियों के चिरदास बने रहते हैं। खड़सारी फ़सल बोने के समय कुछ रुपया किसान को पेशगी दे देता है और उससे तय कर लेता है कि इस क़ीमत पर तुम्हें गन्ना अथवा रस हमें देना होगा. गन्ने अथवा रस का मूल्य साल भर पहिले से ही निश्चित हो जाता है। निर्धन किसान को गन्ने की फसल बोने के लिये रुपया चाहिये और उसे खड़सारियों से रुपया लेना ही पड़ता है। वास्तव मे स्थिति तो यह है कि परिश्रम करता है किसान. और उसका लाभ उठाते है महाजन। अधिकतर किसानो की स्थिति यह है कि फ़सल काट चुकने के उपरांत, ज़मींदार सरकार तथा महाजन का देना चुकाने पर उनके पास कठिनता से आठ महीने का भोजन बच रहता है। पिछले चार महीनों के लिये उन्हें महाजन से सवाये ड्योढ़े पर अनाज उधार लेना पड़ता है।

जिन प्रदेशों में रेल इत्यादि का विस्तार नहीं है, वहां कर्जदार केवल थोड़े से भोजन पर महाजन के यहां मजदूरी करने पर विवश होना है। जीवन भर वह कुछ कमा ही नहीं पाता कि वह अपना कर्ज़ा चुका सके। अतएव वह क्रीत (मोल लिये हुए) दास की भांति अपने महाजन का कार्य करता रहता है। बिहार के छोटा नागपुर प्रांत में, दक्षिण राजपूताना, और मध्यभारत के भील प्रदेश में, भील तथा निर्धन जातियों की स्थिति अत्यन्त

दयनीय और दासों जैसी होगई है। वे जीवन भर थोड़े से रुपये के बदले दासता करते रहते हैं। इनके अतिरिक्त वे किसान भी जिनकी दशा ऐसी गई बीती नहीं है, अपनी पैदावार बेचने में स्वतन्त्र नहीं होते और उनका भी घोर शोषण होता है।

इसी प्रकार कारीगर भी व्यापारियों और महाजनों के चङ्गुल में फँसे हुए हैं, और महाजन उनका शोषण कर रहे हैं। बुनकरों का ही धंधा ले लीजिये। निर्धन बुनकर कपड़े तथा दरी के व्यापारी से सूत उधार लाता है तथा कर्घे इत्यादि आवश्यक वस्तुओं के लिये भी रुपया लेता है। कपड़े का व्यापारी सूत का भी व्यापारी होता है। वह सूत का मूल्य अधिक लेता है। बुनकर को तैयार माल उसी व्यापारी के हाथ बेचना पड़ता है। कहीं-कहीं व्यापारी बुनकरों को कुछ रुपया एक साथ दे देता है जिसे बाकी कहते हैं। बुनकर को उसके बदले उसी व्यापारी से सूत खरीदना पड़ता है और उसी व्यापारी के हाथ तैयार माल बेचना होता है। व्यापारी सूत का अधिक दाम लेकर तथा तैयार माल का कम मूल्य देकर बुनकर को लूटता है। जब तक कि बुनकर बाक़ी का रुपया न चुका दे तब तक वह दूसरे व्यापारी के पास नहीं जा सकता। इस प्रकार महाजन कारीगरों का शोषण करते हैं। जब तक कि पूँजी के उचित मूल्य पर मिलने का तथा तैयार माल के बिकने का प्रबन्ध सहकारी समितियों के द्वारा नहीं किया जाता, तब तक गृह उद्योग-धन्धे पनप नहीं सकते।

यह तो पहले ही कहा जा चुका है कि साहूकार की ऋण देने की पद्धति तथा सूद की दर इतनी भयङ्कर है कि किसान कभी मुक्त नहीं हो सकता। भिन्न-भिन्न प्रांतीय बैंकिंग इनक्वायरी

कमेटियों ने अपने अपने प्रान्तों में जो सूद की दर लिखी है, वह इस प्रकार है:—

आसाम—१२ प्रति शत से ७५ प्रति शत तक।
बम्बई—१२ ,, ५० ,, ।
बंगाल—कम से कम १० से ३७॥ तक; अधिक से अधिक ३७॥ से ३०० तक।
बिहार उड़ीसा—१८ से ५० प्रति शत तक।
बर्मा—१८ से २४ प्रति शत तक। छोटे तथा बिना ज़मानत के कर्जों पर २८ से ६० प्रति शत तक।
मध्य प्रान्त—१२ से ३७॥ प्रति शत तक। अनाज के ऋण पर २५ से १०० प्रति शत तक।
मदरास—१२ से लेकर ४८ प्रतिशत तक।
संयुक्त प्रांत—व्यापारिक कार्यों के लिये ६॥ से १२॥ तक, तथा अनाज के कर्ज़ पर २५ प्रति शत से ४० प्रति शत तक।

पंजाब कमेटी ने केवल उन ऋणों के सूद की दर बतलाई है, जिनके लिये कुछ सम्पत्ति बन्धक रूप में रख दी गई है। वह सूद की दर ६ से १२ प्रति शत तक है।

क्रमशः इस भीषण ऋण के बोझ को न सह सकने के कारण किसानों की भूमि उनके हाथ से निकल कर महाजनों के हाथों में जाने लगी। इस भयङ्कर परिस्थिति की ओर भारत सरकार का ध्यान किसान विद्रोह ने आकर्षित किया। दक्षिण भारत, अजमेर-मेरवाड़ा, तथा छोटा-नागपुर डिविज़न में किसान विद्रोही हो उठे; उन्होंने महाजनों के घर जला दिये और उन्हें मार डाला, तथा वही खातों को जला कर भस्म

कर दिया। सरकार ने एक कमीशन दक्षिण के किसानों के विद्रोह के कारणों की जांच करने के लिये बिठाया। कमीशन की सम्मति में किसानों की गिरी हुई आर्थिक दशा और भयङ्कर सूद की दर ही इन विद्रोहों का कारण थी। शान्ति-प्रिय किसान जब महाजन का अत्याचार न सह सके तो वे विद्रोही हो गये। सरकार ने किसान की रक्षा के लिये एक एक्ट बनाया जिससे अदालतों को यह अधिकार दे दिया गया कि वे किसी भी नालिश के मुकद्दमे में न्यायोचित सूद की ही डिगरी दें, फिर किसान ने महाजन को चाहे जितना अधिक सूद देने का इकरार क्यों न किया हो। किन्तु इस एक्ट का कोई फल न हुआ, क्यों कि किसान निर्धन है और न्यायालयों में व्यय अधिक होता है; साथ ही अदालतों ने इस ओर विशेष ध्यान भी नहीं दिया।

सरकार ने फ़सल नष्ट होने पर मालगुज़ारी तथा लगान में छूट करने की नीति को अपनाया, किन्तु इससे भी किसान को विशेष लाभ नहीं हुआ। सरकार एक तो छूट बहुत कम करती है और उस छूट में भी यह शर्त लगाई जाती है कि यदि किसान एक निश्चित तारीख तक लगान नहीं दे देगा तो छूट नहीं मिलेगी। फल यह होता है कि किसान को महाजन से कर्ज़ लेकर लगान देना पड़ता है। भारत सरकार का ध्यान इस ओर आकर्षित किया गया कि भारतीय किसानों में मितव्ययिता का भाव जागृत करना चाहिये। अस्तु, पोस्ट-आफ़िस सेविंग बैंक खोले गये। किन्तु इन बैंकों ने किसानों में मितव्ययिता का कितना प्रचार किया है, यह पाठक भली भांति जानते हैं। अशिक्षित किसान भला उन पोस्ट आफ़िस सेविंग बैंकों से कैसे लाभ उठा सकता है, जिनका कार्य विदेशी भाषा में होता है, और जो अधिकतर शहरों और बड़े क़स्बों में

होते हैं। जिस देश में किसानों को मनीआर्डर और तार की लिखाई दो आने और खत की लिखाई एक आना देनी पड़ती हो, वहां भला पोस्ट आफिस सेविंग बैंक किस प्रकार किसानो को अपनी ओर आकर्षित कर सकते है। सरकार ने कई बार कानून मे सुधार इस दृष्टि से किये कि किसान को कुछ सुविधा दी जाये किन्तु कानूनो के द्वारा सरकार किसानों को कुछ भी सहायता न पहुँचा सकी।

सरकार ने देखा कि किसान को खेती-बारी का धंधा करने के लिये साख की आवश्यकता होती है। किसान को दो प्रकार की साख चाहिए अर्थात् थोड़े समय के लिये तथा अधिक समय के लिए। किसान को फसल तैयार करने के लिये जो कर्ज़ लेना पड़ता है वह लगभग एक वर्ष के लिये लिया जाता है। फ़सल के लिये किसान को बीज खाद, हल तथा अन्य औज़ारों और मज़दूरो की मज़दूरी का प्रबन्ध करना पड़ता है। किसान इनके लिये कर्ज़ लेकर फ़सल कटने के उपरांत अदा कर सकता है। किंतु कुछ कार्य ऐसे हैं जिनमें पूँजी लगाने से तुरन्त ही लाभ नहीं होता जैसे कुआ खोदना, खेती के मूल्यवान यंत्र मोल लेना, तथा भूमि को अधिक उपजाऊ बनाना इत्यादि। इन कार्यों के लिये कर्ज़ अधिक समय के लिये चाहिए। अस्तु, सरकार ने दो एक्ट बनाकर प्रांतीय सरकारो को यह अधिकार दे दिया कि वे किसान की दोनों प्रकार की आवश्यकताएँ पूरी करने के लिये कर्ज़ा दे सकती हैं। इस सरकारी कर्ज़ को तक़ावी कहते हैं किंतु तक़ावी से भी यह समस्या हल नहीं हुई और न किसानों ने तक़ावी का अधिक उपयोग ही किया। कारण यह है कि एक तो किसान को समय पर रुपया नहीं मिलता, उसको रुपये की इस समय आवश्यकता है किन्तु रुपया मिलता है देर में। इसमे

सब से बड़ा दोष यह है कि किसानो को तक़ावी पटवारी. क़ानूनगो तथा नायब तहसीलदार इत्यादि रैवन्यू विभाग के कर्मचारियों की सिफ़ारिश से ही मिलती है। इस कारण किसान को तक़ावी मिलने में कठिनाई होती है। आवश्यकता· नुसार तक़ावी मिलने में कठिनाई होने से तथा वसूलयाबी मे कड़ाई होने के कारण, तक़ावी का अधिक प्रचार न हो सका।

कर्ज़दार होने के कारण किसानों के हाथ से भूमि महाजनों के पास चली जाती है और किसान उस पर मज़दूर की भांति काम करता है। पंजाब में इस समस्या ने भीषण रूप धारण कर लिया था, इस कारण वहां एक एक्ट बना कर इसको रोक दिया गया। 'पंजाब लैंड एलीनियेशन एक्ट' के अनुसार कुछ जातियां किसान जातियां मान ली गई हैं और खेती की भूमि इन जातियो के अतिरिक्त अन्य जातियां नहीं ले सकतीं। इस एक्ट से यह लाभ हुआ कि महाजन कर्ज़ के लिये डिगरी करा कर अब किसान की भूमि नहीं ले सकते। संयुक्तप्रांत के झांसी के आस पास के प्रदेश मे तथा मध्यप्रांत के कुछ भागों मे इसी प्रकार का क़ानून लागू किया गया है।

किन्तु ऋण-समस्या जैसी पहले थी वैसी ही बनी रही। इसी बीच में भारत सरकार का ध्यान सहकारिता आन्दोलन की ओर आकर्षित हुआ और सहकारिता आन्दोलन का श्रीगणेश सरकार के द्वारा भारतवर्ष में किया गया। जर्मनी और इटली में सहकारी साख समितियों ने वहां के किसानो की आर्थिक स्थिति सुधारने में आश्चर्यजनक सफलता प्राप्त की थी। भारत सरकार ने भी ऋण-समस्या हल करने के लिए सहकारिता आन्दोलन की शरण ली।

इस देश में ४० वर्षों से ऊपर इस आन्दोलन को चलते हो गये। सहकारिता आन्दोलन कहां तक सफल हुआ है और भविष्य मे उससे क्या आशा है, यह आगे के पृष्ठों में लिखा जायगा। अनुभव से यह तो स्पष्ट ही हो गया है कि किसानो का पिछला क़र्ज़ चुकाने तथा अधिक समय के लिए किसान को क़र्ज़ देने का कार्य सहकारी साख समितियां सफलता पूर्वक नहीं कर सकतीं। और, जब तक किसान पुराने कर्ज के बोझ से दबा रहेगा तब तक उसकी आर्थिक उन्नति नहीं हो सकती। यदि किसान सहकारी साख समिति का सदस्य बनता है किन्तु महाजन का पुराना कर्ज नहीं चुका सकता तो महाजन उसको तङ्ग करता है और किसान को पुराने कर्ज पर तो भयंकर सूद देना ही पड़ता है। फल यह होता है कि किसान की मुक्ति का कोई उपाय नहीं रहता। इसी समस्या को हल करने के लिए भूमि बंधक बैंक स्थापित करने का आयोजन किया जा रहा है। यह बैंक भी उन्हीं किसानों का पिछला क़र्ज़ चुका सकेंगे, जिनके पास भूमि है, और जो उसे बैंक के पास बंधक स्वरूप रख सकेंगे। बैंक किसान से सूद सहित उस क़र्ज़ को बीस अथवा पच्चीस वर्षों मे किश्तें लेकर वसूल कर लेगा। यह प्रयोग अभी नया है, बहुत कम बैंक देश में स्थापित किये गये हैं, इस कारण इनकी सफलता के विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता। किन्तु इतना तो स्पष्ट है कि भूमि बंधक बैंक को कार्य शील पूँजी इकट्ठा करने की समस्या हल करना होगी और यदि इन बैंकों के डिबेंचर बेच कर कार्यशील पूँजी इकट्ठी भी हो गई तो भी वह बैंक उन्हीं किसानों को क़र्ज़ दे सकेंगे, जो भूमि को बंधक रख सकेंगे। बहुत से प्रांतों में किसान का भूमि पर स्वामित्व ही

नहीं है, वहां यह बैंक किसानों की सहायता न कर सकेंगे।

ऋण परिशोध— यह तो पहले कहा जा चुका है कि पुराने क़र्ज़ को चुकाने की समस्या बहुत कठिन है। अधिकतर यह ऋण पैतृक होता है, यह एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी पर आता है। किसान की आर्थिक स्थिति इतनी शोचनीय हो गई है कि वह इस क़र्ज़ को चुका नहीं सकता। जब साधारण रूप से फ़सल तयार करने के लिये महाजन अथवा सहकारी साख समिति से लिये हुए क़र्ज़ को देकर उसके पास वर्ष भर के लिए खाने को नहीं रहता, तब वह किस प्रकार पुराने क़र्ज़ को चुका सकता है! जिस बर्ष फ़सल ख़राब हो जाती है बैल मर जाते हैं, अथवा और कोई अनिवार्य ख़र्च आ जाता है तो ऋण अधिक बढ़ जाता है। जब तक पुराने क़र्ज़ को चुका नहीं दिया जाता अथवा इसको ग़ैर-क़ानूनी नहीं बना दिया जाता तब तक किसानों की आर्थिक स्थिति सुधर नहीं सकती। शाही कृषि कमीशन ने अपनी रिपोर्ट में इस विषय पर लिखा है कि इस ऋण की ओर से उदासीन रहना बहुत भयंकर होगा।

सैंट्रल बैंकिङ्ग इनक्वायरी कमेटी की सम्मति में सरकार को इस ओर ध्यान देना चाहिए और निम्नलिखित योजना के अनुसार कार्य करना चाहिये :—

प्रांतीय सरकार इस कार्य के लिए विशेष कर्मचारी नियुक्त करे, जो गांवों में दौरा करके महाजन को इस बात पर राज़ी करें कि वह किसानों से एक मुश्त अथवा क़िस्तों में रुपया लेकर उन्हें ऋण-मुक्त कर दे। इन कर्मचारियों का यह भी कर्तव्य होगा कि वे किसानों को यह बतलावें कि क़ानून द्वारा निश्चित सूद की दर को घटवाया जा सकता है।

जब कर्मचारी महाजन से तय करले कि वह कम से कम कितना रुपया लेकर किसान को ऋण-मुक्त कर देगा, तब किसान को सहकारी साख समिति का सदस्य बनवा दिया जावे। समिति उसका कर्ज़ इकट्ठा अथवा क़िस्तों में चुका दे तथा खेती-बारी के लिये किसान को आवश्यक साख दे।

जब महाजन रुपया वार्षिक किस्तों में लेना स्वीकार करे तो जितना किसान स्वयं अदा कर सकता हो, करदे, और बाक़ी का ऋण समिति, सदस्य की जमा के रूप में, अपने यहाँ लिख ले और प्रति वर्ष जब किस्त का रुपया अदा करे तो जमा किया हुआ रुपया कम कर दिया जावे।

यदि महाजन एकमुश्त रुपया मांगे तो सरकार को उतना रुपया समिति को उधार दे देना चाहिये; समिति उस कर्ज़ को वार्षिक किस्तों में चुका दे। तदुपरांत यह निश्चय किया जावे कि किसान प्रति वर्ष कितनी किस्त अदा करे। यदि किसान रुपया अदा न कर सके और समिति को हानि हो जावे तो सरकार उस हानि को पूरा करदे।

यह भी सम्भव है कि महाजन कर्ज़ के इस प्रकार चुकाये जाने के लिये तैयार न हों और समझौता न करें। ऐसी परिस्थिति में उन्हे कानून बना कर समझौते के लिये मजबूर किया जावे।

शाही कृषि-कमीशन ने भी पैतृक ऋण के विषय पर अपनी सम्मति दी थी। कमीशन की सम्मति मे ग्रामीण 'इन्सालवैंसी (दिवाला) एक्ट' बनाया जावे। इससे यह लाभ होगा कि जो ग्रामीण ऋण के बोझ से इतना दबा हो कि उसकी सम्पत्ति के बिक जाने पर भी वह कर्ज़ अदा न कर सके वह दिवालिया

होने का प्रार्थना-पत्र दे दे और अपनी सम्पत्ति लेनदारों को देकर ऋणमुक्त हो जावे, और स्वतन्त्र रूप से आजीविका उपार्जन करे। चाहे उसकी सम्पत्ति से लेनदारों का आधा रुपया भी वसूल न हो सके. वे उस किसान से रुपया भविष्य में वसूल नहीं कर सकते। किसान सदा के लिए उस ऋण से मुक्त हो जायगा। यह एक्ट पास हो गया है। किन्तु इसका लाभ साधारण किसान नहीं उठा सकता, क्योंकि एक्ट में विशेष प्रकार के किसानों को ही यह सुविधा दी गई है।

ऋण-परिशोध के प्रयत्न—भारतवर्ष में सर्व प्रथम किसानों को ऋणमुक्त करने का श्रेय काठियावाड़ की एक छोटी सी रियासत भावनगर को है। वहां के दीवान स्वर्गीय सर प्रभाशङ्कर पट्टनी ने एक आज्ञा निकाल दी कि जिस किसी महाजन का किसी किसान पर कर्ज़ा हो वह राज्य को उसकी सूचना निश्चित तारीख तक दे दे, नहीं तो उसका कर्ज़ गैर-कानूनी घोषित कर दिया जायगा। जब राज्य के सभी महाजनों की सूचनाएँ आगईं तो राज्य ने हिसाब लगा कर देखा कि तमाम किसानों का ऋण ८६, ३८, ८७४ रुपया निकला। स्वर्गीय प्रभाशङ्कर पट्टनी ने महाजनों के सामने यह प्रस्ताव रखा कि राज्य उस तमाम ऋण के बदले २०,५६,४७३ रु० देकर किसानों को ऋणमुक्त कर देना चाहता है। पहले तो महाजन इस समझौते के लिए तैयार न हुए। किन्तु जब उन्होंने देखा कि राज्य किसानों को ऋणमुक्त करने पर तुला हुआ है और हमारे द्वारा इस प्रस्ताव को न मानने का फल यह होगा कि राज्य ऐसा कानून बना देगा कि उन्हें अपना रुपया वसूल करने में कठिनाई हो जायगी, तो वे राजी हो गए। राज्य ने २०, ५६,४७३ रु०

देकर सब किसानों को महाजनों के ऋण से मुक्त कर दिया। ध्यान रहे कि भावनगर राज्य के किसान उस तमाम ऋण पर हर साल २५ लाख रुपये केवल सूद में दे देते थे। राज्य ने एक साल की सूद की रकम से भी कम देकर किसानों को बिलकुल ऋणमुक्त कर दिया। राज्य ने किसानो से यह रकम किस्तों मे लगान के साथ वसूल करना आरम्भ कर दिया है और थोड़े ही दिनों मे ही किसान अपना सारा कर्ज़ अदा कर देगा। इसका फल यह हुआ है कि किसान बिना किसी के कहे अच्छे हल, बैल खाद इत्यादि का उपयोग करने लगा है, उसने कुएँ खोदकर वैज्ञानिक ढङ्ग की खेती को अपनाया है, क्योंकि उसको अब विश्वास हो गया है कि उसकी पैदावार उसके पास रहेगी। राज्य को एक बड़ा लाभ यह हुआ है कि अब उसे बिना किसी कठिनाई के मालगुज़ारी मिल जाती है। भविष्य में राज्य फिर किसान के चंगुल मे न फँस जावे इसलिए राज्य ने एक कानून (खेड़ूत रक्षा कानून) बना कर किसान की साख को बहुत सीमित कर दिया है। वह केवल कुछ विशेष कार्यों के लिए, और कुछ विशेष अवस्थाओं में ही, कर्ज़ ले सकेगा। खेती-बारी के लिए आवश्यक साख का प्रबन्ध राज्य ने ही किया है। राज्य ने तकावी देने का समुचित प्रबन्ध किया है, और सूद बहुत कम लिया जाता है।

भावनगर का प्रयोग एक देशी राज्य मे हुआ है। ब्रिटिश प्रांतो में यह कार्य उतना सरल नहीं है। फिर भी पिछले वर्षों में (१९३६ से १९३९ तक) प्रांतीय मंत्रिमंडलों ने इस ओर विशेष ध्यान दिया और किसान की रक्षा के लिए कुछ कानून बनाये; उनमें निम्नलिखित कानून मुख्य हैं।

ब्रिटिश भारत के कानून—बंगाल आसाम, मध्यप्रांत बिहार, पञ्जाब और संयुक्तप्रांत में महाजन पर नियंत्रण रखने के उद्देश्य से कानून बनाये गए। संयुक्तप्रांत में वह बिल की सूरत में रहा, कानून न बन पाया। भिन्न-भिन्न प्रांतों के कानूनों में थोड़ी सी भिन्नता है। परन्तु उनकी मुख्य बातें एक सी ही हैं।

प्रांतीय सरकारों ने सूद की दर निश्चित कर दी है। भिन्न-भिन्न प्रांतों में सूद की दर इस प्रकार है:-

	सुरक्षित ऋण		अरक्षित ऋण	
प्रांत	सूद	सूद-दर-सूद	सूद	सूद-दर-सूद
मदरास ...	६। %	..	६। %	..
बम्बई ...	९ %	मना है	१२ %	मना है
बङ्गाल .	१५ %	१० %	२५ %	१० %
पंजाब ..	१२ %	६ %	१८ %	१४ %
बिहार ..	६ %	मना है	१२ %	मना है
मध्यप्रांत ...	७ %	५ %	१० %	५ %
आसाम .	१२॥%	मना है	१८॥%	मना है

संयुक्तप्रांत में व्याज की दर ऋण की रकम पर निर्भर है, और इस प्रकार है।

	सुरक्षित		अरक्षित	
रकम	सूद	दर सूद	सूद	दर सूद
५०० रु० से कम—	५॥ %	३ %	१०॥ %	७॥ %
५०१ से ५००० रु० तक	४॥ %	२॥%	८ %	७ %
५००१ से २०,००० रु० तक	३॥ %	२ %	६॥ %	४॥ %
२०,००० रु० से अधिक	२॥ %	१॥%	५॥ %	३ %

यह दर सन् १९१० के बाद के लिए हुए ऋण पर ही लागू होगी। इसके पहले लिए ऋण पर ब्याज की दर दूसरी है।

कानून के अनुसार प्रत्येक महाजन को सरकार से एक लायसेंस लेना होगा। कुछ प्रांतों में लायसेंस लेना अनिवार्य है और कुछ में यह महाजन की इच्छा पर निर्भर है। परन्तु इन प्रांतों में भी यदि महाजन ने लायसेंस नहीं लिया है तो वह अपने रुपये के लिये अदालत में नालिश न कर सकेगा। हर एक लायसेंसदार महाजन को नियमानुसार हिसाब रखना होगा और प्रत्येक कर्जदार को निश्चित समय पर उसका हिसाब लिखकर देना होगा। जब कभी कर्जदार कुछ रुपया महाजन को दे तो महाजन को उसकी रसीद देनी होगी। यदि कोई महाजन इन नियमों का पालन नहीं करेगा तो उसको दण्ड दिया जावेगा।

१९३६ के उपरान्त प्रान्तीय मंत्रिमंडलों ने किसानों के ऋण की समस्या को हल करने का थोड़ा बहुत प्रयत्न अवश्य किया। किंतु विशेष सफलता कहीं भी नहीं मिली और न कोई क्रांतिकारी योजना ही काम में लाई गई।

किसान को क़र्ज मुक्त करने के लिये यह आवश्यक समझा गया कि उसके क़र्ज की रकम को किसी प्रकार कम कर दिया जाय। इसके लिए दो प्रकार के कानून बनाये गए। एक प्रकार के कानून वह है, जिनमें महाजन को क़र्ज की रकम कम करने के लिए विवश नहीं किया जा सकता, केवल उस पर दबाव डाला जा सकता है। दूसरे प्रकार के कानून वह हैं, जिनमें महाजन को क़र्ज की रकम कम करने के लिए विवश किया जाता है। पहले प्रकार के कानून द्वारा सरकार जिलों में ऋण समझौता

बोर्ड स्थापित करती है। बोर्ड के सामने महाजनों को अपने कागज़ तथा हिसाब पेश करना होता है, यदि किसी किसान के ४० प्रतिशत लेनदार बोर्ड के फैसले को मान लें (अर्थात् बोर्ड जितनी कहे उतनी रकम कम कर दें) तो बोर्ड उस किसान को एक सर्टिफिकेट दे देता है, और वे लेनदार जिन्होंने बोर्ड का फैसला अस्वीकार कर दिया है, उस समय तक किसान से अपनी रकम वसूल नहीं कर सकते, जब तक कि उन लेनदारों की रकम वसूल न हो जावे जिन्होंने बोर्ड का समझौता स्वीकार कर लिया है। यदि कोई लेनदार बोर्ड के मांगने पर अपने कागज़ उपस्थित नहीं करता अथवा किसी किसान विशेष पर उसका कितना रुपया है, यह नहीं बतलाता तो उसको भविष्य में अपनी रकम वसूल करने का कानूनी अधिकार नहीं रहता। इसका फल यह होता है कि बहुत से महाजन बोर्ड का फैसला मान लेते हैं। इस प्रकार का कानून आसाम, पञ्जाब, बङ्गाल, मध्यप्रांत तथा मदरास में प्रचलित है। किन्तु कांग्रेसी मंत्रि-मंडलों ने मदरास तथा मध्यप्रांत में ऐसा कानून बना दिया, जिससे महाजनों को रकम कम करने के लिए विवश किया जाता है। मदरास किसान रिलीफ एक्ट के अनुसार १ अक्टूबर १९३२ के पहले लिए हुए ऋण पर १ अक्टूबर १९३७ तक का बकाया सूद माफ कर दिया गया है; केवल मूल ही देना होगा। यदि मूल अथवा सूद की अदायगी के रूप में मूल से दुगुनी रकम अदा कर दी गई हो तो सारा ऋण चुक गया मान लिया जावेगा, और यदि अदा की हुई रकम मूल ऋण के दुगने से कम हो तो शेष देकर किसान ऋणमुक्त हो जायगा। जो ऋण १ अक्टूबर १९३७ के उपरान्त लिया गया है उनके मूल पर ५ प्रतिशत सूद लगा कर कुल रकम मालूम कर ली

जाती है और उसमें से जितना ऋण किसान ने अदा कर दिया है, उसको घटा कर जो रकम शेष रहती है, वह क़र्ज़दार को देनी पड़ती है। इस रकम पर भविष्य में किसान को केवल ६। प्रतिशत सूद देना पड़ता है।

मध्यप्रांत में कानून के द्वारा यह निश्चित कर दिया गया है कि यदि ऋण ३१ दिसम्बर १९२५ के पूर्व लिया हो तो ऋण की रक़म ३० प्रतिशत कम कर दी जायगी। यदि ऋण १ जनवरी १९२६ के उपरांत और अक्टूबर १९२९ के पहले लिया गया हो तो २० प्रतिशत और यदि ऋण १ अक्टूबर १९२९ के बाद और ३१ दिसम्बर १९३० के पहले लिया गया हो तो १५ प्रति शत ऋण कम कर दिया जायगा।

संयुक्तप्रांत में भी कांग्रेसी सरकार ने इस आशय का कानून बनाने का प्रयत्न किया था। उसके अनुसार महाजन को एक वर्ष के अन्दर अपने कर्ज़दारों पर नालिश कर देनी होती, नहीं तो फिर क़र्ज़ चुकता मान लिया जाता। उसके साथ ही अदालत रक्षित क़र्ज़ पर ५ प्रतिशत तथा अरक्षित क़र्ज़ पर ८ प्रतिशत के हिसाब से सूद लगाकर तथा 'दाम दुपत' के नियम के अनुसार क़र्ज़ की रक़म कम कर देती। युद्ध से उत्पन्न होने वाली राजनैतिक परिस्थिति वश कांग्रेस सरकारें टूट गईं और दूसरे प्रांतों में इस प्रकार के कानून न बन पाये। जो कानून बने, उनके द्वारा भी किसान ऋणमुक्त हो सकेगा, इसमें बहुत सन्देह है।

लेखक की योजना—यदि हम चाहते हैं कि किसान महाजनों की आर्थिक दासता से स्वतन्त्र होकर खेती-बारी की

उन्नति करे, ग्रामीण उद्योग धन्धों की सहायता से अपनी आय को बढ़ावे और मनुष्यों जैसा जीवन व्यतीत करे तो उसे ऋण-मुक्त करना होगा। इसके लिए प्रांतीय सरकारों को दृढ़तापूर्वक क्रान्तिकारी तरीकों को अपनाना होगा। लेखक भारतीय किसानों को ऋणमुक्त करने की एक योजना यहां उपस्थित करता है:—

जिन किसानों की दशा इतनी अधिक शोचनीय हो कि वे अपने क़र्ज को चुकाने में असमर्थ हों, उन्हें एक सरल और सादा ग्रामीण दिवालिया कानून बनाकर ऋणमुक्त कर दिया जाय। इसके लिए एक विशेष प्रकार का दिवालिया एक्ट बनाना होगा। उसके अनुसार किसान के बैल, खेती के औज़ार ६ महीने का भोजन, बीज और स्वाद लेनदार न ले सकें। इनके अतिरिक्त, किसान के पास और जो, कुछ भी हो, उसको लेनदारों में बांट कर किसान को ऋण मुक्त कर दिया जाय। हमारा अनुभव है कि अधिकांश किसान इसी तरह के होंगे। शेष किसान जो कि कुछ हद तक कर्ज को दे सकते हों, उनके ऋण को ५० प्रतिशत करके सरकार उसकी अदायगी की जिम्मेदारी अपने ऊपर ले ले। प्रश्न यह हो सकता है कि सरकार इतना रुपया कहां से लावे। इसके लिए दो उपाय काम में लाये जासकते हैं। पहला उपाय यह है कि सरकार इस कार्य के लिए कर्ज ले और महाजनों को कम की हुई रकम अदा करके किसानों को ऋणमुक्त कर दे; और वह रकम किसानों से छोटी छोटी किस्तों में वसूल कर ली जाय। दूसरा उपाय यह है कि सरकार कम की हुई रकम के लिए प्रत्येक महाजन को बौंड दे दे, जिस पर सरकार ३ प्रतिशत सूद दे और यह शर्त रहे कि

सरकार जब चाहेगी, तभी उन बौंडस् का भुगतान कर देगी तदुपरांत प्रत्येक किसान को, जिसका क़र्ज़ सरकार ने महाजन को दे दिया है, अपना क़र्ज़ सरकार को किस्तों में अदा करना होगा। किन्तु इससे पूर्व कि इस प्रकार की कोई योजना हाथ में ली जाय किसान के क़र्ज़ की जांच करवालेना आवश्यक है। इसमें प्रत्येक प्रांत के विश्वविद्यालयों तथा कालेजों के अर्थशास्त्र विभागों से सहायता ली जासकती है।

जो हो, यह निर्विवाद सत्य है कि किसान को बिना क़र्ज़ मुक्त किये उसकी दशा नहीं सुधर सकती, किंतु ऋणमुक्त कर देने से ही समस्या हल नहीं होगी। एक कानून बनाकर किसान की साख को बहुत मर्यादित कर देना होगा, जिससे भविष्य में वह महाजन के चगुल में न फँसे। साथ ही सहकारी साख समितियों का एक जाल बिछा कर सरकार को खेती बारी के लिए आवश्यक साख का उचित प्रबन्ध करना होगा। इसके अतिरिक्त, सामाजिक कृत्यों (विवाह, मृतक भोज, तीर्थ, पर्व इत्यादि) पर व्यर्थ व्यय न करने तथा मुक़दमेबाज़ी में क़र्ज़ लेकर व्यय न करने के लिए गांवों में प्रचार करना होगा। उन्हें शिक्षित करना होगा तभी वे ऋण मुक्त हो सकेंगे।

कुछ लोग इस प्रकार की योजनाओं को अन्यायपूर्ण और समाजवादी कहकर बदनाम करते हैं। स्थिर स्वार्थ वाले लोग यह कहते नहीं थकते कि इससे वायदे की पवित्रता नष्ट हो जायगी। किंतु किसान के क़र्ज़ के सम्बन्ध में वायदे की दुहाई देना स्वार्थपरता के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। क्या अशिक्षित किसान से अंगूठा लगवा लेना न्याय है; क्या ज़रूरत के समय निर्धन किसान से जितना चाहे सूद लेलेना न्याय है?

और क्या किसान का लगातार शोषण करना न्याय है ? यदि जरूरत के समय किसान विवश होकर १०० रु० क़र्ज़ लेकर १५० रु० पर अंगूठा लगा देता है अथवा ७५ फी सैकड़ा सूद देने पर राज़ी हो जाता है तो इसमें वायदे की पवित्रता का प्रश्न कहाँ उठता है ! स्थिर स्वार्थ वाला वर्ग तो किसान को किसी प्रकार की सुविधा दिए जाने पर इसी प्रकार आंदोलन करेगा। अतएव राष्ट्रीय सरकार को उसकी तनिक भी चिंता न करके इस अत्यन्त महत्वपूर्ण राष्ट्रीय समस्या को हल कर ही देना चाहिए।

चौथा परिच्छेद

सहकारिता आन्दोलन का श्रीगणेश और सहकारिता क़ानून

पिछले परिच्छेद में कहा जा चुका है कि १८७८ में बम्बई प्रांत के पूना तथा अन्य ज़िलों में किसान विद्रोही हो उठे थे। उसके सम्बन्ध में एक जांच कमेटी बैठाई गई थी और उस कमेटी ने विद्रोह का मूल कारण ग्रामीण क़र्ज़ बतलाया था। इस पर बम्बई सरकार ने दक्षिण रिलीफ एक्ट बनाकर किसानों की रक्षा करने का प्रयत्न किया। १८८२ में सर विलियम वैडरबर्न तथा श्री० गोखले ने ग्रामीण क़र्ज़ की समस्या को हल करने के लिये कृषि-बैंक की एक योजना सरकार के सामने उपस्थित की। योजना मोटे रूप में यह थी कि एक ताल्लुका अथवा

जिला ले लिया जावे, सरकार उस जिले के किसानों का सारा क़र्ज़ चुका दे और कृषि-बैंक स्थापित कर दे; बैंक सरकारी क़र्ज़ अपने ऊपर लेले और प्रति वर्ष किस्तों में सूद सहित रुपया किसानों से वसूल करे। किंतु भारत-मंत्री ने इस योजना को अस्वीकार कर दिया क्योंकि यह 'व्यवहारिक' नहीं थी। इसके उपरांत १८८३ और १८८४ में तक़ावी एक्ट ❀ पास किये गये, जिनके द्वारा प्रांतीय सरकारों को उचित सूद पर किसानों को क़र्ज़ देने का अधिकार मिल गया। इसी बीच में दुर्भिक्ष-कमीशन ने भी, किसानों की शोचनीय दशा का वर्णन करते हुए, अपनी रिपोर्ट में कृषि-बैंक खोलने के विषय में सम्मति देदी। जर्मनी में इसी समय सहकारिता आंदोलन बड़ी तेज़ी से बढ रहा था, मदरास सरकार ने अपने एक कमचारी श्री० फ्रैडरिक निकलसन को जर्मनी में सहकारिता आन्दोलन का अध्ययन करने के लिये भेजा। श्री० निकलसन ने वहां की साख-समितियों का अध्ययन करने के बाद एक रिपोर्ट लिखी और उसमें यह बतलाया कि यदि भारतीय किसान की आर्थिक दशा को सुधारना हो तो देश में रैफ़ीसन को ढूँढ निकालो। इसके उपरांत सयुक्तप्रांत के श्रीयुत डब्यूपरनैक्स ने सहकारिता आंदोलन का अध्ययन करके 'पीपल्स बैंक' नाम की पुस्तक लिखी। इन सब प्रयत्नों का फल यह हुआ कि भारत सरकार का ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ और एक कमेटी इस विषय पर विचार करने के लिए बैठाई गई। इस कमेटी की रिपोर्ट प्रकाशित होने पर उसकी सम्मति के अनुसार १९०४ में प्रथम सहकारिता एक्ट

❀Land Improvement Loans Act, and Agriculturists Loan Act

पास होगया। इस कमेटी के सभापति सर एडवर्ड ला थे, जो उस समय भारत-सरकार के अर्थ-सचिव थे।

२५ मार्च सन १९०४ को भारतवर्ष मे सहकारिता आंदोलन का श्रीगणेश हो गया। इस एक्ट के अनुसार किसानों, गृह-उद्योग-धंधों, तथा नीची श्रेणी के लोगों के लिये साख-समितियों के खोलने का आयोजन किया गया। एक्ट संक्षेप में इस प्रकार था। अठारह वर्ष से अधिक के कोई दस मनुष्य सहकारी साख समिति स्थापित कर सकते हैं। सदस्यों को एक ही गांव तथा एक ही स्थान का होना आवश्यक है, जिसमें वे एक दूसरे के विषय में पूर्ण जानकारी प्राप्त कर सकें। समितियां दो प्रकार की होंगी, ग्रामीण और नगर समितियां। ग्राम्य समिति में ८० प्रति शत सदस्यों का किसान होना, और नगर-समितियों में ८० प्रति शत कारीगरों तथा अन्य पेशे वालों का होना आवश्यक है। ग्राम्य समितियों के सदस्यों का दायित्व, अपरिमित होगा, किन्तु नगर समितियों के सदस्यों का दायित्व यदि वे निश्चय करलें, परिमित भी हो सकता है। ग्राम्य समिति का सब लाभ सुरक्षित कोष में जमा करना आवश्यक है। हां, जब सुरक्षित कोष एक निश्चित रक़म से ऊपर पहुँच जावे तो तीन-चौथाई लाभ सदस्यों में बांटा जा सकता है। नगर-समितियों में लाभ के बांटने पर कोई रुकावट नहीं लगाई गई; हां, यह नियम बनाया गया कि २५ प्रति शत लाभ सुरक्षित कोष में जमा किया जावे। समितियां व्यक्तिगत ज़मानत पर रुपया दे सकती हैं, परन्तु चल सम्पत्ति की ज़मानत पर रुपया नहीं दे सकतीं। समितियों के आय-व्यय कि जांच रजिस्ट्रार द्वारा भेजे हुए परीक्षकों के द्वारा होगा। एक्ट ने समितियों को कुछ सुविधाएँ भी प्रदान

कीं। समितियों के लाभ पर आय-कर नहीं लिया जाता, समितियों को स्टाम्प-फीस नहीं देनी पड़ती, और किसी भी सदस्य के व्यक्तिगत ऋण के लिये उसका (समिति में) हिस्सा कुर्क नहीं कराया जा सकता।

सहकारिता एक्ट के पास होते ही सब प्रान्तों में प्रान्तीय सरकारों ने रजिस्ट्रार नियुक्त कर दिये, जिन्होंने प्रान्तों में सहकारिता आन्दोलन की देख-भाल प्रारम्भ कर दी। रजिस्ट्रार आरम्भ में समितियों का संगठन, उनकी देख भाल, तथा उनको रजिस्टर करने का कार्य करता था। किन्तु थोड़े ही समय के उपरान्त रजिस्ट्रार तथा अन्य कार्यकर्त्ताओं को एक्ट के दोषों का अनुभव होने लगा। कई बार सब प्रान्तों के रजिस्ट्रारों के सम्मेलन हुए और उन्होंने एक्ट के संशोधन की आवश्यकता बतलाई। १९०४ के एक्ट के अनुसार साख-समितियों के रजिस्टर करने की तो व्यवस्था होगई, किन्तु ग़ैर-साखसमितियों, सेन्ट्रल बैंक, बैंकिंग यूनियन, तथा सुपरवायज़िङ्ग यूनियन के रजिस्टर करने की सुविधा नहीं हुई। १९०४ के उपरान्त जब देश में साख-समितियों की स्थापना होने लगी, उसी समय यह आवश्यक समझा गया कि साख समितियों का निरीक्षण करने के लिये तथा उनको पूँजी देने के लिये सेन्ट्रल बैंक तथा बैंकिङ्ग यूनियन की स्थापना की जावे, क्योंकि साख समितियों के पास सदस्यों की आवश्यकताओं को पूरी करने के लिये यथेष्ट पूंजी नहीं थी। सेन्ट्रल बैंकों की स्थापना कम्पनी एक्ट के अनुसार ही हो सकती थी, न कि सहकारिता एक्ट के अनुसार। साथ ही इस बात का अनुभव हुआ कि देश को ग़ैर-साख समितियों की भी अत्यन्त आवश्यकता है, उदाहरणार्थ गृह-

उद्योग-धंधों को प्रोत्साहन देने के लिये, खेतों की पैदावार को उचित मूल्य पर बेचने के लिये, तथा उपभोक्ताओं को उचित मूल्य पर वस्तुएं देने के लिये सहकारी समितियों की स्थापना की आवश्यकता प्रतीत हुई। किन्तु १९०४ के एक्ट में ग़ैर-साख समितियों के संगठन के लिए कोई भी सुविधा न थी। इन सब दोषों को देखते हुए यह आवश्यक समझा गया कि एक नया एक्ट बनाया जाय। अस्तु, सन् १९१२ में दूसरा एक्ट बनाया गया, जो भारतवर्ष में अब तक प्रचलित है।

यद्यपि अब लगभग सभी प्रांतों ने अपने पृथक सहकारिता कानून पास कर लिए हैं, वे कानून मूलतः १९१२ के भारतीय कानून पर ही आश्रित हैं; केवल अपनी सुविधा के लिए उन्होंने कहीं कहीं संशोधन कर लिए हैं। १९१९ के शासन विधान के फलस्वरूप सहकारिता प्रांतीय विषय बना दिया गया। अतएव प्रांतों ने अपने पृथक एक्ट बना लिए परन्तु उनमें और १९१२ के एक्ट में विशेष भेद नहीं हैं।

हाँ, कुछ प्रांतों में इस बात का अवश्य प्रयत्न हुआ है कि रजिस्ट्रारों के अधिकार और शक्ति जो पहले ही बहुत अधिक थी, और भी बढ़ा दी जाय। इसका आन्दोलन पर बुरा असर पड़ सकता है; क्योंकि वैसे भी आंदोलन पर सरकारी कर्मचारियों का अत्याधिक प्रभाव है; आंदोलन एक प्रकार से सरकारी नीति के अनुसार चलाया जा रहा है।

एक्ट के अनुसार प्रत्येक प्रांत सहकारिता आंदोलन की देख भाल के लिये रजिस्ट्रार नियुक्त कर सकता है। रजिस्ट्रार का कार्य केवल समितियों को रजिस्टर करना ही नहीं है, वरन उनका निरीक्षण, तथा उनके आय-व्यय की जांच करना भी

है। यदि वास्तव में देखा जावे तो सहकारिता आंदोलन का सर्वे सर्वा रजिस्ट्रार ही होता है। सहकारिता के एक प्रसिद्ध विद्वान के शब्दों में वह आंदोलन का मित्र, पथ-प्रदर्शक, तथा उपदेशक है। रजिस्ट्रार की अधीनता में डिप्टी रजिस्ट्रार से लेकर आय-व्यय-परिक्षकों तक बहुत से कर्मचारी होते हैं, जो आंदोलन की देखभाल करते रहते हैं। (धारा ३)

रजिस्ट्रार को पंचायत के भी अधिकार प्राप्त हैं समितियों के झगड़ों का या तो वह स्वयं सुनकर निर्णय दे देता है, अथवा और किसी को नियुक्त कर देता है। जब कभी कोई समिति टूट जाती है तो रजिस्ट्रार 'लिक्वीडेटर' (हिसाब पटाने वाला) नियुक्त कर देता है।

एक्ट के अनुसार कोई भी समिति जो अपने सदस्यों की आर्थिक उन्नति का प्रयत्न, सहकारिता के सिद्धांतों के अनुसार करने के लिये स्थापित की गई हो, रजिस्टर की जा सकती है। बड़े-बड़े व्यवसायी अथवा पूँजीपति इस एक्ट की आड़ में अपने धंधों का संगठन सहकारी समितियों के रूप में न करलें, इसलिए वही सहकारी समितियां रजिस्टर की जा सकती हैं, जिनके सदस्य किसान, कारीगर अथवा छोटी हैसियत के आदमी हों। (धारा ४)

समितियों के सदस्यों का दायित्व परिमित भी होसकता है, तथा अपरिमित भी। यदि समिति साख का काम करती है और उस के सदस्य समिति न होकर व्यक्ति हैं, अथवा अधिकांश सदस्य किसान हैं, तो ऐसी समिति के सदस्यों का दायित्व अपरिमित होगा। अपरिमित उत्तरदायित्व का अर्थ यह है कि प्रत्येक सदस्य केवल अपना कर्ज ही चुकाने का जिम्मेवार नहीं है, वरन उसको

समिति का सारा क़र्ज़ चुकाना होगा। उदाहरण के लिये मान लिया जावे कि अनन्तपूर नामक गांव में एक सहकारी साख समिति स्थापित कीगई. जिसके सदस्यों का दायित्व अपरिमित है। कालान्तर में यदि वह साख समिति दिवालिया हो जाती है और उसकी लेनी से देनी अधिक हो जाती हैं, तो उस समय समिति का कोई भी लेनदार समिति के किसी एक सदस्य से अपना सारा ऋण वसूल कर सकता है। मान लीजिए कि अनन्तपूर साख समिति के और सब सदस्य अत्यन्त निर्धन हैं, केवल दो या तीन सदस्य ऐसे हैं, जिनके पास अधिक सम्पत्ति है; तो समिति के सारे ऋणदाता समिति का सारा कर्ज़ा उन धनी सदस्यों से वसूल कर सकते है, और उन सदस्यों को अपनी सारी सम्पत्ति बेचकर भी समिति का क़र्ज़ चुकाना पड़ेगा।

यदि सहकारी समिति ऐसी है जिसके सदस्य व्यक्ति भी है. तथा अन्य समितियां भी हैं; या फिर समिति के सदस्य अधिकतर किसान नहीं है. तो उस समिति के सदस्यों का दायित्व उनके हिस्सों के मूल्य से अधिक नहीं होगा। यदि किसी सदस्य ने किसी परिमित दायित्व वाली समिति में १०) रुपये का हिस्सा लिया है और उसने अपने हिस्से का पूरा मूल्य चुका दिया है तो उसको किसी दशा में भी अधिक कुछ नहीं देना होगा। (धारा ४)

इस आशंका को दूर करने के लिये कि कहीं कोई व्यक्ति-विशेष, सहकारी समिति पर अपना एकाधिपत्य न जमाले, यह नियम बना दिया गया है कि परिमित दायित्व वाली समितियों में कोई एक सदस्य अधिक से अधिक. मूल धन के

बीस प्रति शत के हिस्से, (यदि कोई समिति चाहे तो उपनियम बनाकर इससे भी कम रकम निश्चित कर सकती है) या एक हज़ार रुपये के हिस्से (इनमें जो रकम भी कम हो) खरीद सकता है। बम्बई प्रान्तीय एक्ट के अनुसार साधारण समितियों के लिये यह रकम ३ हजार रुपये, तथा गृह-निर्माण समितियों के लिये दस हजार रुपये निश्चित की गई है। किन्तु यह पाबन्दी केवल व्यक्तियों के लिये है, समितियों के लिये कोई भी पाबन्दी नहीं है। सदस्य-समितियां चाहे जितने मूल्य के हिस्से खरीद सकती हैं। (धा० ५)

जिन समितियों के सदस्य केवल व्यक्ति हैं, वे तभी रजिस्टर की जा सकती हैं, जब नीचे लिखी बातें पूरी हों (धारा ६):—

(क) समिति के कम से कम दस सदस्य हों और उनकी आयु १८ वर्ष से कम न हो।

(ख) यदि समिति साख का काम करना चाहती है तो सदस्यों का एक ही गांव समीपवर्ती गांवों के समूह, अथवा एक कस्बे का निवासी होना आवश्यक है। यदि सदस्य एक ही स्थान के निवासी नहीं है तो उनका एक ही जाति, पेशे अथवा कौम का होना आवश्यक है। किन्तु रजिस्ट्रार को यह अधिकार है कि यदि वह चाहे तो ऐसी समिति को भी रजिस्टर करले जिसमें भिन्न-भिन्न जातियों के सदस्य हों।

(ग) समिति का ध्येय अपने सदस्यों की आर्थिक स्थिति को सहकारिता के द्वारा सुधारना, होना चाहिये।

जिन समितियों के सदस्य अन्य समितियां भी है, और व्यक्ति भी हैं उनके लिये यह शर्तें लागू नहीं हैं।

जिन समितियों में केवल व्यक्ति ही सदस्य हों, उनकी रजिस्ट्री

के लिये कम से कम दस व्यक्तियों को अपने हस्ताक्षर करके रजिस्ट्रार को प्रार्थनापत्र देना चाहिये। जिन समितियों में व्यक्तितथा समितियां दोनों ही सदस्य हों; उनकी रजिस्ट्री के लिये व्यक्ति तथा समितियों के प्रतिनिधियों के हस्ताक्षर होना आवश्यक है। प्रार्थनापत्र के साथ ही समिति के उपनियमो को भी भेजना चाहिये; (धारा ८)। जब रजिस्ट्रार को यह निश्चय हो जाता है कि सब कार्य नियमानुसार हुआ है तो वह समिति को रजिस्टर कर लेता है, और समिति अपना कार्य आरम्भ कर सकती है। रजिस्ट्रार समिति को एक सर्टिफिकट देता है, जो समिति के रजिस्टर होने का प्रमाण होता है; (धारा ९ और १०)। यदि रजिस्ट्रार किसी कारण वश समिति को रजिस्टर करने से इनकार करता है तो समिति के सदस्य दो मास के अन्दर प्रान्तीय सरकार से इस विषय में अपील कर सकते हैं। (धारा ९)

समितियों के उपनियम समितियों की अन्दरूनी बातों से सम्बन्ध रखते हैं। समिति के सदस्यों से समिति का सम्बन्ध तथा अन्य भीतरी बातों को निर्धारित करने के लिए उपनियम बनाये जाते हैं। किन्तु इन उपनियमों से समिति तथा बाहर वालों के सम्बन्ध निर्धारित नहीं होते। मानलो कि समिति के उपनियमों में उधार पर कोई भी वस्तु बेचने की मनाही हो, और यदि किसी बाहर वाले को कोई वस्तु साख पर दे दी गई हो, तो इस नियम के होते हुए भी समिति अपना रुपया वसूल कर सकती है।

जो समितियां परिमित दायित्व वाली होंगी, उनके नाम के आगे 'लिमिटेड' लिखा रहेगा और रजिस्ट्रार किन्हीं दो

समितियों को एक ही नाम न रखने देगा।

समिति का सदस्य वही व्यक्ति होगा, जो या तो रजिस्टर किये जाने के समय हस्ताक्षर करने वालों में से हो, अथवा उपनियमों के द्वारा बनाया गया हो। भारतवर्ष के कुछ प्रांतों में ऐसी समितियां हैं, जिनमें हिस्से होते हैं, कहीं कहीं हिस्से नहीं भी होते, केवल प्रवेश फीस होती है।

सहकारी साख समितियों तथा अन्य प्रकार की समितियों में एक मनुष्य की एक ही वोट होती है। सहकारी समितियों में हिस्सों के मूल्य के अनुपात में वोट देने का अधिकार नहीं होता। जब कोई समिति किसी दूसरी समिति की सदस्य होती है तो वह अपने किसी प्रतिनिधि को उस समिति के कार्य में भाग लेने के लिये भेजती है। (धारा १३)

भूतपूर्व सदस्य, सदस्य न रहने के दो वर्ष उपरान्त तक; सहकारी साख समिति (अपरिमित दायित्व) के ऋण के लिये उत्तरदायी होता है। वह केवल उस समय तक के लिये हुए ऋण का ही जिम्मेदार होता है, जब तक कि वह सदस्य था। (२३)

स्वर्गीय सदस्य की सम्पत्ति, अथवा उनके उत्तराधिकारी एक वर्ष तक मृत सदस्य के व्यक्तिगत ऋण को चुकाने के लिये उत्तरदायी हैं। किन्तु समिति का सम्मिलित बाहरी ऋण (जिसे अपरिमित दायित्व वाली समितियों के सदस्यों को चुकाना होता है) मृत सदस्य की सम्पत्ति, अथवा उसके उत्तराधिकारियों से उसी दशा में वसूल किया जा सकता है, जब साधारण रूप से अदालत में मुकदमा चलाकर डिगरी करवाई जावे। किन्तु बर्मा तथा बम्बई के प्रान्तीय एक्टों के

अनुसार समिति का लिक्वीडेटर मृत सदस्य की रियासत से समिति के सम्मिलित ऋण का वह भाग, जो सदस्य को देना है, वसूल कर सकता है। (धारा २४)

समितियों के हिस्से स्वतन्त्रता पूर्वक बेचे नहीं जा सकते। समिति के हिस्सों के बेचने के विषय में कुछ प्रतिबन्ध एक्ट ने लगाये हैं, और कुछ समितियां (उपनियम बनाकर) लगाती हैं। (धारा १४)

परिमित उत्तरदायित्व वाली समितियों में यह नियम है कि कोई बाहरी मनुष्य उतने ही मूल्य के हिस्से खरीद सकता है, जितने मूल्य से अधिक के हिस्से खरीदने का किसी को अधिकार नहीं है। मानलो कि नियमानुसार कोई भी मनुष्य १०० रुपये से अधिक के हिस्से नहीं ले सकता तो कोई बाहरी मनुष्य भी सदस्यों से १०० रुपये से अधिक के हिस्से नहीं खरीद सकेगा।

अपरिमित दायित्व वाली समितियों का कोई सदस्य तब तक अपना हिस्सा दूसरे को नहीं दे सकता, जब तक उसको हिस्सा लिए हुये एक वर्ष न हो गया हो। फिर भी उसे हिस्सा समिति को, अथवा समिति के किसी सदस्य को ही देना होगा; किसी बाहरी आदमी को वह हिस्सा नहीं बेच सकता। (धारा १४)

रजिस्टर्ड समितियों को अपना आय-व्यय रजिस्ट्रार द्वारा निश्चित किये हुये ढङ्ग पर रखना होता है। रजिस्ट्रार द्वारा मनोनीत किया हुआ आय-व्यय-परीक्षक आय-व्यय की जांच करता है। (धारा १८)

सहकारी समितियों को निम्न लिखित विशेष सुविधाएं प्राप्त हैं :—

यदि समिति ने किसी वर्तमान सदस्य अथवा भूतपूर्व सदस्य को बीज अथवा खाद उधार दिया है, अथवा बीज और खाद मोल लेने के लिये रुपया उधार दिया है तो समिति को उस रुपये अथवा खाद और बीज से द्वारा उत्पन्न की हुई फ़सल से अपना रुपया वसूल करने का प्रथम अधिकार होगा। यदि वह सदस्य और किसी का भी कर्ज़दार है तो वह लेनदार उस फ़सल को, जो समिति के बीज या खाद से पैदा की गई है, कुर्क नहीं करवा सकता। इसी प्रकार यदि समिति ने सदस्यों को बैल, चारा, खेती बारी तथा उद्योग धन्धों में काम आने वाले यंत्र, और उद्योग-धंधों के लिये कच्चा माल उधार दिया है, अथवा इन वस्तुओं को खरीदने के लिये रुपया उधार दिया है तो इन वस्तुओं पर, तथा इस कच्चे माल के द्वारा तैयार किये हुये पक्के माल पर, समिति का प्रथम अधिकार होगा। किन्तु कलकत्ता हाईकोर्ट ने एक मुकदमे में यह रूलिङ्ग दे दी कि जब तक कि समिति अदालत से डिगरी न करालें तब तक वह और लेनदारों को डिगरी कराने से नहीं रोक सकती। इस रूलिंग के कारण सहकारिता आन्दोलन में कार्य करने वालों को यह अनुभव होने लगा है कि एक्ट में इस आशय का सुधार होना चाहिये,। बम्बई प्रान्तीय एक्ट में इस आशय का संशोधन कर दिया गया है। बम्बई प्रान्त में समिति को केवल ऊपर लिखी वस्तुओं के वास्ते, दिये हुए ऋण पर ही प्रथम अधिकार नहीं होता वरन सब प्रकार की चीज़ों के वास्ते दिए हुये ऋण पर अधिकार होता है। किन्तु यह प्रथम अधिकार सरकारी माल-गुजारी, ज़मींदार की लगान तथा किसी ऐसे लेनदार के अधिकार को नष्ट नहीं करता, जिसने यह न जानते हुए कि इस वस्तु पर समिति का अधिकार है, उसको खरीद लिया हो। (धारा १९)

समिति के सदस्य का हिस्सा कोई भी लेनदार अपने ऋण के लिये कुर्क नहीं करवा सकता। किसी भी वर्तमान अथवा भूतपूर्व सदस्य के जमा किये हुए रुपये तथा उसके लाभ के हिस्से को ऋण के बदले में ले लेने का समिति को अधिकार है। लाहरी लेनदार कुर्की कराकर इस रुपये को नहीं ले सकता। (धारा २० और २१)।

किसी सदस्य के मरने पर अपरिमित दायित्व वाली समिति को यह अधिकार होगा कि वह चाहे तो मृत सदस्य के वारिस को हिस्सा दे दे अथवा उसका मूल्य चुका दे। किन्तु परिमित दायित्व वाली समिति को मृत सदस्य के उत्तराधिकारी को अवश्य ही हिस्सा देना होगा। (धारा २२)।

सहकारी समिति के लाभ पर इनकमटैक्स तथा सुपरटैक्स नहीं लिया जाता, और न सदस्यों के लाभ पर टैक्स लिया जाता है।

सहकारी समिति केवल अपने सदस्यों को ही कर्ज दे सकती है, किन्तु रजिस्ट्रार की आज्ञा लेकर समिति दूसरी समितियों को भी कर्ज दे सकती है। बिना रजिस्ट्रार की आज्ञा के अपरिमित दायित्व वाली समिति चल जायदाद (स्थावर सम्पत्ति) की जमानत पर कर्ज नहीं दे सकती। (धारा २६)।

सहकारी समितियां अपने उपनियमों के द्वारा निश्चित रकम से अधिक ऋण और डिपाजिट नहीं ले सकती। इसी कारण प्रत्येक समिति प्रति वर्ष अपनी साख निर्धारित करती है। सहकारी साख समितियां उन व्यक्तियों का रुपया डिपाजिट कर सकती हैं, जो सदस्य नहीं हैं। (धारा १०)।

समिति निम्नलिखित स्थानों में अपना धन जमा कर

सकती है, अथवा लगा सकती है—

(१) सरकारी सेविंग बैंक में; (२) ट्रस्टी सिक्योरिटी में; (३) किसी अन्य सहकारी समिति के हिस्सों में (४) किसी भी बैंक में, जिसमें रुपया जमा करने की अनुमति रजिस्ट्रार ने दे दी हो। (धारा ४२)।

साधारणतया समिति का लाभ तथा उसका जमा किया कोष बांटा नहीं जा सकता, केवल निम्नलिखित दशाओं में वह बांटा जा सकता है—

परिमित दायित्व वाली समितियों में एक चौथाई लाभ रक्षित कोष (रिजर्व फंड) में जमा करने के उपरान्त सदस्यों में बांटा जा सकता है। किन्तु इसके लिये भी रजिस्ट्रार की अनुमति लेनी पड़ती है। यह प्रतिबंध इस कारण लगाया गया है कि कहीं सदस्यों का उद्देश्य केवल अधिकाधिक लाभ प्राप्त करना ही न हो जावे।

अपरिमित दायित्व वाली समितियों में लाभ प्रान्तीय सरकार की आज्ञा से ही बांटा जा सकता है। प्रांतीय सरकार साधारण अनुमति भी दे सकती है। प्रत्येक प्रांत ने यह नियम बना दिया है कि प्रत्येक समिति जिसके व्यापार में लाभ होता है लाभ का कुछ अंश रक्षित कोष में रखेगी। रक्षित कोष, समिति के भङ्ग हो जाने पर भी, सदस्यों में बांटा नहीं जा सकता।

रक्षित कोष या तो समिति के व्यापार में लगाया जाता है, या रजिस्ट्रार के पास रहता है अथवा रजिस्ट्रार की आज्ञा से और कहीं जमा कर दिया जाता है। समिति के भङ्ग हो जाने पर, समिति के ऋण को चुका कर जो रुपया बचे, उसका

उपयोग समिति के निर्णय के अनुसार होगा। यदि समिति इसका निर्णय न कर सके तो रजिस्ट्रार जिस प्रकार उस धन का उपयोग करना चाहे कर सकता है। कुछ प्रांतों में यह नियम है कि यदि सामिति किसी अन्य सहकारी संस्था की सदस्य हो तो रक्षित कोष का बचा हुआ रुपया उसको दे दिया जावे।

एक्ट के अनुसार प्रत्येक समिति, चौथाई लाभ रक्षित कोष में रखने के उपरान्त लाभ का १० प्रति शत दान तथा सार्वजनिक कार्यों में व्यय कर सकती है। वे कार्य निम्नलिखित हो सकते हैं :—निर्धनों को सहायता, सार्वजनिक शिक्षा, गांवों तथा उन स्थानों में जहां समितियां हैं, औषधि मुफ्त बँटवाने का प्रबंध, तथा अन्य सार्वजनिक हित के कार्य। कोई धार्मिक पूजा अथवा धार्मिक शिक्षा में यह रुपया व्यय नहीं किया जा सकता। (धारा ३४)।

यदि ज़िलाधीश जांच के लिये प्रार्थना करे, पंचायत प्रार्थनापत्र भेजकर जांच करवाना चाहे, अथवा समिति के एक-तिहाई सदस्य जांच करवाना चाहें, तो रजिस्ट्रार को स्वयं या अपने किसी अधीन कर्मचारी से अवश्य जांच करवानी होगी। वैसे रजिस्ट्रार को अधिकार है कि वह जब चाहे समिति की जांच कर सकता है। (धारा ३५)।

समिति के किसी भी लेनदार को यह अधिकार है कि वह समिति के हिसाब की, रजिस्ट्रार से, अथवा उसके द्वारा नियुक्त किसी कर्मचारी से, जांच करवावे। किन्तु लेनदार को जांच करने का व्यय देना होगा और उतना रुपया उसको पहिले जमा करना पड़ेगा। (धारा ३६)

निम्नलिखित दशाओं में समिति भंग हो जाती है :—

(१) यदि किसी लेनदार की प्रार्थना पर रजिस्ट्रार ने जांच करवाई हो और उससे यह प्रतीत हो कि समिति को भंग कर देना चाहिए, तो वह भंग कर सकता है। (२) यदि समिति के तीन-चौथाई सदस्य समिति को भंग कर देने की प्रार्थना करें तो रजिस्ट्रार समिति को भंग कर सकता है। भंग करने की आज्ञा के विरुद्ध कोई भी सदस्य प्रान्तीय सरकार से प्रार्थना कर सकता है। किन्तु भंग होने के दो मास के उपरान्त अपील नहीं सुनी जाती. (धारा ३६)।(३) यदि समिति के सदस्यों की संख्या १० से कम हो जावे तो समिति स्वतः ही भंग हो जाती है। (धारा ४०)

समिति के भंग हो जाने के उपरांत वे सब सुविधाएँ, जो समिति को प्रदान की गई हैं, नहीं रहतीं। जब समिति भंग हो जाती है, तब रजिस्ट्रार एक 'लिक्वीडेटर' नियुक्त करता है, जो उसका शेष कार्य करता है। लिक्वीडेटर का यह कर्त्तव्य होता है कि वह समिति की सम्पत्ति तथा देनी का हिसाब बनावे; जिन लोगों पर समिति का रुपया बाकी है, उनसे वसूल करे; जिनकी समिति ऋणी है, उनका ऋण चुकावे, तथा सदस्यों के दायित्व का निश्चय करे, और उनसे रुपया वसूल करे। (धारा ४१ और ४२)।

प्रान्तीय सरकारों को यह अधिकार है कि वे सहकारी समितियों तथा उनके सदस्यों के झगड़ों को निबटाने के लिये कुछ नियम बना दें। सभी प्रांतों ने इसके वास्ते नियम बना लिये हैं। सहकारी समितियों के लिये यह नियम अत्यन्त आवश्यक है। इन समितियों का उद्देश्य निर्धन मनुष्यों की आर्थिक अवस्था का सुधार करना, उनमें स्वावलम्बन का भाव

जागृत करना, तथा उन्हे मितव्ययिता का पाठ पढ़ाना है। यह उद्देश्य तब तक पूरा नहीं हो सकता, जब तक कि ये लोग मुक़दमेबाज़ी में व्यय करते रहे।

निम्नलिखित झगड़ो का निबटारा रजिस्ट्रार स्वयं कर सकता है, या वह इनके लिए एक या तीन पच नियुक्त कर सकता है—(१) जिनसे समिति के व्यापार का सम्बन्ध है। (२) जिनमे सदस्यो का आपस में किसी बात पर झगड़ा हो, भूतपूव सदस्यो मे कोई झगड़ा हो, अथवा समिति के पंचो मे कोई झगड़ा हो। अन्य झगड़ो के लिये साधारण अदालतो में जाना होगा।

प्रत्येक पेशी के लिए दोनो पक्ष को उचित नोटिस दिया जाता है। रजिस्ट्रार अथवा पंचों को शपथ दिलाने, वादी प्रतिवादी और गवाहो को उपस्थित होने के लिये आज्ञा देने का, तथा काग़ज़ो को मंगवाने का अधिकार है। यदि एक पक्ष उपस्थित नहीं होता तो उसकी अनुपस्थिति मे फैसला किया जा सकता है। गवाही के लिये गवाह के उपस्थित न होने पर उसके विरुद्ध कार्यवाही की जा सकती है। रजिस्ट्रार तथा पंच ऐवीडेन्स एक्ट (गवाही या शहादत का कानून) के नियमों को मानने के लिये बाध्य नही हैं।

यद्यपि रजिस्ट्रार तथा पचों पर कानूनी बंधन लागू नहीं हैं, उन्हे यह प्रयत्न करना चाहिये कि वे दोनो पक्ष की बात एक दूसरे के सामने भली भांति सुनें। यदि निजी तौर से झगड़े के विषय में ज्ञात हुआ हो तो उसका उपयोग नहीं करना चाहिये। रजिस्ट्रार को तथा पचो को यह अधिकार है कि केवल कानून को ही नहीं, वस्तु-स्थिति को भी देखें। फ़ैसला लिखित होना चाहिये, उसके सम्बन्ध मे स्टाम्प नहीं होता। वकीलों का इन मुक़दमो में

आज्ञा मिलने पर ही, आना हो सकता है। बम्बई मे वकील, इन मुकदमों में, किसी दशा मे भी नहीं आ सकते।

यदि रजिस्ट्रार ने कोई पंच नियुक्त किया हो तो पच के फैसले के विरुद्ध, रजिस्ट्रार से अपील की जा सकती है, रजिस्ट्रार के फैसले के विरुद्ध अपील नहीं होती। बम्बई में रजिस्ट्रार के फैसले के विरुद्ध अपील प्रान्तीय सरकार से हो सकती है। रजिस्ट्रार के फैसले ठीक उसी तरह लागू होते है, जिस तरह कि अदालत के। (धारा ४३)

रजिस्ट्रार की आज्ञा के विरुद्ध दो अवस्थाओं मे प्रान्तीय सरकार से अपील की जा सकती है (१) जब वह किसी समिति कोरजिस्टर करने से इनकार करे। (२) जब वह किसी समिति को भंग कर दे। आज्ञा से दो महीने तक अपील हो सकती है।

भारतवर्ष में सहकारिता आन्दोलन का प्रसार— आगे दिए हुए अंको से समस्त भारतवर्ष में सब प्रकार की सहकारी समितियों की स्थिति का अनुमान किया जा सकता है। सन १९१० से १९१५ तक पांच वर्ष के औसत अंक इस प्रकार थे— समितियां १२ हजार, उनके सदस्य साढ़े पांच लाख, और उनकी कार्यशील पूंजी साढ़े पांच करोड़ रुपये। ये संख्याएँ धीरे धीरे बढ़ती गयीं। सन् १९३० से १९३५ के औसत अंक क्रमश १०६ हजार, ४३ लाख, और ९५ करोड़ थे। इस समय अंतिम हिसाब सन् १९३९–४० का मिल सका है। इस वर्ष समितियां १३७ हजार; उनके सदस्य ६१ लाख, और कार्यशील पूंजी १०७ करोड़ रुपये थी।

आन्दोलन का सिंहावलोकन—सहकारिता आन्दोलन को यहाँ स्थापित हुए ४० वर्ष हो गए। इसके जन्म अर्थात् १९०४ से

१९१५ तक इसका 'प्रारम्भिक प्रयास और आयोजन काल' था। सन् १९१५ में आन्दोलन की जांच के लिए मेकलेगन कमेटी बैठाई गयी। उसकी सिफारिशों का आंदोलन पर बहुत प्रभाव पड़ा। १९१९ मे सहकारिता हस्तान्तरित विषय हो गया और मंत्रियो ने उसको प्रोत्साहन दिया। अस्तु, १९१५ से १९२९ तक का काल सहकारिता आन्दोलन की उन्नति और शीघ्र गति से फैलने का समय है। आन्दोलन प्रत्येक प्रान्त में तेज़ी से बढ़ा। इसको हम 'योजना रहित प्रसार का काल' कह सकते हैं। इसके उपरान्त अर्थात् १९२९–३० के बाद भारतवर्ष में घोर आर्थिक मंदी प्रगट हुई, खेती की पैदावार का मूल्य बेहद गिर गया। फल यह हुआ कि भूमि का मूल्य भी घट गया। इस आर्थिक मंदी के परिणाम-स्वरूप समस्त देश में सहकारिता आन्दोलन को गहरा धक्का लगा, उसकी गति धीमी हो गयी और उसमें शिथिलता दृष्टिगोचर होने लगी। उन्नति रुक गयी और सभी प्रान्तों में आन्दोलन के पुनर्निर्माण और सुधार के प्रयत्न आरम्भ हो गये। इस काल को हम 'अवनति और पुनः निर्माण का काल' कह सकते हैं। १९३६ के उपरान्त कुछ सुधार हुआ। परन्तु कुछ प्रान्तों (बंगाल, बिहार, उड़ीसा, और बरार) में आन्दोलन की स्थिति इतनी खराब हो गयी थी कि खेती की पैदावार के मूल्य में वृद्धि होने पर भी आन्दोलन की स्थिति नहीं सुधरी। कार्यकर्त्ता, प्रान्तीय सरकारो की सहायता से, आन्दोलन को बचाने का प्रयत्न कर रहे हैं और उन्हें सफलता मिलने की आशा है।

१९४० से सहकारिता आन्दोलन पर युद्ध का प्रभाव पड़ने लगा। युद्ध के लिये आवश्यक वस्तुएँ तैयार कराने तथा उन्हें सरकार के हाथ बेचने के उद्देश्य से सभी प्रान्तों में गृह-उद्योग

धन्धों को संगठित किया गया, दैनिक आवश्यकता की वस्तुओं का मूल्य अत्यधिक बढ़ जाने और उनके मिलने में कठिनाई होने से देश में उपभोक्ता-स्टोरों की एक बाढ़ सी आगई। अन्य सहकारी समितियों की ओर कार्यकर्त्ताओ का ध्यान ही नहीं रहा। युद्ध के उपरान्त सहकारिता आन्दोलन मे फिर नवीन परिवर्तन होगा। युद्ध-जनित गृह-उद्योग-धन्धो और स्टोर सम्भवतः लुप्त हो जायँ। फिर भी देश के आर्थिक निर्माण में सहकारिता आन्दोलन का विशेष भाग रहेगा, इसमे संदेह नहीं।

मल्टी-युनिट कोआपरेटिव सोसायटीज़ एक्ट १९४२—२ मार्च १९४२ को भारत सरकार ने सहकारी समितियो के के सम्बन्ध में एक एक्ट पास किया है, जिसका सम्बन्ध उन सहकारी समितियों से है, जिनका कार्यक्षेत्र जिस प्रान्त में वे रजिस्टर की गई हैं, उनसे बाहर भी है, जैसे सहकारी बीमा समिति, रेल अथवा तार विभाग के कर्मचारियो के लिए स्थापित सहकारी समिति, कोई अन्य समिति जिसके सदस्य अन्य प्रान्तो में भी हो, अथवा जिसकी शाखा दूसरे प्रान्तों मे हो।

सहकारी समितियाँ प्रान्तीय विषय है। परन्तु यदि कोई सहकारी समिति अपने प्रान्त की सीमा के बाहर भी काम करे तो वह 'कारपोरेशन' मानी जावेगी और वह संघ सरकार का विषय होगा। अस्तु, इस बात की आवश्यकता अनुभव हुई कि केन्द्रीय सरकार एक ऐसा कानून बनावे, जिससे इस प्रकार की समितियों की स्थापना, संचालन और नियंत्रण हो सके; इस प्रकार की वर्तमान समितियों को स्वीकार किया जावे, और भविष्य में इस प्रकार की समितियों की स्थापना हो सके।

एक्ट की मुख्यधारा इस प्रकार है —यदि कोई सहकारी समिति. जिसके सम्बध मे यह एक्ट लागू होता है, किसी प्रान्त मे रजिस्टर हो चुकी है और उसका कार्यक्षेत्र किसी दूसरे प्रान्त मे भी है तो वह उस प्रान्त मे भी रजिस्टर समझी जावेगी और उसके सम्बंध मे वे ही सारे नियम (रजिस्ट्रेशन. निरीक्षण और दिवालिया करने के) लागू होंगे. जो उस प्रान्त मे प्रचलित है. जहां कि वह समिति रजिस्टर हुई है। जो समिति इस एक्ट के बनने के उपरान्त रजिस्टर हो. उनके सम्बध मे भी यही नियम लागू होगा कि जिस प्रान्त में वह रजिस्टर होगी उस प्रान्त के ही सारे नियम लागू होंगे। लेकिन वह जिन दूसरे प्रान्तो में कार्य करेगी. वहां भी रजिस्टर समझी जावेगी। इस एक्ट के अनुसार केन्द्रीय सरकार इस प्रकार की सहकारी समितियो का एक केन्द्रीय रजिस्ट्रार नियुक्त कर सकती है। यदि केन्द्रीय रजिस्ट्रार नियुक्त हो गया तो फिर इन समितियो का रजिस्ट्रेशन, नियंत्रण इत्यादि सब उसके अधिकार में होगा; प्रान्तीय रजिस्ट्रारों को इन समितियो से कोई वास्ता न होगा।

—०—

पांचवाँ परिच्छेद

कृषि सहकारी साख समितियाँ

—०—

पहले कहा जा चुका है कि भारतीय कृषक की निर्धनता. उसका अशिक्षित होना, तथा महाजन का भयंकर ऋण उसको महाजनका क्रीत दास बना देता है। इसीलिए भारत सरकार ने सहकारी साख समितियों की स्थापना करवाई। इन समितियां

सदस्य वे ही हो सकते है, जो खेती-बारी में लगे हों तथा क ही गांव मे रहते हों। प्रत्येक गांव के निवासी एक दूसरे की ार्थिक स्थिति से भली भांति परिचित होते है तथा एक दूसरे चरित्र के विषय मे भी जानकारी रखते है। रैफीसन सहकारी ाख समितियां अपरिमित दायित्व वाली होती है; इसलिए इ नितान्त आवश्यक है कि सदस्य एक दूसरे के चरित्र तथा ार्थिक स्थिति से भली भांति परिचित हो। यदि सदस्य एक सरे के चरित्र तथा आर्थिक स्थिति को भली भांति न जानते तथा एक दूसरे में विश्वास न करते हो तो वे अपरिमित यित्व कभी स्वीकार न करेंगे। अपरिमित दायित्व के सिद्धान्त अनुसार प्रत्येक सदस्य समिति के ऋण को सामूहिक रूप से काने के लिये वाध्य है। यही कारण है कि नवीन सदस्य तभी मिति में लिया जा सकता है जब कि दूसरे सब सदस्य उसको दस्य बनाने के पक्ष मे हो। सहकारी साख समिति का सिद्धान्त ह है कि प्रत्येक सदस्य दूसरे सदस्य के कार्यों का उत्तरदायी न जाता है, इस कारण किसी नवीन सदस्य को, सर्वसम्मति से ', चुना जाता है।

प्रायः एक गांव में एक ही साख समिति स्थापित की जाती । यदि गांव बहुत बड़ा हो, जिसके कारण एक समिति सब र्गों के लिए उपयोगी न हो सके, तो भिन्न भिन्न जातियो, तथा ान्न-भिन्न धर्मावलम्बियों की पृथक्-पृथक् समितियाँ स्थापित की ा सकती हैं। किन्तु सहकारिता आन्दोलन में कार्य करने वाले रकारी तथा गैर-सरकारी कार्यकर्त्ता इस प्रकार की समितियो ो प्रोत्साहन नहीं देते। सेन्ट्रल बैंकिंग इनक्वायरी कमेटी ो सम्मति में किसी जाति, पेशे, तथा धर्मावलम्बियो की साख मितियां स्थापित करना उचित नहीं है। गांव में जितने भी

मनुष्य हों, उन सब की एक ही समिति होना आवश्यक है। ऐसी साख समिति गांव के प्रत्येक मनुष्य को एक आर्थिक सूत्र में बांध कर उनमे प्रेम-भाव उत्पन्न करती है।

समिति का प्रबंध करने का अधिकार साधारण सभा तथा प्रबंधकारिणी सभा अर्थात पंचायत को होता है। साधारण सभा सब महत्वपूर्ण प्रश्नो पर अपना स्पष्ट मत देती है और पचायत साधारण सभा की आज्ञाओं का पालन करती है। वस्तुतः साधारण सभा केवल नीति निर्धारित करती है, और पंचायत सारा कार्य करती है।

प्रबंधकारिणी समिति निम्नलिखित कार्य करती है:—

(१) वह सदस्यों को हिस्से देती है तथा उनको समिति का सदस्य बनाती है।

(२) वह गांव से डिपाज़िट लेने का प्रयत्न करती है, तथा सेन्ट्रल बैंक से ऋण लेने का प्रबन्ध करती है। उसका सब से महत्वपूर्ण कार्य यह है कि वह सदस्यों तथा अन्य ग्राम-निवासियो को समिति में रुपया जमा करने के लिये प्रोत्साहित करे।

(३) जब कभी आवश्यकता हो, वह साधारण सभा का आयोजन करती है।

(४) वह यह भी निश्चय करती है कि किन सदस्यों को कितने समय के लिए रुपया उधार दिया जावे। साथ ही वह उस अवधि के अन्त में ऋण के रुपये को वसूल करती है।

(५) वह समिति के आय-व्यय का हिसाब रखती है।

(६) वह समिति सम्बन्धी कार्यों मे रजिस्ट्रार से लिखा-पढ़ी करती है।

(७) वह उन सदस्यों के लिए, जो सम्मिलित रूप से

ावश्यक वस्तुओं को खरीदना चाहते हैं तथा खेत की पैदावार ा बेचना चाहते है, दलाल का काम करती है।

वह सदस्यों में मितव्ययिता का प्रचार करती है तथा उन्हें पनी बचत को जमा करने के लिये उत्साहित करती है। वह रपंच तथा मंत्री का निर्वाचन करती है। सरपंच समिति के ारे कार्य की देख भाल रखता है तथा मन्त्री समिति का हिसाब खता है।

समिति प्रवेश-फ़ीस, हिस्सों का मूल्य, डिपाज़िट, तथा ऋण द्वारा कार्यशील पूँजी उगाहती है। समिति का रक्षित कोष भी मिति का कार्यशील पूँजी को बढ़ाता है। प्रवेश-फ़ीस नाम मात्र ा होती है और प्रारम्भिक व्यय के लिये ली जाती है, जो मिति की स्थापना करते समय करना पड़ता है। कुछ ान्तों मे सदस्यों को हिस्से खरीदने पड़ते हैं और कुछ प्रान्तो हिस्से नहीं होते। पंजाब, संयुक्त प्रान्त, और बर्मा के धिकतर भाग मे, तथा मदरास में, समितियां हिस्से वाली होती ा अन्य प्रांतो ने हिस्से तथा गैर हिस्से वाली, दोनो ही तरह ी समितियाँ दृष्टिगोचर होती हैं।

भारतवर्ष में सहकारी साख समितियां हिस्से वाली होनी ाहिये अथवा गैर हिस्से वाली, यह विचारणीय विषय है छ विद्वानों का मत है कि समितियाँ हिस्से वाली होनी चाहियें, योंकि हिस्सो को बेचकर थोड़ी कार्यशील पूँजी इकट्ठी कर ली ाती है। समिति अपनी पूँजी सदस्यो को ऋण स्वरूप देकर स पर लाभ उठाती है और अप्रत्यक्ष रूप से रक्षित कोष ी वृद्धि होती है। सदस्य समिति के कार्यों में विशेष चाव से ाग लेने लगते हैं, क्योंकि वे उसे अपनी वस्तु समझते हैं। यह ब ठीक है, किन्तु भारतवर्ष में गांवों में रहने वाले इतने निर्धन

है कि वे किसी प्रकार भी हिस्से का मूल्य नहीं चुका सकते। ऐसी अवस्था मे यदि हिस्से वाली समितियां स्थापित की जावें तो वे ईमानदार तथा परिश्रमी किसान जो कि निर्धन है, सदस्य नहीं बन सकते। लेखक के विचार से गैर हिस्से वाली समितियां ही उपयुक्त है। यदि सदस्यो को सहकारिता के सिद्धान्तो की भली भांति शिक्षा दी जावे तो वे समिति के कार्य में अधिक भाग लेने लगेंगे और उन मे मितव्ययिता के भाव जागृत हो सकेंगे। किसी को सदस्य बनाते समय यह भी बतलाया जाना चाहिये कि साख समिति केवल ऋण देने के ही लिये नहीं है, सदस्यों को उसमे रुपया भी जमा करना चाहिये।

साख समिति का कोई सदस्य एक निश्चित रक़म से अधिक के हिस्से नहीं ख़रीद सकता। प्रत्येक सदस्य को केवल एक वोट देने का अधिकार होता है। प्रवेश-फीस तथा हिस्सों के मूल्य से समिति के पास नाममात्र की पूंजी इकट्ठी होती है। इसलिए समितियाँ अधिकतर ऋण और डिपाज़िट के द्वारा अपना काम चलाया करती है। कोई समिति जितनी अधिक डिपाज़िट आकर्षित करे, उतनी ही उसकी सफलता समझनी चाहिये; क्योंकि डिपाज़िट तभी अधिक जमा होगी जब कि जनता को समिति का भरोसा होगा और उसकी आर्थिक स्थिति मे विश्वास होगा। जब तक कि साख समितियां डिपाज़िट आकर्षित करके अपनी आवश्यकता के अनुसार पूंजी जमा नहीं कर सकती, उनको निर्बल ही समझना चाहिये। जमा करने से ग्रामीण जनता तथा सदस्यो मे मितव्ययिता का भाव जागृत होता है।

भारतवर्ष मे अभी तक बम्बई प्रान्त को छोड़ और किसी प्रांत मे समितियां डिपाज़िट आकर्षित कर पाई है। साख समितियां गैर सदस्यो से भी डिपाज़िट लेती है, किन्तु सेन्ट्रल

ङ्ग इनक्वायरी कमेटी का यह मत है कि सहकारी साख मितियो को अधिक सूद देकर डिपाज़िट आकर्षित न करना ाहिये. क्योंकि यदि समितियां डिपाज़िट पर अधिक सूद ा तो गांवो मे सूद की दर नही घट सकेगी, जिसकी त्यन्त आवश्यकता है। जब तक कि सेन्ट्रल बैङ्क सुसंगठित हो और जब तक वे समितियो की आवश्यकता से धिक पूंजी का उचित उपयोग करने के योग्य न हो वें. तथा आवश्यकता पड़ने पर समितियो को शीघ्र ही पूँजी ने की योग्यता प्राप्त न करलें. तब तक गैर सदस्यों से पाज़िट लेना जोखिम का काम है. क्योंकि तनिक भी न्देह हो जाने पर गैर सदस्य अपना रुपया लेने को दौड़ ेंगे।

समिति के पचो को कोई वेतन नहीं दिया जाता: केवल मन्त्री को ड़ा-सा वेतन दिया जाता है। यदि मन्त्री उसी गाव का ेनेवाला हो तो अच्छा है, क्योकि वह सदस्यो से भली भांति रिचित होगा। परन्तु पटवारी को किसी भी अवस्था में मन्त्री बनाना चाहिये, क्योंकि उसका गाँव मे बहुत प्रभाव होता है: म्भव है कि वह पंचायत के अनुशासन मे न रहे. और सदस्य ससे दबते रहे। यदि गाँव की समिति में कोई शिक्षित सदस्य ा तो उसे मन्त्री बनाया जाना चाहिये; यदि कोई सदस्य ाक्षित न हो तो गांव के शिक्षक को मन्त्री बनाना चाहिये।

सहकारी साख समितियो की स्थापना लाभ की दृष्टि से हीं की जाती, इसलिए अपरिमित उत्तरदायित्व वाली समि-यों में तो लाभ बांटा ही नही जाता, और यदि बांटा भी ाता है तो प्रान्तीय सरकार की आज्ञा लेकर। परिमित दायित्व ाली समितियां लाभ बांट सकती है. परन्तु उनको भी यथेष्ट

धन रक्षित कोष में जमा करना पड़ता है।

सहकारी साख समितियों का प्रबंध-व्यय बहुत कम होने के कारण, तथा लाभ न बांटने के कारण, रक्षित कोष यथेष्ट जमा हो जाता है। प्रत्येक साख समिति के लिये रक्षित कोष अत्यन्त आवश्यक है। जब तक समिति के पास यथेष्ट कोष न हो जावे, तब तक वह सबल नहीं बन सकती। रक्षित कोष किसी भी अवस्था में बांटा नहीं जा सकता; उसका उपयोग समिति के कार्य में हानि होने पर उसे पूरा करने में होता है; यदि किसी देनदार से रुपया वसूल नहीं हुआ अथवा किसी वस्तु के बेचने में हानि हो गई तो रक्षित कोष से उसको पूरा किया जाता है। यदि समिति भंग हो जावे तो रक्षित कोष या तो किसी अन्य सहकारी समिति को दिया जावेगा, या रजिस्ट्रार की अनुमति से किसी सार्वजनिक कार्य में व्यय किया जावेगा। परिमित दायित्व वाली समितियां अपने रक्षित कोष को, अपने व्यापार में न लगाकर, बाहर किसी बैङ्क में रखती हैं किन्तु ऐसा वे ही समितियाँ करती हैं जो कि गैर सदस्यों का रुपया भी जमा करती हैं। अपरिमित दायित्व वाली समितियां रक्षित कोष के धन को अपने निजी कार्य में लगाती हैं; बाहर जमा नहीं करती।

पहले कहा जा चुका है कि कृषि सहकारी साख समितियाँ अपरिमित दायित्व वाली होती हैं और नगर सहकारी साख समितियाँ, तथा जिन समितियों के अधिकतर सदस्य किसान नहीं होते, वे चाहे परिमित, चाहे अपरिमित, दायित्व स्वीकार कर सकती हैं। किन्तु जिन सहकारी समितियों की सदस्य अन्य समितियां हों, उनका दायित्व परिमित ही होगा। ऐसी समितियां प्रान्तीय सरकार से आज्ञा लेकर ही अपरिमित दायित्व वाली बन सकती हैं। भारतवर्ष में सब सेन्ट्रल बैङ्क, बैङ्किंग यूनियन,

तथा अधिकतर नगर सहकारी. तथा वैसी साख समितियां जिनमें अधिकतर किसान सदस्य नहीं होते, परिमित दायित्व वाली होती है; किसानों की साख समितियां अपरिमित दायित्व वाली होती हैं।

यदि किसी समिति को हानि हो जावे तो सबे प्रथम उस सदस्य से रुपया वसूल किया जावेगा. जिसने ऋण लिया है। यदि उससे वसूल न हुआ तो जमानत देने वाले से वसूल किया जावेगा। यदि उससे वसूल न हुआ तो रक्षित कोष से हानि भर दी जावेगी। यदि उससे भी हानि पूरी न हुई तो समिति की पूंजी का उपयोग किया जावेगा। यदि समिति की पूंजी देकर भी हानि पूरी न होसके तो समिति के सदस्यों को समिति के देनदारों का रुपया चुकाना होगा। प्रत्येक सदस्य को कितना रुपया देना होगा. इसका हिसाब लिक्वीडेटर लगाएगा। व्यावहारिक दृष्टि से अपरिमित दायित्व का यही अर्थ निकलता है, किन्तु सिद्धांत से प्रत्येक सदस्य व्यक्तिगत रूप से सारे ऋण को चुकाने को बाध्य है. यह उसी दशा में हो सकता है कि जब और सदस्यों से रुपया वसूल न हो सके।

साधारण सभा अपनी मीटिंग मे समिति की साख निर्धारित करती है, पंचायत उससे अधिक ऋण नहीं ले सकती। समिति की साख को निर्धारित करने के लिये यह आवश्यक है कि समिति के सदस्यो की सम्पत्ति का हिसाब लगाया जावे। भारतवर्ष के भिन्न भिन्न प्रान्तो में समिति के सब सदस्यों की सम्पत्ति की एक-चौथाई से आधी तक साख निर्धारित की जाती है। समिति एक हैसियत-रजिस्टर रखती है, जिसमे प्रत्येक सदस्य की हैसियत का लेखा रहता है। हैसियत-रजिस्टर का प्रति वर्ष संशोधन होता है और प्रत्येक सदस्य की हैसियत का यथार्थ

लेखा रखने का प्रयत्न किया जाता है।

इसके अतिरिक्त यह भी निश्चित कर दिया जाता है कि प्रत्येक सदस्य अधिक से अधिक कितना उधार ले सकता है। किसी भी अवस्था में सदस्य की सम्पत्ति का ५० प्रतिशत से अधिक उधार नहीं दिया जा सकता। रुपया उधार देते समय पंचायत कर्ज़ लेने का उद्देश्य तथा सदस्य की चुकाने की शक्ति का अनुमान लगा कर ही कर्ज़ देना निश्चय करती है।

सहकारिता आन्दोलन का सिद्धान्त है कि ऋण अनुत्पादक या व्यर्थ कार्यों के लिये न दिया जावे। किन्तु भारतवर्ष में सहकारी साख समितियाँ विवाह, श्राद्ध, तथा अन्य सामाजिक कार्यों के लिये भी उधार देती है। पंचायत का यह मुख्य कर्तव्य है कि वह इस बात की जाँच करे कि सदस्य क़र्ज़ किस कार्य के लिये ले रहा है। साथ ही पचायत को इस बात का भी पता लगाना चाहिए कि सदस्य ने उसी कार्य में धन व्यय किया है, जिसके लिये कर्ज़ दिया गया था, अथवा किसी अन्य कार्य में। यदि सदस्य ने किसी अन्य काम में रुपया लगाया है तो पचायत को रुपया वापिस ले लेना चाहिये।

सहकारी साख समिति के सदस्यों को एक दूसरे पर दृष्टि रखनी चाहिये कि वे धन का दुरुपयोग तो नहीं करते, समय पर कर्ज़ चुकाते है अथवा क़िस्तों को टालने का प्रयत्न करते है। पचायत ऋण देते समय ही सदस्यों की स्थिति को दृष्टि में रखते हुए क़िस्तें बाँध देती है, क्योंकि सदस्यों को क़िस्तों के द्वारा ऋण चुकाने में सुविधा होती है। पचायत का यह मुख्य कर्तव्य है कि वह देखे कि सदस्य समय पर किस्तें चुकाता है। किन्तु यदि किसी अनिवार्य कारण वश सदस्य किस्त न चुका

सके (जैसे फ़सल नष्ट हो जाने पर) तो उस की मियाद बढ़ा देना चाहिये।

समितियाँ अधिकतर नीचे लिखे कार्यों के लिये ऋण देती हैं :—(१) खेती-बारी के लिये, मालगुज़ारी तथा लगान देने के लिये। (२) भूमि का सुधार करने के लिये। (३) पुराने ऋण को चुकाने के लिये। (४) गृहस्थी के कार्यों के लिये। (५) व्यापार के लिये। (६) भूमि खरीदने के लिये। यह कहना अत्यन्त कठिन है कि किन कार्यों के लिये कितना रुपया लिया जाता है। बहुधा सदस्य प्रार्थनापत्र मे तो खेती बारी के लिये रुपया लेने की बात लिखता है, और उस रुपये को व्यय करता है किसी सामाजिक कार्य पर। समितियो ने अभी तक इस ओर विशेष ध्यान नहीं दिया है।

समय की दृष्टि से ऋण दो प्रकार के होते है, अर्थात थोड़े समय के लिये तथा अधिक समय के लिये। जो ऋण थोड़े समय के लिये लिया जाता है, उसका उपयोग खेती-बारी के धंधे मे अर्थात बीज, खाद, बैल, हल आदि वस्तुओं के खरीदने में तथा अन्य आवश्यक खर्चों में होना है। अधिक समय के लिये लिया हुआ ऋण भूमि खरीदने, कीमती यन्त्र लेने, तथा पुराना कर्जा चुकाने के काम आता है। प्रान्तीय बैन्किंग इनक्वायरी कमेटियो की सम्मति है कि कृषि सहकारी साख समितियां अपने सदस्यो को तीन वर्षों से अधिक के लिए ऋण नहीं दे सकतीं—सहकारिता आन्दोलन में कार्य करने वालो की भी यही धारणा है। लम्बे समय के लिये ऋण देने का कार्य सहकारी भूमि बन्धक बैङ्क ही कर सकते हैं।

सहकारी कृषि साख समिति की सफलता के लिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि सदस्य सहकारिता के सिद्धान्तों को

समझें। इसलिए समिति का संगठन करते समय उन्हें सहकारिता के सिद्धान्तों की शिक्षा देनी चाहिये। भारतवर्ष में अभी तक ग्रामीण सदस्य यह समझता है कि सहकारी साख समितियां सरकार द्वारा खोले हुये बैङ्क हैं, जो हम लोगों को ऋण देते हैं। वे कभी स्वप्न में भी यह नहीं सोचते कि यह हमारी ही समिति है और हम अपरमित दायित्व के द्वारा उचित सूद पर पूँजी पा सकते हैं। जब तक सदस्यों में स्वावलंबन का भाव जागृत नहीं होता, तब तक सहकारिता आन्दोलन सफल नहीं हो सकता। इस कमी के ही कारण साख आन्दोलन भारतवर्ष में अभी तक सफल नहीं हो सका।

समितियों का आय-व्यय-निरीक्षण रजिस्ट्रार की अधीनता में होता है। रजिस्ट्रार सहकारी विभाग के आय-व्यय-निरीक्षकों से जांच कराता है; यदि आय-व्यय-निरीक्षक का कार्य किसी गैर-सरकारी संस्था को दे दिया गया हो तो रजिस्ट्रार उस संस्था के आडिटरों को लायसैन्स देता है, तभी वह आय-व्यय-निरीक्षण का कार्य कर सकते हैं।

आडिटर इस बात की भी जांच करता है कि कितना रुपया सदस्यों पर उधार है, जिसके चुकाने की अवधि समाप्त होगई। वह समिति की लेनी देनी का भी हिसाब देखता है। उसको यह भी देखना चाहिये कि समिति का कार्य सहकारिता के सिद्धान्तों के अनुसार हो रहा है अथवा नहीं। उसे समिति की आर्थिक स्थिति की पूरी जांच करना चाहिये। उसे देखना चाहिये कि ऋण उचित समय के लिये तथा उचित कार्यों के वास्ते दिये गये हैं, तथा आवश्यक जमानत ली गई है अथवा नहीं। उसे यह भी देखना चाहिये कि सदस्य ठीक समय पर ऋण चुकाते हैं कि नहीं। कहीं ऐसा तो नहीं होता कि सदस्य ठीक समय पर

न चुकाते हो किन्तु हिसाब में उनका रुपया जमा कर लिया जाता हो और उतना ही ऋण फिर दे दिया जाता हो। कहने का तात्पर्य यह है कि निरीक्षक को पूरी जांच करनी चाहिये। भारतवर्ष में आय-व्यय-निरीक्षण का कार्य भली भांति नहीं हो रहा है। सहकारिता आन्दोलन में कार्य करने वालों की तथा सेन्ट्रल बैंकिंग इनक्वायरी कमेटी की यह राय है कि आय व्यय निरीक्षण का कार्य अत्यन्त त्रुटि पूर्ण है।

यद्यपि प्रत्येक प्रान्त में आय व्यय निरीक्षण का कार्य रजिस्ट्रार की देख रेख में होता है परन्तु इस कार्य को भिन्न भिन्न संस्थाएँ कर रही हैं। पंजाब में प्रांतीय सहकारी इंस्टिट्यूट के कर्मचारी, तथा बिहार उड़ीसा में प्रांतीय फ़ैडरेशन के कर्मचारी, रजिस्ट्रार की देख रेख में यह कार्य करते हैं। कुछ प्रान्तों में रजिस्ट्रार के कर्मचारी आय व्यय निरीक्षण का कार्य करते हैं, तथा कुछ स्थानों में समितियों ने इस कार्य के लिए आय व्यय-निरीक्षक यूनियन स्थापित की है।

अप्रैल सन १९३१ में आल इण्डिया कोआपरेटिव कानफ्रेंस का अधिवेशन हैदराबाद में हुआ था। उस सम्मेलन में समस्त भारत में आय व्यय निरीक्षण की एक ही पद्धति चलाने का निश्चय हुआ और उसके अनुसार एक योजना भी तैयार की गई। उस योजना के अनुसार समितियों का निरीक्षण कार्य सेन्ट्रल बैंक, तथा बैंकिंग यूनियन से हाथ में ही रहना चाहिये आय-व्यय निरीक्षण प्रान्तीय संस्थाओं के हाथ में रहना चाहिये प्रान्तीय संस्था प्रत्येक जिले में जिला-आडिट-यूनियन स्थापित करे। उस जिले की सहकारी समितियां तथा सेन्ट्रल बैंक उस आडिट यूनियन से सम्बन्धित हो, तथा सब जिला यूनियन प्रान्तीय संस्था से सम्बन्धित हो। प्रान्तीय इन्स्टिट्यूट तथा

ज़िला-आडिट-यूनियन के कर्मचारियों की नियुक्ति तथा अनुशासन प्रांतीय इन्स्टिट्यूट करे। प्रारम्भिक सहकारी समितियों का आय व्यय निरीक्षण ज़िला-आडिट-यूनियन के आडिटर करें, और सेन्ट्रल बैंक तथा प्रान्तीय बैंकों का आय व्यय निरीक्षण प्रांतीय इन्स्टिट्यूट के आडिटर करें।

प्रांन्तीय इन्स्टिट्यूट तथा ज़िला आडिट यूनियन के आडिटर वही लोग नियत किये जावें, जिन्होंने इस कार्य की शिक्षा पाई है, और जिनको रजिस्ट्रार ने लायसैंस दे दिया है। यदि कोई आडिटर इस कार्य के योग्य न हो तो रजिस्ट्रार उसका लायसैंस ज़ब्त कर सकता है। इसके अतिरिक्त, रजिस्ट्रार आडिट यूनियन तथा प्रान्तीय इन्स्टिट्यूट के कार्य में हस्तक्षेप नहीं कर सकता। प्रांतीय इन्स्टिट्यूट नगर बैंक तथा सेंट्रल बैंकों से आडिट-फ़ीस वसूल करेगी, किन्तु कृषि सहकारी साख समितियों का आय-व्यय निरीक्षण निशुल्क होना चाहिये। इस कारण प्रांतीय सरकार प्रांतीय इन्स्टिट्यूट को आर्थिक सहायता प्रदान करे। अभी तक प्रारम्भिक समितियों से थोड़ी आडिट-फ़ीस ली जाती है।

समितियों की देख रेख तथा उनका नियन्त्रण रजिस्ट्रार तथा प्रांतीय सहकारी संस्था दोनों ही करते हैं।

ब्रिटिश भारत में लगभग १,२०,००० कृषि सहकारी समितियाँ है, जिनमें लगभग ८५ प्रतिशत साख समितियाँ है। सब कृषि समितियों के सदस्यों की संख्या ४१ लाख से ऊपर तथा कार्यशील पूँजी ३० करोड़ से अधिक है। इस पूँजी में ४० प्रतिशत तो समितियों की हिस्सा—पूंजी और रक्षित कोष है; शेष ६० प्रतिशत उधार पर ली हुई पूँजी है, जिसमें ८ प्रतिशत के लगभग तो डिपाज़िट और शेष ५२ प्रतिशत सेन्ट्रल बैंकों से

लिया हुआ ऋण है। इन आँकड़ों से ऐसा प्रतीत होता है कि आन्दोलन की स्थिति संतोषजनक है। किन्तु असल में ऐसा नहीं है। समितियों का रक्षित कोष वास्तव में 'रक्षित' नहीं है। वह अलग न रखा जाकर बहुधा उन समितियों के कारोबार में ही लगा दिया जाता है।

भारतवर्ष में साख समितियों का एक मुख्य दोष यह भी है कि वे अधिकतर बाहरी पूँजी पर अवलम्बित रहती हैं। जैसा कि हम आगे देखेंगे, अधिकतर धनी शहरी लोगों का ही रुपया सेन्ट्रल बैंकों के द्वारा गाँवों की समितियों के पास पहुँचता है और वही रुपया निर्धन ग्रामीणों को मिलता है।

साख समितियों की आडिट रिपोर्ट से ज्ञात होता है कि लगभग ५० प्रतिशत से अधिक ऋण ऐसा है, जिसकी अदायगी की तिथी कभी की निकल गई और सदस्यों ने उसको नहीं दिया। वास्तव में कहीं कहीं तो स्थिति ऐसी बिगड़ गई कि सेन्ट्रल बैंकों को कुर्क अमीन रखने पड़े, जिन्होंने साख समितियों के सदस्यों की कुर्की की, फिर भी कर्ज़ का बहुत सा रुपया वसूल नहीं हो पाया। जब मूल ऋण की अदायगी की यह दशा है तब उस पर जो सूद इकट्ठा हो गया है, उसका तो कहना ही क्या। बरार इत्यादि में जब सेन्ट्रल बैंकों ने कर्ज़ के एवज़ में सदस्यों की भूमि ले ली तो उसका प्रबंध करना कठिन हो गया और सरकारी मालगुज़ारी अपने पास से देनी पड़ी। इस सब का परिणाम यह हुआ कि मध्यप्रान्त - बरार, बिहार, उड़ीसा और बंगाल में आन्दोलन नितान्त शक्तिहीन और निष्प्राण हो गया। लोगों को भय होने लगा कि आन्दोलन मर जावेगा। सन् १९४० में नया कर्ज़ सात करोड़ रुपये से भी कम दिया गया। इसके बाद नये कर्ज़ और भी कम कर दिये गये।

निदान, साख पहले से बहुत सीमित और मर्यादित कर दी गई।

भारतवर्ष में जब कृषि सहकारी समितियों का वार्षिक आय व्यय निरीक्षण होता है तब आय व्यय निरीक्षक उनकी आर्थिक स्थिति के अनुसार उनको ए, बी, सी, डी, और ई वर्ग में रखते हैं। 'ए' वर्ग की समितियाँ बहुत अच्छी समझी जाती हैं; 'बी' वर्ग की अच्छी; 'सी' वर्ग की साधारण; 'डी' वर्ग की बुरी, और 'ई' वर्ग की समितियाँ अत्यन्त बुरी समझी जाती हैं। 'ई' वर्ग की समितियों को दिवालिया कर दिया जाता है। रिपोर्टों से ज्ञात होता है कि समितियों में से एक बहुत बड़ी संख्या 'डी' और 'ई' वर्ग में है। बम्बई, मध्यप्रांत, उड़ीसा, और आसाम में 'डी' और 'ई' वर्ग की समितियों की संख्या ४० प्रतिशत से अधिक है और शेष प्रांतों में भी २५ प्रतिशत से अधिक इन्हीं वर्गों में हैं। ६ प्रांतों में १० प्रतिशत से भी कम समितियाँ 'ए' और 'बी' वर्गों में हैं। इस तरह रिपोर्टों से ही यह स्पष्ट हो जाता है कि कृषि सहकारी समितियों की दशा अत्यन्त शोचनीय है। रिपोर्टों से यह भी ज्ञात होता है कि पिछले वर्षों में ६ प्रतिशत के लगभग समितियाँ प्रतिवर्ष दिवालिया होती रहीं। समितियों की संख्या पूर्व से घटी नहीं, उसका कारण यह था कि साथ साथ नई समितियों का भी संगठन होता रहता था। सर डार्लिंग के अनुसार सहकारिता आन्दोलन के आरम्भ से आज तक जितनी समितियाँ स्थापित हुईं, उसकी २५ प्रतिशत दीवालिया हो गई।

सहकारी साख समितियों से जैसी आशा थी, वे सफल नहीं हुईं। यह तो इसी से विदित हो जाता है कि पुरानी और सफल साख समितियों के सदस्यों की संख्या बढ़ नहीं रही है। ग्रामीण समिति का सदस्य बनने के लिए कोई व्यक्ति विशेष उत्साह नहीं

दिखलाता। चालीस वर्ष के उपरान्त भी आन्दोलन निर्जीव और निस्तेज क्यों है, इसके कारण अंतिम परिच्छेद में लिखे जावेंगे।

कुछ बातों के सम्बन्ध में सहकारिता आंदोलन के कार्यकर्ताओं में पिछले वर्षों मे घोर मतभेद रहा है, ये आन्दोलन की आधारशिला हैं; जैसे कृषि सहकारी साख समिति का दायित्व अपरिमित न होकर परिमित होना चाहिये; केवल सहकारी साख समिति से ग्रामीणों की आर्थिक समस्याएँ हल न होंगी, उन्हे सब कामों में सहकारी संगठन की आवश्यकता है, अतएव साख समिति के स्थान पर बहु-उद्देश्य वाली सहकारी समिति स्थापित की जानी चाहिए, जो ग्रामीण की अधिकांश आर्थिक आवश्यकताओं को पूरा कर सके, इत्यादि। इन सब प्रश्नों पर हम सहकारिता आन्दोलन के पुनर्निर्माण वाले परिच्छेद में प्रकाश डालेंगे। इसमें तनिक भी सदेह नहीं कि साख आन्दोलन ऐसी स्थिति मे पहुँच गया है कि यदि उसमे आवश्यक सुधार नहीं हुआ तो उसका सारा ढांचा गिर पड़ेगा और आन्दोलन नष्ट हो जायगा।

छठा परिच्छेद

नगर सहकारी साख समितियाँ

—०—

शहरों की जनसंख्या आर्थिक दृष्टि से तीन भागों में बांटी जा सकती हैं। (१) उत्पादन कार्यों में लगे हुए मनुष्य, (२) व्यापारी अर्थात दलाल, और (३) उपभोक्ता। वैसे तो प्रत्येक

मनुष्य उपभोक्ता है किन्तु सहकारिता के द्वारा अपनी स्थिति को सुधारने का प्रयत्न केवल श्रमजीवी तथा नियमित वेतन पाने वाले मध्यम श्रेणी के मनुष्य ही करते है। इस कारण हम इन्हे ही उपभोक्ता वर्ग में रखते हैं। उत्पादक वर्ग में अनन्त धन-राशि के स्वामी मिल-मालिको से लेकर छोटे से छोटे जुलाहे अथवा अन्य कारीगर सभी आजाते है। पूँजीपतियो को साख देने का कार्य सहकारी साख समितियाँ नही कर सकती। उनके लिये व्यापारिक बैङ्क मौजूद हैं। सहकारिता आन्दोलन तो केवल निर्बल तथा निर्धनो के लिए है। गृह-उद्योग-धन्धों में लगे हुए कारीगरों को सहकारी साख समितियाँ अवश्य सहायता पहुँचा सकती है। व्यापारी वर्ग में छोटे बड़े सभी व्यापारी आजाते है। बड़े व्यापारियो के लिये व्यापारिक बैङ्क खुले हुये हैं तथा वे अधिक निर्बल नही हैं। अस्तु, सहकारिता आन्दोलन यदि थोड़ी बहुत सहायता कर सकता है तो केवल छोटे छोटे निर्धन व्यापारियो की।

साधारणतः उपभोक्ताओं को साख की आवश्यकता न होनी चाहिये. क्योंकि वह तो अन्तिम खरीददार होता है। वह किसी भी वस्तु को बेचने के लिये नहीं खरीदता, वह तो वस्तुका उपभोग करता है. इस कारण उसको नक़द दाम ही चुकाना चाहिये। उपभोक्ता अपनी आय से अधिक व्यय नहीं कर सकता। यदि उपभोक्ता उधार माँगता है तो इसका अर्थ है कि वह आय से अधिक व्यय कर रहा है। ऐसी अवस्था में वह कर्ज़ को नही चुका सकेगा। अस्तु, साधारणतः उपभोक्ताओ को उधार देना जोखिम का काम है। किन्तु किसी अवस्था मे उन्हे उधार की आवश्यकता पड़ जाती है। मान लीजिये किसी मनुष्य के पास यथेष्ट सम्पत्ति अथवा धन है, पर वह धन कहीं लगा हुआ है,

उस समय नहीं मिल सकता. और ठीक ऐसे समय ही उस आदमी को किसी आवश्यक कार्य के लिये रुपये की आवश्यकता है। ऐसी दशा में उसे कर्ज़ के सिवा कोई चारा नहीं रहता। कुछ लोग ऐसे भी हो सकते हैं, जिनके पास न तो सम्पत्ति ही है, और न उन्होंने कुछ बचाया ही है, उन्हें कर्ज़ की आवश्यकता पड़ती है। नौकरी छूट जाने पर तथा घर मे लम्बी बीमारी हो जाने के कारण उन्हे क़र्ज़ लेना पड़ता है। इन लोगों के पास ज़मानत कुछ नहीं होती। व्यापारिक बैङ्क थोड़ा ऋण नही देते, फिर बिना ज़मानत तो वह ऋण दे ही नहीं सकते। ऐसे लोगो के लिये नगर सहकारी बैङ्क आवश्यक हैं। ये बैङ्क मज़दूरी पाने वालों तथा थोड़ा वेतन पाने वालों को महाजन के पंजों से बचाते हैं। इसके अतिरिक्त, ये बैङ्क साधारण स्थिति के लोगों में मितव्ययिता का भाव जागृत करते हैं और उन की थोड़ी सी बचत को जमा करते हैं। आड़े समय पर ये बैङ्क निर्धन मज़दूरों को सहायता पहुचा सकते हैं। मिश्रित पूँजी वाले बैङ्क इन लोगों की समस्या को हल नहीं कर सकते।

नगर सहकारी साख समितियाँ तीन प्रकार की होती है। (१) वेतन पाने वालों की समितियाँ (२) मिल-मज़दूरों की समितियाँ (३) जातीय समितियाँ।

भिन्न भिन्न दफ़्तरो तथा कारखानों में कार्य करने वाले वेतन-भोगी कर्मचारियो की समितियाँ पृथक् होती हैं। इस प्रकार की साख समितियाँ अधिकतर सफल हो जाती है। उसका कारण यह होता है कि सदस्य शिक्षित होते है तथा उनमें नियमो के पालन करने का जो अभ्यास होता है, उसके कारण समिति का कार्य सुचारु रूप से चलता है। इसके अतिरिक्त, यदि साख समिति को उस दफ़्तर के प्रधान अफ़सर की भी सहानुभूति

मिल जावे तो फिर कहना ही क्या है! उससे दिये हुये ऋण को वसूल करने मे बहुत सहायता मिलती है। सहकारी साख समिति को चाहिये कि प्रत्येक मास सदस्यों को वेतन मिलने पर कुछ न कुछ जमा करने के लिये उत्साहित करे, जिससे उनमे मितव्ययिता का भाव जागृत हो।

मिल-मजदूरो की सहकारी साख समितियां भी ऊपर लिखी जैसी ही होती है। अतर इतना ही है कि इनके सदस्य अशिक्षित होते है तथा वे ऋण भी थोड़ा लेते है। ऐसी साख समितियो के लिये मिल-मालिको की सहानुभूति लाभदायक सिद्ध होती है। कुछ विद्वानो का कथन है कि सदस्यो को दिया हुआ ऋण मिल-मालिको के द्वारा वसूल किया जावे, किन्तु लेखक का मत इसके विरुद्ध है। यदि मिल-मालिक मजदूर के वेतन मे से काट कर ऋण चुकावेंगे तो मजदूर समिति को मिल-मालिक का पिट्ठू समझेगा, और इस प्रकार मजदूर कभी भी सहकारिता आन्दोलन को न समझ सकेगा। अस्तु, जहां तक हो, ऋण वसूल करने मे मिल-मालको की सहायता न ली जावे। फिर भी मिल-मालिको की सहानुभूति अत्यन्त आवश्यक है। मिल-मजदूरो की सहकारी साख समितियों के निरीक्षण की अत्यन्त आवश्यकता है। बिना उचित निरीक्षण तथा देख-भाल के उनका सफल होना कठिन होता है। इसलिये जो पूँजीपति अपने मजदूरो की आर्थिक स्थिति को सुधारना चाहे, वे एक सुपरवाइजर नियुक्त कर दें, जो उन मिलो के मजदूरो की साख-समितियो की देख भाल करता रहे। बम्बई तथा अन्य औद्योगिक केन्द्रो के कुछ विवेकशील मिल-मालिको ने अपने मजदूरो के हितार्थ साख समितियां स्थापित की है। किन्तु मिल-मजदूरो को साख से भी अधिक सहकारी स्टोर की आवश्यकता है,

जिससे कि वे अपने दैनिक जीवन की वस्तुएँ उचित मूल्य पर खरीद सकें। इसके अतिरिक्त सहकारी गृह-निर्माण तथा सहकारी श्रम समितियां भी मजदूरों के लिये उपयोगी होंगी।

जातीय सहकारी साख समितियां भी भारतवर्ष में स्थापित की गई हैं। उन में प्रारम्भ में बहुत जोश होता है, किन्तु आगे चल कर जोश ठंडा पड़ जाता है और कार्यकर्त्ता शिथिल हो जाते हैं। ऋण देते समय इस बात का ध्यान नहीं रखा जाता कि ऋण कितना दिया जावे, न उसके वसूल करने में ही कड़ाई की जा सकती है, क्योंकि जाति-भाई का लिहाज रहता है। यद्यपि जातीय समितियों में ऊपर लिखे दोष होते हैं, फिर भी कुछ समितियां अपनी जातियों की अच्छी सेवा कर रही हैं।

इनके अतिरिक्त नगरों में गृह-उद्योग-धन्धों में लगे हुए कारीगरों को भी साख की आवश्यकता होती है। कारीगरों को मिश्रित पूँजी वाले बैङ्क उधार नहीं देते। कारण यह है कि एक तो कारीगरों को थोड़ी पूँजी की आवश्यकता होती है, जिसे देना बैङ्कों के लिये लाभदायक नहीं होता; दूसरे, कारीगरों के पास कोई जमानत भी नहीं होती। बिना जमानत के बैङ्क किसी को भी ऋण नहीं देते। इस कारण बेचारे कारीगर उन थोक व्यापारियों के चगुल में फँस जाते हैं, जो उनके तैयार माल का व्यापार करते हैं। यह व्यापारी कारीगरों को या तो कच्चा माल उधार दे देते हैं, अथवा उन्हें कच्चा माल लेने के लिये रुपया उधार दे देते हैं। शर्त यह होती है कि उन्हें तैयार माल उसी व्यापारी के हाथ बेचना होगा। फल यह होता है कि निर्धन कारीगर व्यापारी का चिर दास बन जाता है, और व्यापारी के लिये माल तैयार करता रहता है। व्यापारी उसको कम से कम मजदूरी देता है, और इस प्रकार व्यापारी कारीगर

का शोषण करता है। कारीगर को इस प्रकार के शोषण से बचाने के लिये नगर सहकारी साख समितियों की अत्यन्त आवश्यकता है। इस प्रकार की साख समितियां प्रत्येक धंधे के लिये अलग अलग होंगी, जैसे जुलाहों के लिये बुनकर साख समिति। अभी तक इस देश में उत्पादक सहकारी साख समितियां अधिक सख्या मे नहीं खोली गई और न इस आन्दोलन को अधिक सफलता ही मिली है। इसका कारण यह है कि साख समिति केवल पूँजी का प्रबन्ध करती है। कारीगर को कच्चे माल के लिये, उसी व्यापारी की शरण में जाना पड़ता है। कारीगर अपने धंधों में कुशल होता है किन्तु कच्चा माल खरीदने तथा तैयार माल बेचने की कला वह नहीं जानता। इस कारण समिति को यह सब कार्य अपने हाथ मे ले लेना चाहिये।

नगरों में एक समूह और है, वह है व्यापार करने वालों का। व्यापारियों के लिये मिश्रित पूँजी वाले व्यापारी बैङ्क हैं, किन्तु नगरों तथा कस्बो मे छोटे छोटे खोमचे वाले, दूकानदार, तथा छोटे व्यापारी भी होते हैं, जिन्हे साख की आवश्यकता होती है। इन दूकानदारो के लिये पीपल्स बैङ्क (मुञ्जनी प्रणाली पर) स्थापित किए जाने चाहिएँ।

पीपल्स बैङ्क – पीपल्स बैङ्क गृह उद्योग धन्धों को प्रोत्साहित करने के लिये कारीगरों को ऋण देते हैं, तथा गांव की पैदावार को मंडियो तक पहुँचाने वालों को साख देते हैं। यद्यपि भारतवर्ष मे इन बैङ्कों की अत्यन्त आवश्यकता है फिर भी अभी तक बहुत कम बैङ्क खोले जा सके है। जो नगर सहकारी बैङ्क खोले गये है वे प्रायः या तो जातीय बैङ्क हैं, अथवा किसी एक पेशे में लगे हुए लोगों के बैंक है। बम्बई तथा

बंगाल में अवश्य कुछ ऐसे बैङ्क सफलता पूर्वक कार्य कर रहे है।

नगर सहकारी बैङ्क तथा व्यापारी बैङ्क में अधिक भेद नहीं है। नगर सहकारी बैङ्कों मे भी सेविंग (बचत) चालू, तथा मुद्दती जमा होती है। वे केवल सदस्यों को ही ऋण देते है। वे बिल तथा हुन्डी को भुनाने का काम भी करते है। बंगाल तथा बम्बई के अतिरिक्त, अन्य किसी भी प्रान्त मे नगर सहकारी बैङ्को ने अभी तक हुण्डी का काम प्रारम्भ नही किया है। नगर सहकारी बैङ्क शुल्ज डैलिट्ज प्रणाली पर चलाये गये है। इन बैङ्को की कार्यशील पूँजी डिपाजिट तथा हिस्सा—पूँजी होती है, तथा दायित्व परिमित होता है। नगर सहकारी बैङ्क का संगठन कृषि साख समिति जैसा ही होता है, केवल यही भेद होता है कि नगर सहकारी बैङ्कों में २५ प्रतिशत लाभ रक्षित कोष में रख कर बाकी का बांट दिया जाता है।

नगर सहकारी बैङ्क की सफलता के लिये यह आवश्यक है कि कर्मचारी बैङ्किग के कार्य में दक्ष हों, तथा बैङ्क के प्रबन्धकर्ता भी अनुभवी पुरुष हों। बम्बई के सहकारी नगर बैङ्कों की सफलता का कारण यह है कि वहां सर लल्लू भाई सांवलदास, तथा स्वर्गीय सर विट्ठलदास थैकरसे जैसे सुयोग्य और अनुभवी व्यवसायियों ने इनका सफल बनाने मे सहयोग दिया था। बम्बई तथा सिन्ध में कुछ जातीय बैङ्कों को भी अच्छी सफलता मिली है। इनमें शमरा विट्ठल सहकारी बैङ्क लिमिटेड का नाम उल्लेखनीय है। इस बैङ्क को सारस्वत ब्राह्मणों ने १९०६ में स्थापित किया था। इस समय इस बैङ्क की कार्यशील पूँजी १८ लाख रुपये के लगभग है।

बम्बई में मिल मजदूरों की भी सहकारी साख समितियां हैं। इन्हें नगर सहकारी बैङ्क भी कहते है। इन में एक दोष शीघ्र

प्रवेश कर जाता है। ये अपने मुख्य कर्तव्य अर्थात सदस्यों मे मितव्ययिता के भाव का प्रचार न करके केवल सदस्यो को ऋण देने का कार्य करने लगते है। इस दोष की ओर अब ध्यान आकर्षित हुआ है और यह प्रयत्न किया जा रहा है कि सदस्य बैङ्क में रुपया जमा भी करें।

नगर सहकारी बैङ्क में ऋण लेने वाले को व्यक्तियों की जमानत देनी होती है। इस बैङ्क की समिति का प्रबन्ध एक प्रबन्धकारिणी समिति करती है। एक बात ध्यान में रखने की है कि मिल-मजदूरों के बैङ्कों में यदि मिल-मालिक का कोई प्रतिनिधि होता है, तो जो कुछ वह करता है, वही होता है। साधारण सदस्यों को यह विचार ही नहीं होता कि समिति उनकी है।

नगर साख सहकारी समितियाँ मदरास और बम्बई प्रान्त में विशेष रूप से है। इन प्रान्तों मे सभी बड़े कस्बों में नगर साख सहकारी बैङ्क स्थापित हो चुके हैं; वैसे बंगाल और पंजाब में भी उनकी संख्या बढ़ रही है। भिन्न प्रान्तों में इन बैङ्कों की संख्या और पूंजी इस प्रकार है —

प्रान्त	संख्या	कार्यशील पूँजी
आसाम	१६३	२७ लाख रु० के लगभग
बंगाल	६०८	६ करोड़ रु० से अधिक
बिहार	१०६	६० लाख रु०
बम्बई	६८५	६ करोड़ रु० से अधिक
मदरास	११६१	१ करोड़ ७० लाख रु०
पंजाब	७४०	१ करोड़ २२ लाख रु०
सिंध	१३१	८६ लाख रु०
संयुक्तप्रान्त	५००	——

मध्यप्रान्त-बरार—केवल अमरावती में एक पीपल्स बैङ्क है।

देशी राज्यों में, मैसूर में ३०० से अधिक, और बड़ौदा तथा कशमीर में क्रमशः २६ और २७ नगर साख समितियाँ काम कर रही हैं।

नगर साख सहकारी समितियाँ रेल डाक आदि के सरकारी कर्मचारियों, तथा अन्य वेतन-भोगी मध्यमश्रेणी के व्यक्तियों, मिल-मज़दूरों, छोटे दूकानदारों तथा कारीगरों की होती हैं। कृषि साख समितियों की अपेक्षा नगर साख समितियाँ इस देश में अधिक सफल हुई हैं। वे अधिक मज़बूत और आर्थिक दृष्टि से अधिक स्वावलम्बी हैं। नगर साख समितियाँ के दिये हुए ऋण की क़िस्तें बहुत कम बकाया रहती हैं। एक विशेष बात इन समितियों के सम्बन्ध में यह है कि वे अपनी हिस्सा-पूँजी और डिपाज़िटों से ही इतना रुपया पा जाती हैं कि उनका काम अच्छी तरह से चल जाता है, और उन्हें सेन्ट्रल बैङ्कों अथवा प्रान्तीय बैङ्कों से ऋण लेने की आवश्यकता नहीं पड़ती। संक्षेप में वे अधिक स्वावलम्बी हैं। भारत जैसे देश में, जहाँ बैङ्किङ्ग की सुविधा कम है, उनकी और अधिक आवश्यकता है।

—०—

सातवाँ परिच्छेद

सेन्ट्रल बैङ्क तथा बैङ्किङ्ग यूनियन

—०—

पिछले परिच्छेद में नगर सहकारी बैङ्कों के बारे में लिखा गया है। कुछ लोगों का यह विचार था कि ये बैङ्क ग्रामीण समितियों के लिये भी रुपया इकट्ठा कर सकेंगे। इस कारण

१९०४ के एक्ट के अनुसार केवल दो प्रकार की साख समितियां स्थापित की गईं। किन्तु यह आशा कि ग्रामीण जनता इन समितियों मे रुपया जमा करेगी, पूरी नही हुई; क्योंकि एक तो किसान ऋणी है दूसरे वह बैङ्क मे रुपया रखने का अभ्यस्त नही है। प्रारम्भ मे सहकारी समितियाँ सख्या मे कम थी, इस कारण उनके लिए कार्यशील पूँजी इकट्ठी करने मे अधिक कठिनाई प्रतीत नहीं हुई। रजिस्ट्रार, समितियो मे जमा होने वाले रुपये के अतिरिक्त, प्रान्तीय सरकार तथा धनी व्यक्तियों से रुपया लेकर काम चलाते थे। पर इस प्रकार अधिक दिनों काम नहीं चल सकता था।

अस्तु, यह आवश्यकता प्रतीत हुई कि ऐसे सहकारी बैङ्क खोले जावें, जो नगरों में प्रारम्भिक सहकारी समितियों के लिये धन इकट्ठा करें। १९१२ में दूसरा एक्ट पास हुआ और उसके अनुसार सेन्ट्रल बैंक खोलने की सुविधा हो गई। १९१० और १९१५ के बीच में सब प्रकार की सहकारी समितियों की सख्या बहुत बढ़ गई तथा सेन्ट्रल बैंकों की भी स्थापना की गई। सन् १९१२ में दूसरा सहकारिता एक्ट पास हो जाने के उपरान्त संयुक्तप्रान्त, पंजाब बङ्गाल, तथा मध्यप्रान्त में बहुत से सेन्ट्रल बैंकों की स्थापना हुई। १९१५ से १९२० तक सेन्ट्रल बैंको का औसत ३०१ था और प्रारम्भिक सहकारी समितियों की संख्या २७,५३५, थी। १९२० से १९२५ तक सेन्ट्रल बैंकों की संख्या ५०० थी तथा समितियों की संख्या ५५,८९९ थी। इस समय ये संख्याएँ क्रमशः ६०० और १,०४,००० है।

सेन्ट्रल बैंक तीन प्रकार के होते हैं। (१) ऐसे सेन्ट्रल बैंक, जिनके सदस्य केवल व्यक्ति ही होते हैं। (२) ऐसे सेन्ट्रल बैंक, जिनके सदस्य केवल समितियाँ ही हो सकती हैं। (३)

ऐसे सेन्ट्रल बैङ्क, जिनके सदस्य व्यक्ति तथा समितियाँ दोनो ही होते हैं। पहले प्रकार के बैंक केवल हिस्सेदारो के बैंक होते हैं। ये सहकारिता के सिद्धांतो के विरुद्ध है। इस कारण अब ऐसे बैंक नहीं रहे। दूसरे प्रकार के बैंक, जिनके सदस्य केवल समितियाँ होती हैं, आदर्श सहकारी सेन्ट्रल बैंक है। समितियाँ इन बैंको की नीति को निधारित करती है तथा बैंक का प्रबन्ध भी उन्हीं के हाथ मे रहता है। ऐसे बैंक को बैंकिंग यूनियन कहते हैं। इन बैंकिंग यूनियनो का सम्बन्ध ग्रामीण समितियों से होता है, तथा ग्रामीण समितियाँ ही इनका प्रबन्ध करती हैं। इन बैंकिंग यूनियनो की सफलता के लिये यह आवश्यक है कि समितियों के सदस्य योग्य तथा प्रभावशाली व्यक्ति हों। यही कारण है कि बैंकिंग यूनियन संख्या मे अधिक नहीं है। तीसरे प्रकार के सेन्ट्रल बैङ्क ही अधिक देखने मे आते है। उत्तर भारत में बैंकिंग यूनियन सख्या मे यथेष्ट है, और दक्षिण में बहुत कम।

सेन्ट्रल बैंक का क्षेत्र प्रत्येक प्रान्त मे भिन्न होता है। उस क्षेत्र की सहकारी समितियाँ उसी बैंक से ऋण लेती है। दक्षिण तथा पश्चिमीय भारत मे सेन्ट्रल बैंक का क्षेत्र एक ज़िला होता है, परन्तु उत्तर भारत में सेन्ट्रल बैंक का क्षेत्र तहसील होती है, इस कारण इन प्रान्तो के सेन्ट्रल बैंकों से सम्बधित समितियों की संख्या तथा पूँजी कम होती है।

साधारण सभा—सेन्ट्रल बैंक के हिस्सेदारो की सभा को साधारण सभा कहते हैं। सभा के सदस्यों को केवल एक वोट देने का अधिकार होता है। मिश्रित पूँजी वाली कम्पनियो की भाँति, जिसने अधिक हिस्से खरीदे हैं उसको एक से अधिक वोट देने का अधिकार नही है। साधारण सभा डायरेक्टरो

का निर्वाचन करती है।

संचालक (डायरेक्टर)–बोर्ड बैङ्क का प्रबन्ध करता है। साधारणतः सैन्ट्रल बैंक के डायरेक्टर संख्या मे अधिक होते हैं, क्योंकि बहुत से स्वार्थों का प्रतिनिधित्व होना आवश्यक होता है। भिन्न भिन्न प्रान्तो मे डायरेक्टरो की संख्या १० से २४ तक है। इससे यह कठिनाई होती है कि पूरे बोर्ड की मीटिंग का आयोजन कठिन हो जाता है, इसलिए बोर्ड अपने सदस्यो में से कार्यकारिणी समितियों का निर्वाचन करता है, जो बैङ्क का कार्य चलाती हैं। बैंक का दैनिक कार्य अवैतनिक मन्त्री, चेयरमेन तथा कोई एक डाक्टरेक्टर, मेनेजर की सलाह से, करता है। डायरेक्टरों को फ़ीस अथवा वेतन कुछ नहीं मिलता। कहीं कहीं डायरेक्टर समितियों की आवश्यकता को जानने के लिये समितियो का निरीक्षण करते है तथा यह रिपोर्ट करते हैं कि उनको कितना ऋण देना चाहिये। डायरेक्टर बदलते रहते हैं। चेयरमेन तथा मन्त्री व्यक्तियो मे से चुने जाते हैं। उत्तरीय तथा पूर्वीय भारत मे चेयरमेन कहीं कहीं सरकारी कर्मचारी भी होता है; अधिकतर वह गैर सरकारी ही होता है। अधिकतर डायरेक्टर समितियो के प्रतिनिधि ही होते है।

प्रत्येक बैंक एक मेनेजर नियुक्त करता है। मेनेजर प्रत्येक प्रान्तमे एक ही कार्य नहीं करता। कुछ प्रान्तों मे मेनेजर बैङ्कको अच्छे रूप से चलाने के अतिरिक्त, सम्बन्धित साख समितियों के लिये भी ज़िम्मेदार होता है। इस लिये उसको सेन्ट्रल बैङ्क के दौरा करने वाले कर्मचारियो की भी देख भाल करनी पड़ती है। अन्य प्रान्तो मे मेनेजर केवल साख समितियो के लिये ज़िम्मेदार होता है, इसलिए वह केवल दौरा करता है और साख समितियो का निरीक्षण करता है। वह बैंक का प्रबन्ध

नहीं करता। बहुत बड़े बैंकों में दो मेनेजर नियुक्त किए जाते है। जहाँ मैनेजर दौरे का काम करता है, वहाँ अवैतनिक मन्त्री, बैंक के कर्मचारियों की सहायता से, बैङ्क का कार्य करता है। बैंक में मेनेजर के अतिरिक्त क्लर्क तथा आय-व्यय-लेखक नियुक्त किये जाते हैं। अधिकतर बैंक अपने खजानची रखते हैं और रुपये का लेन देन स्वयं करते हैं। किन्तु कुछ बैंक अवैतनिक खज़ानची रखते है अथवा सरकारी खज़ाने तथा किसी अन्य बैंक में अपना रुपया रखते है।

सैन्ट्रल बैंक की कार्यशील पूँजी हिस्सा-पूँजी, रक्षित कोष, डिपाज़िट, तथा ऋण के द्वारा प्राप्त होती है।

बैंकिंग यूनियन में केवल समितियाँ ही हिस्से खरीद सकती है किन्तु मिश्रित बैङ्कोमे व्यक्ति भी हिस्से खरीद सकते हैं। साधारणतः सेन्ट्रल बैंकों के हिस्से ५० रु० से लेकर १०० रु० तक के होते हैं, किन्तु कहीं कहीं १० से लेकर १००० रु० तक के हिस्से हैं। समितियाँ अपने ऋण के अनुपात में हिस्से लेती हैं। बम्बई, बर्मा, देहली, कुर्ग, गवालियर, तथा इन्दौर में हिस्सों का मूल्य पूरा चुका दिया गया है परन्तु अन्य प्रान्तों तथा देशी राज्यों में हिस्सों का पूरा मूल्य नहीं चुकाया गया है। साधारण हिस्सेदारों का दायित्व हिस्से के मूल्य तक ही सीमित है किन्तु कुछ प्रान्तों में हिस्सेदारों का दायित्व चार गुने से लेकर दस गुने तक है। १९१२ के एक्ट के अनुसार प्रत्येक परिमित दायित्व वाली समिति को २५ प्रतिशत लाभ रक्षित कोष में जमा करना होता है। सेन्ट्रल बैंक इस २५ प्रतिशत के अतिरिक्त अन्य कार्यों के लिये विशेष रक्षित कोष जमा करते हैं।

हिस्सा पूँजी तथा रक्षित कोष तो बैङ्क की निजी पूँजी होती है, और डिपाज़िट तथा ऋण उधार ली हुई पूँजी होती है।

भारतवर्ष के प्रत्येक प्रान्त में निजी पूँजी तथा ऋण ली हुई पूँजी का अनुपात १ : ८ है।

सदस्यों तथा ग़ैर-सदस्यों की डिपाज़िट ही कार्यशील पूँजी का बड़ा भाग होती है। सेन्ट्रल बंक में दो प्रकार की डिपाज़िट होती हैं—मुद्दती, तथा सेविंग्स। अधिकतर सेन्ट्रल बैंक चालू खाता नहीं रखते। हां, कुछ बैंक रखते भी हैं। चालू खाता जोखिम का काम है, उसके लिये संचालकों में यथेष्ट व्यापारिक कुशलता होनी चाहिये। सेन्ट्रल बैंकों के पास पूँजी भी बहुत कम होती है, इस कारण भी ये बैंक चालू खाता सफलता पूर्वक नहीं रख सकते। कहीं कहीं सेविंग्स डिपाज़िट भी नहीं लीजाती किन्तु अधिकतर बैंक सेविंग्स डिपाज़िट लेते हैं। इन बैंकों में अधिकतर मुद्दती जमा लीजाती है। सेन्ट्रल बैंक अधिकतर एक वर्ष के लिये डिपाज़िट लेते है। केवल बिहार उड़ीसा में यह प्रथा है कि चाहे जब रुपया जमा किया जावे, ३१ मई को रुपया वापिस दे दिया जाता है। सेन्ट्रल बैंक में अधिकतर नौकरी करने वाले, ज़मीदार, तथा सस्थाएँ ही रुपया जमा करती हैं।

डिपाज़िट के अतिरिक्त आवश्यकता पड़ने पर बैंक ऋण भी ले लेते है। सेन्ट्रल बैंक इम्पीरियल बैङ्क आदि दूसरे बैंकों से, तथा प्रांतीय सरकार से ऋण लेते है। पंजाब के अतिरिक्त अन्य प्रान्तो में सेन्ट्रल बैंक प्रान्तीय सरकार से सीधे ऋण नहीं लेते। किन्तु देशी राज्यो में सेन्ट्रल बैंक राज्य से ही ऋण लेते है, केवल मैसूर में बैंक राज्य से ऋण नही लेते।

सेन्ट्रल बैंक सरकारी काग़ज़ तथा प्रारम्भिक सहकारी साख समितियों के प्रामिसिरी नोट की ज़मानत पर ऋण लेते हैं। कुछ समय से इम्पीरियल बैंक ने प्रारम्भिक सहकारी समितियो के प्रामिसिरी नोट पर ऋण देना बन्द कर दिया है, और केवल

सरकारी कागज़ पर ही ऋण देता है। इम्पीरियल बैंक के मेनेजिंग गवर्नर ने, सेन्ट्रल बैंकिंग इनक्वायरी कमेटी के सामने गवाही देते हुए, कहा है कि सहकारी समितियों की आर्थिक दशा अत्यन्त शोचनीय है इस लिए उनके प्रामिसरी नोट पर बैंक ऋण नहीं दे सकता। सेन्ट्रल बैंक अन्य मिश्रित पूँजी वाले बैंकों से ऋण नहीं लेते, ये अधिकतर प्रान्तीय सहकारी बैंकों से ही ऋण लेते है। इन बैंकों के सम्बन्ध मे अगले परिच्छेद मे लिखा जायगा। जहाँ प्रान्तीय बैंक स्थापित हो चुके है, वहाँ सेन्ट्रल बैंक, अन्य मिश्रित पूँजी वाले व्यापारिक बैंकों तथा दूसरे सेन्ट्रल बैंकों से सीधा सम्बन्ध नहीं रख सकते। यह नियम मदरास और पंजाब में कड़ाई के साथ उपयोग में नहीं लाया जाता। संयुक्तप्रान्त में एक सेन्ट्रल बैंक दूसरे सेन्ट्रल बैंक को, रजिस्ट्रार की अनुमति लेकर, ऋण दे सकता है।

सेन्ट्रल बैंक अधिकतर सहकारी साख समितियों तथा गैर-साख समितियों को ही ऋण देते हैं, पंजाब, मैसूर, गवालियर, तथा मदरास में अब भी सेन्ट्रल बैंक व्यक्तियों को ऋण देते हैं, किन्तु यह रिवाज अब बन्द की जारही है। सहकारी समितियों के पास जमा करने के लिये अधिक पूँजी तो होती नहीं, इस कारण बैंक समितियों को ऋण देने का ही कार्य अधिक करते हैं। सेन्ट्रल बैंक व्यक्तियों, विशेष प्रकार की समितियों, तथा कृषि सहकारी समितियों को, नोट अथवा बांड पर, ऋण दे देते हैं। किन्तु व्यक्तियों और विशेष प्रकार की समितियों से इसके अतिरिक्त कुछ जायदाद अथवा सम्पत्ति गिरवी रखवाई जाती है। कृषि सहकारी समितियों के अपरिमित दायित्व के कारण उनका 'प्रोनोट' ही यथेष्ट ज़मानत समझी जाती है। जब सहकारी साख समिति किसी सदस्य के पुराने ऋण को चुकाने के लिये लम्बा

ऋण लेती है तो प्रोनोट के अतिरिक्त सेन्ट्रल बैंक उन कागज़ों को जो सदस्य ने समिति को लिख दिये हैं, अपने नाम करवा लेता है।

यह जानने के लिये कि प्रत्येक सहकारी साख समिति को अधिक से अधिक कितना ऋण देना उचित होगा, सेन्ट्रल बैंक अपने से सम्बन्धित साख समितियों की साख का अनुमान लगाते हैं। जो ऋण समितियों को दिया जाता है, वह निश्चित वर्षों में वसूल कर लिया जाता है। कुछ प्रान्तों में अधिक समय के लिये भी ऋण दिया जाता है और कम समय के लिये भी। किन्तु कुछ प्रान्तों में केवल कम समय के लिये ही ऋण दिया जाता है। ऋण की स्वीकृति देने में बहुत सी क़ानूनी कार्यवाही करनी पड़ती है, इसलिए ऋण मिलने में देर हो जाती है। इस दोष को दूर करने के लिये कुछ सेन्ट्रल बैंक एक रक़म निश्चित कर देते हैं, जिस तक समितियों को बिन किसी देरी के ऋण दे दिया जाता है; अधिक रकम के लिये नियमित कार्यवाही करनी पड़ती है। कुछ प्रान्तों में समितियों की सामान्य साख निर्धारित करदी जाती है। समिति की सामान्य साख तय करने से पूर्व, उसके सदस्यों की सामान्य साख का लेखा तैयार किया जाता है, जिसमें सदस्यों की सम्पत्ति, उनकी आवश्यकता, उनकी आय, तथा उनकी बचाने की शक्ति का ब्यौरा रहता है। इस लेखे के आधार पर बैंक समिति की अधिकतम साख निश्चित कर देता है, अर्थात यह निश्चित कर देता है कि किस रक़म तक ऋण दिया जा सकता है। प्रति वर्ष हैसियत के अनुसार ही सदस्यों की सामान्य साख का लेखा तैयार किया जाता है।

सेन्ट्रल बैंक भिन्न भिन्न प्रान्तों में भिन्न भिन्न समय के लिये ऋण देते हैं। फ़सल उत्पन्न करने के लिये जो ऋण लिया जाता

है वह एक दो वर्ष के लिये होता है, और जो ऋण भूमि में सुधार करने के लिये, अथवा पुराने कर्जों को अदा करने के लिये लिया जाता है, वह पाँच से दस वर्ष के लिये दिया जाता है। प्रत्येक प्रांत में यह धारणा जोर पकड़ रही है कि सेन्ट्रल बैंक अधिक समय के लिये ऋण नहीं दे सकते। इसके लिये भूमि बन्धक बैंक स्थापित करना चाहिये।

सेन्ट्रल बैंक अभी तक ८ से १२ प्रति शत सूद समितियों से लेते रहे हैं। जब बाजार मे सूद की दर बहुत घटगई है तब इन बैंकों ने दर घटाई। अब यह प्रयत्न किया जा रहा है कि सूद की दर और घटाई जावे। भारतीय सहकारिता आन्दोलन की सब से बड़ी कमी यह है कि समितियां ऋण को उचित समय पर नहीं दे पातीं और बहुत सा रुपया बाक़ी रह जाता है। इसका मुख्य कारण यह है कि सदस्य अशिक्षित हैं, सहकारिता के सिद्धान्तों का उन्हें ज्ञान नहीं है, और कभी फसल के नष्ट हो जाने के कारण भी वे क़र्ज़ को अदा नहीं कर पाते। यदि फ़सल के नष्ट हो जाने से समितियां अपना ऋण नहीं दे पातीं तो उन्हे अधिक समय दे दिया जाता है। जब कोई समिति अपना ऋण नहीं देती तो बैंक, जहां तक हो सकता है, रुपया वसूल करता है। यदि रुपया किसी भी प्रकार वसूल नहीं होता तो बैंक रजिस्ट्रार से समिति को तोड़ देने के लिये कहता है, अथवा अदालत से डिगरी कराता है।

जब समितियां सेंट्रल बैंक को ऋण का रुपया चुकाती हैं, उससमय बैंक के पास आवश्यकता से अधिक रुपया जमा हो जाता है। यह स्थिति वर्ष में दो से चार महीने तक रहती है। इस समय बैंक प्रांतीय बैंकों में रुपया जमा कर देते हैं; जहां प्रान्तीय बैंक नहीं है, वहां रुपया इम्पीरियल बैंक में जमाकर दिया जाता

है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक बैंक के पास कुछ रुपया स्थाई रूपसे अधिक होता है. जो समितियो को ऋण देने में नहीं लगाया जा सकता। यह कोष प्रांतीय बैंक मे अधिक समय के लिए जमा कर दिया जाता है, अथवा ट्रस्ट सिक्यूरिटी मे लगा दिया जाता है। इस समय सेन्ट्रल बैंको की नीति यह है कि वे आवश्यकता से अधिक डिपाज़िट नहीं लेना चाहते. इस लिए डिपाज़िट पर सूद की दर बहुत घटा दी गई है।

मैकलेगन कमेटी ने प्रत्येक सेन्ट्रल बैङ्क को नक़दी रखने की आवश्यकता बतलाई है, क्योंकि किसी समय ऐसा सम्भव है कि डिपाज़िट निकाल ली जावें और लोग रुपया जमा न करें। ऐसे समय पर जमा करने वालो को उनका रुपया दे सकने के लिये यह आवश्यक है कि प्रत्येक सेन्ट्रल बैङ्क कुछ न कुछ नक़दी अवश्य रखे। मैकलेगन कमेटी ने इस विषय में निम्नलिखित सम्मति दी है—जिन बैङ्कों में चालू खाता तथा सेविङ्ग बैङ्क खाता दोनों ही हों, उनमें चालू खाते की सारी रकम तथा सेविंग बैंक खाते की ७५ प्रतिशत रक़म नकदी तथा ऐसी सिक्यूरटी में रखनी चाहिए, जो तुरन्त ही नक़दी में परिणत की जा सके। मुद्दती जमा के लिये कमेटी की यह राय है कि जो डिपाज़िट अगले बारह महीनों मे देनी हो उसकी आधी रक़म नक़दी में रहे। किन्तु इस नियम के अनुसार कहीं कार्य नहीं होता, प्रत्येक प्रान्त ने अपने नियम बना रखे हैं। प्रायः नक़दी इससे कम ही रहती है।

सेन्ट्रल बैङ्क प्रति वर्ष वार्षिक लाभ का २५ प्रतिशत रक्षित कोष में जमा करते हैं और शेष हिस्सेदारों में बाँट दिया जा सकता है, किन्तु सेन्ट्रल बैङ्कों के उपनियमों में अधिक से अधिक लाभ की दर निश्चित कर दी जाती है, जिससे अधिक लाभ

हिस्सेदारों में नहीं बाँटा जा सकता।

सेन्ट्रल बैङ्क ६ प्रतिशत से १० प्रतिशत तक लाभ बाँटते हैं; अधिकतर प्रान्तों में ६ प्रतिशत ही बाँटा जाता है। साधारण रक्षित कोष के अतिरिक्त कोई कोई सेन्ट्रल बैङ्क इमारत, बट्टा खाता, तथा लाभ हानि सन्तुलन के लिये विशेष कोष जमा करते हैं। रक्षित कोष का रुपया या तो सिक्यूरिटी में या प्रान्तीय बैङ्क में लगा दिया जाता है, अथवा वह बैङ्क मे ही रहता है और कार्यशील पूँजी की वृद्धि करता है।

सेन्ट्रल बैङ्कों की सूद की दर भिन्न भिन्न प्रान्तों में जुदा जुदा है। किन्तु डिपाज़िट पर सूद की दर, तथा प्रारम्भिक समितियों से जो सूद लिया जाता है उसमें, २ से ५ प्रति शत का अन्तर रहता है। बिहार, उड़ीसा, संयुक्तप्रांत, तथा गवालियर मे यह अन्तर ४ से ५ प्रति शत तक होता है। किन्तु अन्य प्रान्तों में अन्तर केवल दो या तीन प्रतिशत है। जिन बैंको का लेन देन कम होता है, उनका प्रबन्ध-व्यय अपेक्षाकृत अधिक होने के कारण उन्हें अन्तर अधिक रखना पड़ता है। कुछ प्रान्तो में विशेष प्रकार की 'लैंड टैन्योर' (भूमि-स्वत्व) होने के कारण रुपया अधिक मारा जाता है, इस कारण भी अन्तर अधिक रखना पड़ता है।

सेन्ट्रल बैंक अपने से संबन्धित समितियों की देख भाल रखते हैं. तथा उन पर अपना नियन्त्रण भी रखते हैं। इस कार्य के लिये उन्हें कुछ कर्मचारी रखने पड़ते है। यह कर्मचारी ऋण के प्रार्थनापत्रो की जांच करते हैं और सम्पत्ति का लेखा तैयार करते है; जो समितियाँ अपने पुराने ऋण को चुकाने के लिये अधिक समय मांगती है, उनके प्रार्थनापत्रो के विषय में भी जांच करते हैं, और समिति को सदस्यों से रुपया वसूल कराने में

सहायक होते हैं। कहीं कहीं सेन्ट्रल बैंक के कर्मचारी ही सदस्यों से रुपया वसूल कर लेते है। ऐसी परिस्थिति में सदस्य समिति को कुछ नहीं समझता और समिति का कोई प्रभाव नहीं रहता। किसी किसी प्रांत में ये कर्मचारी समितियों का हिसाब रखते हैं, तथा वार्षिक सभा का आयोजन भी करते है। जहाँ नई समितियो की स्थापना करने के लिये सहकारी विभाग विशेष कर्मचारी नियुक्त नहीं करता, वहाँ ये कर्मचारी नवीन समितियों की स्थापना भी करते हैं। इसके अतिरिक्त ये लोग सहकारिता संबंधी प्रचार कार्य भी करते हैं। किन्तु अब इनमें से कुछ कार्य प्रांतीय इंस्टिट्यूट करने लगी है। कुछ प्रान्तो में समितियों की देख भाल का कार्य सुपरवाइज़िङ्ग यूनियन को दिया गया है।

सेन्ट्रल बैंकों के आय-व्यय की जांच सरकार द्वारा नियुक्त आय-व्यय-परीक्षकों के द्वारा होती है। ये परीक्षक वसूल न हुए रुपये के विषय मे भी जाँच करते हैं तथा सेन्ट्रल बैंकों की आर्थिक स्थिति को भी देखते है। रजिस्ट्रार कुछ प्रश्न निश्चित करता है, जिनका उत्तर तथा आय-व्यय-परीक्षक की रिपोर्ट रजिस्ट्रार के पास जाती है।

सेन्ट्रल बैंक का निरीक्षण रजिस्ट्रार तथा सहकारी विभाग के कर्मचारी करते हैं। जहाँ प्रांतीय बैंक हैं, वहां प्रांतीय बैंक के मेनेजर तथा डायरेक्टर भी निरीक्षण करते हैं। किन्तु यह सर्व-मान्य बात है कि सेन्ट्रल बैंकों का निरीक्षण उचित रूप से नही होता, क्योकि रजिस्ट्रार तथा उनके कर्मचारी कुछ ही बैंकों का निरीक्षण कर पाते हैं। प्रत्येक बैंक वार्षिक बैलेंस शीट (लेनी-देनी का लेखा) तैयार करके उसको आय-व्यय-परीक्षक की रिपोर्ट के सहित रजिस्ट्रार तथा हिस्सेदारों के पास भेजता है। बैलेंस शीट के अतिरिक्त, प्रत्येक बैंक को लाभ और हानि का

ब्योरा, तथा आमदनी और खर्च का ब्योरा भी सरकार के पास भेजना पड़ता है। सेन्ट्रल बैंक रजिस्ट्रार को तिमाही रिपोर्ट भेजते हैं, जिसमें उनकी आर्थिक स्थिति का ब्योरा रहता है। प्रायः सेन्ट्रल बैंक अपनी शाखाएं नहीं खोलते. किन्तु उन सेन्ट्रल बैंकों को, जिनका क्षेत्र बहुत बड़ा है, जिनसे सम्बन्धित समितियों की संख्या अधिक है, शाखाएं खोलने की आज्ञा दे दी गई है।

ब्रिटिश भारत और देशी राज्यों में सब मिलाकर छः सौ सेन्ट्रल बैंक हैं—पंजाब १२०, बंगाल ११७, संयुक्त प्रान्त ७०, बिहार-उड़ीसा ६८, मध्यप्रान्त ३५, मदरास ३०, आसाम २०, बम्बई ११; शेष देशी राज्यों में हैं। सब सेन्ट्रल बैंकों के लगभग ८०,००० व्यक्ति और १,४०,००० समितियां सदस्य हैं। समस्त कार्यशील पूंजी २६ करोड़ रुपये से अधिक है, जिसमें हिस्सा-पूंजी ६ प्रतिशत, रक्षित कोष १४ प्रतिशत, डिपाज़िट ५६ प्रति शत, प्रान्तीय बैंक से लिया हुआ ऋण १४ प्रति शत तथा सरकार से लिया हुआ ऋण डेढ़ प्रति शत है। ऊपर के आंकड़ों को देखने से ज्ञात होता है कि सेन्ट्रल बैंकों के पास २३ प्रति शत के लगभग उनकी निज की पूंजी है। परन्तु रक्षित कोष इनका भी ठीक स्थिति को नहीं बतलाता; क्योंकि बहुत सी साख समितियां, जो इन बैंकों से रुपया उधार लेती हैं, वे अपना ऋण अदा नहीं करेंगी और यह हानि बैंकों को उठानी पड़ेगी।

मदरास, बम्बई, मध्यप्रान्त, बरार के सेन्ट्रल बैंकों का क्षेत्र विस्तृत है। अधिकतर एक ज़िले में एक बैंक है। परन्तु बंगाल, बिहार उड़ीसा और पंजाब में एक बहुत छोटे क्षेत्र (ताल्लुका) मे एक बैंक होता है। संयुक्त प्रान्त के कुछ ज़िलों में तो प्रत्येक तहसील में एक बैंक है और कुछ में केवल एक बैंक ही काय

करता है।

आंकड़ों के देखने से ज्ञात होता है कि सेन्ट्रल बैंक उधार पूंजी (डिपाज़िट और क़र्ज़ की रक़म) का ६० प्रति शत समितियों को उधार दे देते हैं। इस से यह सिद्ध होता है कि सेन्ट्रल बैंक अपेक्षाकृत कम नक़दी रखते हैं; यह व्यापारिक दृष्टि से ठीक नहीं है। यद्यपि वसूल न होने वाले ऋण के आंकड़े प्राप्त नहीं है परन्तु यह निश्चित है कि सेन्ट्रल बैंकों का बहुत सा रुपया मारा जावेगा, क्योंकि साख समितियों की स्थिति ठीक नहीं है।

मोटे तौर पर मदरास, बम्बई और पंजाब के सेन्ट्रल बैंकों की आर्थिक स्थिति अच्छी है। बिहार, बंगाल उड़ीसा, मध्यप्रान्त और बरार के सेन्ट्रल बैंकों की स्थिति अत्यन्त चिन्ताजनक हो गई थी किन्तु उनका जीर्णोद्धार करने का प्रयत्न हो रहा है। इन प्रान्तों मे बहुत से बैंको को तो अपना कारोबार इस लिए बंद कर देना पड़ा कि वे डिपाज़िट करने वालों को उनका रुपया देने में असमर्थ थे। उत्तरीय उड़ीसा के सेन्ट्रल बैंकों ने अपना प्रबंध रजिस्ट्रार के हाथ में ६ वर्षों के लिए सौप दिया। इन प्रांतो मे सेन्ट्रल बैंकों की असफलता के मुख्य कारण ये है:—समितियो को अंधाधुन्ध ऋण देना, दोष-पूर्ण निरीक्षण, बैंकिंग सिद्धान्तों की अवहेलना, और प्रारम्भिक समितियों का दोष-पूर्ण संगठन। अन्य प्रान्तों में सेंट्रल बैंकों की स्थिति साधारण है।

—०—

आठवाँ परिच्छेद

प्रान्तीय सहकारी बैंक या सर्वोपरि बैंक

—०—

देश में सहकारिता अन्दोलन के क्रमशः फैलने पर यह अनुभव होने लगा कि यद्यपि सेंट्रल बैंक सहकारी समितियों का निरीक्षण तथा उनकी देख भाल करने मे रजिस्ट्रार का हाथ बँटाते है, किन्तु आन्दोलन में जितनी पूँजी की आवश्यकता होती है, उसका उचित प्रबन्ध नहीं कर सकते। इसके अतिरिक्त सेन्ट्रल बैंकों का नियन्त्रण तथा उनके द्वारा साख समितियों की आवश्यक पूँजी का उचित प्रबन्ध करने के लिये भी प्रान्तीय बैंकों की आवश्यकता प्रतीत हुई। मैकलेगन कमेटी ने, जो १९१५ में सहकारिता आन्दोलन की जाँच के लिए बैठाई गई थी, प्रत्येक प्रान्त में प्रान्तीय बैंक स्थापित करने की आवश्यकता बतलाई। वास्तव में सेन्ट्रल बैंकों का आपस मे सम्बन्ध स्थापित करने के लिये ऐसी संस्था की अत्यन्त आवश्यकता थी। प्रान्तीय बैंकों से पूर्व यह कार्य रजिस्ट्रार करता था। यदि किसी सेन्ट्रल बैंक को पूँजी की अधिक आवश्यकता होती तो रजिस्ट्रार सूचना पाने पर प्रान्त के प्रत्येक सेन्ट्रल बैंक को गश्ती चिट्ठी लिख देता था। पर इससे रजिष्ट्रार उद्देश्य सिद्ध नहीं कर पाता था और साथ ही उसका बहुत सा समय इस कार्य में लग जाता था। कुछ सेंट्रल बैंक ऐसे थे, जो अपनी आवश्यकता से अधिक पूँजी आकर्षित कर लेते थे, और कुछ ऐसे भी थे

जिनको यथेष्ट पूँजी नहीं मिलती थी; इसलिए ऐसे प्रान्तीय बैंकों की नितान्त आवश्यकता प्रतीत हुई, जो पहले प्रकार के बैंकों की अतिरिक्त पूँजी को जमा करें और दूसरे प्रकार के बैंको को दे दें। इसके अतिरिक्त द्रव्य बाज़ार ('मनी-मार्केट') तथा सहकारिता आन्दोलन के बीच मे सम्बन्ध स्थापित करने के लिये भी प्रान्तीय बैंकों की आवश्यकता प्रतीत हुई।

भारतवर्ष में इस समय निम्नलिखित प्रान्तीय सहकारी बैंक कार्य कर रहे हैं:—मदरास, बम्बई,सिंध, पंजाब, बंगाल, बिहार, मध्यप्रान्त और बरार, तथा आसाम के। ब्रिटिश भारत में केवल संयुक्तप्रान्त ही एक ऐसा बड़ा प्रान्त है, जिसमें प्रान्तीय सहकारी बैंक अभी तक स्थापित नहीं हो सका। देशी राज्यों में हैदराबाद और मैसूर के सर्वोपरि बैंक प्रान्तीय सहकारी बैंकों की श्रेणी में आते हैं। यों इन्दौर, ट्रांवकोर, गवालियर, बड़ौदा, कश्मीर और भोपाल में भी कोई बड़ा सेन्ट्रल बैंक इस कार्य के लिए चुन लिया गया है, वह सर्वोपरि बैंक का काम करता है।

सदस्यता — इन बैंकों का संगठन एकसा नहीं है और न इन सब बैंकों में सदस्यता ही एक सी है। पंजाब और बंगाल को को छोड़कर और सब प्रान्तों में व्यक्ति भी इन बैंकों के सदस्य होते हैं। बंगाल और पंजाब में व्यक्ति इन बैंको के हिस्सेदार नहीं हो सकते। वहाँ सहकारी साख समितियाँ और सहकारी सेन्ट्रल बैंक ही प्रान्तीय बैंक के सदस्य हो सकते हैं। व्यक्तियों के अतिरिक्त. बम्बई, पंजाब, बिहार, मध्यप्रान्त-बरार,और आसाम में प्रारम्भिक सहकारी समितियाँ और सहकारी सेन्ट्रल बैंक के सदस्य होते हैं। मदरास प्रान्तीय सहकारी बैंक के सदस्य केवल सेन्ट्रल बैंक ही हो सकते हैं, प्रारम्भिक साख समितियाँ नहीं हो

सकतीं। बंगाल और बिहारमें यद्यपि कुछ प्रारम्भिक सहकारी साख समितियाँ सदस्य है परन्तु व्यवहार मे वहाँ भी सेन्ट्रल बैंक ही उनके सदस्य है। सिन्ध मे कोई सेन्ट्रल बैङ्क नहीं है, इसलिये वहाँ के प्रान्तीय बैङ्क के सदस्य केवल व्यक्ति तथा प्रारम्भिक सहकारी साख समितियाँ ही हैं। इस मिश्रित सदस्यता के के कारण साधारण सभाओ की बैठक तथा उसमें वोट किस प्रकार दी जाय, इससे बड़ी उलझन होती है। यही कारण है कि मदरास सहकारिता कमेटी (१९४०) ने व्यक्तियों को सदस्य न रखने की सिफ़ारिश की है।

सचालन—प्रान्तीय बैङ्कों को भली भाँति चलाने के लिये व्यापारिक बुद्धि तथा बैंकिंग की योग्यता चाहिये। इसलिये बैंक के डायरेक्टरों या संचालको में इन गुणों वाले व्यक्ति भी होने चाहिएँ। किन्तु संचालक-बोर्ड में व्यापारियों और व्यवसायियों को प्रधानता देने से सम्भव है कि सहकारिता के हितों की रक्षा न हो। इसलिये डायरेक्टरों में प्रधानता तो सहकारितावादियों को ही रहनी चाहिए, किन्तु कुछ ऐसे व्यापारी तथा बैंकिंग की योग्यता रखने वालों को भी ले लेना चाहिये, जिन्हे सहकारिता आन्दोलन से सहानुभूति हो। यह तो हुई सिद्धान्त की बात, अब देखना यह है कि हमारे प्रान्तीय बैंको का संचालन कैसे होता है।

भिन्न भिन्न बैंको के संचालक-बोर्ड का निर्माण उनके अपने अपने उपनियमों के द्वारा होता है। दो या तीन प्रान्तीय बैंकों के अतिरिक्त और सब में हिस्सेदारो के बाहर से भी डायरेक्टरों को नियुक्त करने की परिपाटी प्रचलित है। पंजाब में सहकारिता विभाग का रजिस्ट्रार तथा सहकारिता विभाग का आर्थिक सलाहकार पदेन (अपने पद के कारण) डायरेक्टर होते हैं। बंगाल में रजिस्ट्रार बोर्ड में तीन व्यक्तियों

को मनोनीत करता है। मध्यप्रान्त और बरार के प्रान्तीय बैंक के बोर्ड मे रजिस्ट्रार तथा प्रान्तीय सरकार का फाइनैंस सेक्रेटरी पदेन डायरेक्टर होते है। बिहार मे रजिस्ट्रार डायरेक्टर होता है। वहाँ सहकारिता आन्दोलन के पुनः निर्माण मे बैंक प्रान्तीय सरकार के नियंत्रण मे दे दिया गया है। प्रान्तीय सरकार जिसे प्रान्तीय सहकारी बैंक का सलाहकार नियुक्त करेगी, वही उसका (उस समय तक के लिये जब तक कि बैंक सरकार के नियंत्रण मे रहेगा) मैनेजिंग डायरेक्टर होगा। सिन्ध प्रान्तीय बैंक मे भी मनोनीत डायरेक्टर होते है। मदरास, बम्बई और सम्भवतः आसाम में मनोनीत डायरेक्टर नही होते। मदरास मे रजिस्ट्रार को पदेन प्रान्तीय बैंक का डायरेक्टर बनाने का प्रयत्न हो रहा है।

कार्यशील पूँजी— प्रान्तीय बैंको की कार्यशील पूँजी लगभग १३ करोड़ रुपये है, जिसमें लगभग १६ प्रतिशत उनकी निज की, और शेष उधार ली हुई है। उधार ली हुई पूँजी में सहकारी समितियो और सेन्ट्रल बैंकों की डिपाज़िट तथा व्यक्तियों की डिपाज़िट मुख्य हैं। प्रान्तीय बैंक चालू, सेविंग्स और मुद्दती तीनों तरह की डिपाजिट लेते हैं। अधिकाँश डिपाज़िट एक से तीन वर्ष के लिये ली जाती है। इससे अधिक समय के लिए डिपाज़िट बहुत कम ली जाती है। जो बैंक इससे अधिक समय के लिये डिपाज़िट लेते थे, उन्हें अब कठिनाई का अनुभव हो रहा है, क्योकि पिछले वर्षों में सूद की दर तेजी से घटती गई है। प्रान्तीय बैंकों की साख अच्छी है, वे सहकारिता आन्दोलन और बाहर से भी डिपाज़िट आकर्षित करते हैं। जहाँ तक सूद देने का प्रश्न है, वे अन्य व्यापारिक बैंकों की

अपेक्षा बहुत अधिक सूद नहीं देते। मदरास प्रान्तीय बैंक चालू खाते पर पौन प्रतिशत एक वर्ष की मुद्दत जमा पर ढाई प्रतिशत, तथा दो वर्ष की जमा पर पौने तीन प्रतिशत सूद देता है. उसको यथेष्ट डिपाज़िट मिल जाती है। पंजाब प्रान्तीय बैंक व्यक्तियों को चालू खाते पर कोई सूद नहीं देता। द्रव्य बाजार के अनुसार यह बैंक भी अपनी सूद की दर निर्धारित करते हैं।

पूँजी लगाना—रिजर्व बैंक ने प्रान्तीय सहकारी बैंकों मे यह दोष बताया है कि वे नक़दी रुपया और शीघ्र भज सकने वाली लेनी यथेष्ट नहीं रखते और आवश्यकता से अधिक रुपया बाहर लगा देते हैं। उसने प्रान्तीय बैंकों को राय दी थी कि वे अपनी देनी का ४० प्रतिशत नकदी अन्य बैंकों में जमा के रूप मे रखें। भिन्न भिन्न प्रान्तीय सरकारों ने भी कुछ नियम बना दिये हैं, जिनके अनुसार प्रान्तीय बैंकों को अपनी देनी के एक निश्चित अनुपात में नक़दी तथा शीघ्र भंज सकने वाली लेनी रखनी पड़ती है। प्रान्तीय बैंक व्यवहार में २० से ५० प्रतिशत कार्यशील पूँजी सरकारी सिक्यूरिटी में लगाते हैं. कुछ रुपया अन्य व्यापारिक बैंकों तथा प्रान्तीय बैंकों में जमा करते हैं, कुछ नक़दी अपने पास रखते है और शेष अपने सदस्यों को उधार देते हैं।

जहाँ तक रुपया लगाने का प्रश्न है, रिजर्व बैंक का दोषारोपण उचित नहीं मालूम होता। रिजर्व बैंक ने प्रान्तीय बैंकों को यह सलाह दी थी कि उन्हें अपने सदस्यों को ६ महीने से एक वर्ष तक के लिए ही ऋण देना चाहिए, बहुत लम्बे समय के लिए न देना चाहिए। यद्यपि रिजर्व बैंक की इस सलाह को प्रान्तीय सहकारी बैंक पूरी तरह से नहीं मान सके फिर भी वे अब प्रायः उत्पादन और खेती की पैदावार के क्रय-विक्रय के

लिये ही, थोड़े समय के लिए, ऋण देते हैं। बङ्गाल प्रान्तीय बैंक तो फसलों को उत्पन्न करने के लिए केवल कम समय के ही ऋण देने लगा है। परन्तु किसान को साख की जितनी आवश्यकता कम समय के लिये है, उतनी ही मध्यम समय यानी दो या तीन वर्षों के लिये भी है। अतएव प्रांतीय सहकारी बैंकों को इन दोनों प्रकार की साखों को देना होता है। यदि प्रान्तीय सहकारी बैङ्क अपनी निजी पूँजी का ध्यान रखने के साथ डिपाज़िटों का समय तथा ऋण के समय का ध्यान रखें तो वे कम समय और मध्यम समय के लिए साख का प्रबन्ध बिना किसी कठिनाई के कर सकते हैं। हाँ, लम्बे समय १० से २० वर्ष तक के लिये वे साख नहीं दे सकते, उनके लिये भूमि-बन्धक बैंक ही उपयुक्त संस्था है।

जहाँ तक सदस्यों को ऋण देने का प्रश्न है उसमें भी सब प्रान्तीय बैंक एकसा व्यवहार नहीं करते। बम्बई प्रान्तीय बैंक मुख्यतः प्रारम्भिक सहकारी साख समितियों को, अपनी शाखाओं के द्वारा, ऋण देता है; केवल सेन्ट्रल बैंकों से ऋण लेता है। जहाँ तक सेन्ट्रल बैंकों का प्रश्न है, प्रान्तीय बैंक सन्तुलन केन्द्र है, और उन्हें समय पड़ने पर ओवरड्राफ्ट (जमा से अधिक निकालने की स्वीकृति) इत्यादि देता है। अब कुछ समय से प्रान्तीय बैंक 'बी' श्रेणी के सदस्यों को भी ऋण देने लगा है। यह ऋण लेने वाले उन साख समितियों के सदस्यों में से होते हैं, जो प्रान्तीय बैंक से सम्बन्धित हैं, और वे अपनी पैदावार की जमानत पर ऋण लेते हैं। बम्बई प्रान्तीय बैंक औद्योगिक सहकारी साख समितियों को भी उनके तैयार माल या कच्चे माल की जमानत पर ऋण देता है। मदरास बैंक केवल सेन्ट्रल बैंकों से ही कारोबार करता है, वह प्रारम्भिक

समितियों से कोई मतलब नहीं रखता। लेकिन ऋण देने के बारे में वहां भी एक नियम बनाकर सदस्यों तथा गैर-सदस्यों को भी सरकारी सिक्यूरिटी, रिजर्व बैङ्क और इम्पीरियल बैंक के हिस्सों तथा मदरास प्रान्तीय सहकारी बैङ्क मे उनकी डिपाजिट की ज़मानत पर ऋण देने की सुविधा कर दी गई है। पंजाब प्रांन्तीय बैङ्क व्यक्तियों को केवल बैङ्क में उनकी डिपाज़िटों की जमानत पर ही ऋण देता है। सिंध में कोई सेन्ट्रल बैङ्क न होने से, प्रांतीय बैङ्क सीधे सहकारी साख समितियों को ही ऋण देता है। यद्यपि पञ्जाब, बिहार, मध्यप्रान्त और बरार के प्रान्तीय बैङ्कों के सदस्य सेन्ट्रल बैङ्क और प्रारम्भिक समितियां दोनों ही हैं, वे ऋण सेन्ट्रल बैङ्कों को ही देते है।

प्रान्तीय बैंकों की आर्थिक मज़बूती उनके दिये हुए ऋण की जमानत पर निर्भर है, और अन्त में उस जमानत की मजबूती इस बात पर निर्भर है कि जो रुपया किसान को समितियों द्वारा दिया गया है, वह वसूल किया जा सकता है या नहीं। प्रारम्भिक साख सहकारी समितियों की अपने दिये रुपये को वसूल करने की योग्यता ऋण लेने वाले सदस्य की ऋण अदा करने की योग्यता तथा अन्य बहुत से कारणों पर निर्भर है। इनमे से कुछ तो निश्चित हैं, कुछ अनिश्चित; कुछ का नियंत्रण हो सकता है और कुछ का नहीं हो सकता; कुछ प्रकृति पर निर्भर हैं तो कुछ मनुष्य की मनमानी पर। इन विविध कारणों से हमारे अधिकांश ग्रामीणो का कारबार घाटे का है। जितना व्यय होता है, उससे कम आय होती है। सहकारी समितियों के कुछ सदस्य तो ऐसे हैं, जिनका काम बिना ऋण लिए चल ही नहीं सकता। बहुतों की निर्धनता ही ऋणी होने का प्रधान कारण है। बहुत से ईमानदार सदस्य भी अपना

ऋण नहीं चुका पाते, क्योंकि वे नितान्त असमर्थ हैं। यही सहकारी साख आन्दोलन की निर्बलता है।

प्रान्तीय बैङ्कों की लगभग वही दशा है, जो सहकारी साख समितियों की है; ऋण बहुत समय हो गया चुकाये नहीं गए ऐसे कर्ज़ की रकम बढ़ती जा रही है जो वसूल नहीं हो सकेंगे, और जो जमानत कर्ज़े के लिए ली गई थी प्रान्तीय बैङ्कों को उसे जब्त करना पड़ रहा है। कुछ कम ज्यादा यह स्थिति सब जगह मौजूद है। बरार में तो प्रांतीय बैङ्क के पास कर्ज़ों की वसूली के एवज़ में भूमि आगई है, जिसके खरीदार नहीं मिलते। बरार बङ्गाल, और बिहार में ग्राम्य सहकारी समितियों की लेनी (जमानत) को जब्त करने का आन्दोलन पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ा है। वहां आन्दोलन के पुनः निर्माण का कार्य चल रहा है। आसाम में स्थिति बहुत खराब है; वहां के रजिस्ट्रार ने भी आन्दोलन के पुनः निर्माण की आवश्यकता बतलाई है। युद्ध से उत्पन्न हुई परिस्थिति में खेती की पैदावार का मूल्य बेहद बढ़ गया है और किसान पर कर्ज़ों का बोझा कुछ हल्का हो गया है। ऐसी दशा में स्थिति के संभल जाने की पूर्ण आशा है।

इस सम्बन्ध में एक बात महत्त्वपूर्ण है, जिसको हमें भूल न जाना चाहिए। जिन प्रान्तों में, विशेषकर बम्बई और पञ्जाब में, प्रान्तीय बैङ्कों ने लम्बे समय के लिए ऋण देने का प्रबन्ध किया और इस अभिप्राय से भूमि बन्धक बैङ्कों को ऋण देने के लिए डिबेञ्चर* बेचे, वे कठिनाई में पड़ गए। पंजाब और

* डिबेञ्चर वह ऋण-पत्र है, जो बैङ्क या कम्पनी लम्बे समय के लिए साधारण जनता से ऋण लेकर उन्हें दे देती है। ऋण पर निश्चित दर से सूद दिया जाता है।

आसाम में प्रान्तीय बैङ्क ही प्रारम्भिक भूमि बन्धक बैङ्कों को ऋण देते थे किन्तु अब वहां भूमि बन्धक बैङ्क काम नहीं करते. इस लिए प्रान्तीय बैङ्कों को लम्बे समय के लिए ऋण देने का प्रश्न ही नहीं उठता। मदरास में एक सेन्ट्रल भूमि बन्धक बैङ्क है. जो प्रान्त भर के सभी भूमि बन्धक बैंकों को ऋण देता है। अतएव वहां प्रान्तीय सहकारी बैंक को इसके लिए एक पृथक विभाग रखने की आवश्यकता नहीं पड़ी। मध्यप्रांत और बरार का प्रान्तीय सहकारी बैंक भूमि बन्धक बैंकों को भी ऋण देता है. इस काम के लिए उसने एक अलग विभाग इस कार्य के लिए स्थापित कर दिया है। बङ्गाल में प्रान्तीय सहकारी बैंक सरकार की गारंटी पर ही भूमि बन्धक बैंकों को ऋण देना चाहता है।

प्रान्तीय बैङ्क और सेन्ट्रल बैङ्क— प्रान्तीय सहकारी बैङ्कों तथा सेन्ट्रल बैंकों का सम्बन्ध भिन्न भिन्न प्रान्तों में जुदा जुदा है। वे सेन्ट्रल बैंकों पर कोई नियत्रण नहीं रखते। सेन्ट्रल बैंक अपना रुपया प्राय. प्रान्तीय बैंकों में अथवा बड़े व्यापारिक बैंकों में जमा कर देते है। मदरास प्रांत में सेन्ट्रल बैंक अपना सारा रक्षित कोष प्रान्तीय सहकारी बैंक में रखते हैं। बम्बई में प्रान्तीय बैङ्क सहकारी संस्थाओं की मुद्दती जमा पर व्यक्तियों से अधिक सूद देता हैं। वहां प्रान्तीय बैंक के नेतृत्व में बम्बइ सहकारी बैंक एसोसियेशन स्थापित की गई है. जो सेन्ट्रल बैंकों को सम्बद्ध करती है। मदरास में प्रान्तीय बैङ्क सेन्ट्रल बैंकों का वार्षिक सम्मेलन करता है, जिसमे उन बैंकों की नीति और उनके सम्बन्ध के प्रश्नों पर विचार होता है। मदरास प्रान्तीय बैंक ने सम्बन्धित सेन्ट्रल बैंको का अपने डायरेक्टरो द्वारा, निरीक्षण कराने की परिपाटी पहले ही स्थापित कर दी थी, किन्तु अब मदरास सहकारिता क़ानून के अनुसार उसके

कर्मचारी उन बैंकों का निरीक्षण कर सकेंगे। मध्यप्रान्त में भी प्रान्तीय बैंक अपने इंस्पेक्टर द्वारा सम्बन्धित सेन्ट्रल बैंकों का निरीक्षण कराता है।

उन सभी प्रान्तों में जहाँ प्रान्तीय बैंक स्थापित हैं, सेन्ट्रल बैङ्क एक दूसरे को सीधे कर्ज़ नहीं दे सकते। वास्तव में प्रान्तीय बैंको का कार्य तो यह है कि वे सेन्ट्रल बैंको के संतुलन केन्द्र का काम करें, उन्हें बैङ्किङ्ग द्रव्य बाजार, ऋण देने, और सूद की दर निर्धारित करने के सम्बन्ध में परामर्श दें। यद्यपि प्रान्तीय बैंकों का सेन्ट्रल बैंको पर नियन्त्रण वाँच्छनीय नहीं है, प्रान्तीय बैंकों द्वारा उनका निरीक्षण आवश्यक है।

प्रान्तीय बैंक और सहकारिता विभाग— पिछले दिनों इस प्रश्न को लेकर बहुत कुछ खींचातानी रही कि सहकारिता विभाग के रजिष्ट्रार का और प्रान्तीय बैंकों का क्या सम्बन्ध हो। कहीं कहीं रजिस्ट्रार द्वारा बहुत नियन्त्रण और हस्तक्षेप होता है। इससे बड़ी उलझन पैदा हो जाती है। बङ्गाल, बिहार, मध्यप्रान्त और बरार में, सेन्ट्रल बैंकों में रुपया जमा करने वालों का अधिकांश रुपया मारा गया क्योंकि प्रारम्भिक साख समितियो से ऋण वसूल नहीं किया जा सका, वहाँ यह प्रश्न उठाया गया कि यह रुपया सरकार दे, क्योंकि समितियों को वह रुपया सहकारिता विभाग की सिफारिश पर दिया गया था, जो सरकार का एजंट है। वर्मा में प्रान्तीय बैंक जब (१९२८-२९) अपने डिपाज़िटरों का रुपया अदा नहीं कर सका तो वहाँ की सरकार को ३० लाख रुपया देना पड़ा। इसी प्रकार की स्थिति बङ्गाल में उत्पन्न हो गई, जब कि सहकारिता विभाग के रजिस्ट्रार ने प्रान्तीय बैंक को जूट विक्रय समितियों को ऋण देने की सिफारिश की और वे समितियाँ रुपया अदा न कर सकीं।

फलतः सरकार को २४ लाख रुपये, प्रान्तीय बैंक की क्षति पूर्ति के, देने पड़े। परन्तु बङ्गाल, बिहार तथा मध्यप्रान्त और बरार में सेन्ट्रल बैंकों को जो भीषण हानि उठानी पड़ी, उसे देना सरकार ने मंजूर नहीं किया। प्रान्तीय बैंक के कार्य में रजिष्ट्रार या सहकारिता विभाग के अधिक हस्तक्षेप करने से केवल यही उलझन नहीं उत्पन्न होती, वरन रजिस्ट्रारों के बदलते रहने और उनकी नीति भिन्न भिन्न होने के कारण प्रान्तीय बैंक की नीति भी बदलती रहती है। अस्तु, आवश्यकता इस बात की है कि रजिस्ट्रार और उसका विभाग केवल अपनी राय और सलाह प्रांतीय बैंकों को दे। यह भी आवश्वक है कि रजिस्ट्रार बैङ्क का डायरेक्टर न हो। प्रान्तीय बैंक ऋण देने या न देनेका निर्णय स्वय करे।

प्रान्तीय बैंक और रिजर्व बैंक— रिजर्व बैङ्क प्रान्तीय बैंकों और उनसे सम्बन्धित बैङ्कों को, सरकारी सिक्यूरिटी की ज़मानत पर, नक़द साख देता है। परन्तु जहां तक सहकारी कागज को भुनाने का प्रश्न है, प्रान्तीय बैङ्क और सेन्ट्रल बैंक जब रिजर्व बैंक की इच्छानुसार अपनी आर्थिक स्थिति तथा कारबार को बनालेंगे तभी वह उनके सहकारी कागज़ को भुनाने की सुविधा देगा। कुछ शर्तें पूरा करने पर, रिजर्व बैंक प्रान्तीय बैंकों को अपना रुपया एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त में भेजने की सुविधा प्रदान करेगा। इस कार्य के लिए उसने सेन्ट्रल बैंकों को प्रांतीय बैंकों की शाखा मान लिया है। कुछ प्रान्तीय बैंकों ने रिजर्व बैंक की योजना को स्वीकार कर लिया है और वे उसमें सम्मिलित हो गये हैं। रिजर्व बैंक ने प्रान्तीय बैंकों को अपना बैलैंसशीट (लेनी देनी का लेखा) एक निश्चित रूप में तैयार करने को कहा है और कुछ बैंक वैसा करने भी लगे हैं। जैसे जैसे

प्रान्तीय बैङ्क अपने कारबार में रिजर्व बैंक की इच्छानुसार सुधार करते जायेंगे, वैसे ही वैसे उनका आपसी सम्बन्ध घनिष्ट होता जावेगा। यद्यपि रिजर्व बैंक की स्थापना से सहकारी बैंकों को अभी तक वे सब सुविधाएं नहीं मिली हैं, जो वे चाहते थे, परन्तु अब यह प्रश्न भारतवर्षीय सहकारी या सर्वोपरि बैंक की आवश्यकता नहीं रही है।

आडिट— प्रान्तीय बैङ्कों का हिसाब सहकारिता विभाग को जांचना चाहिए; क्योंकि सहकारिता एक्ट के अनुसार रजिस्ट्रार का यह मुख्य कार्य है। परन्तु बहुत से प्रान्तों के रजिस्ट्रारों ने यह हिसाब पेशेवर आडिटरों द्वारा जंचवाने की आज्ञा दे दी है। किसी किसी प्रान्त में पेशेवर आडिटरों द्वारा आडिट हो जाने पर प्रान्त का सहकारिता विभाग फिर आडिट करवाता है। आय-व्यय परीक्षा के अतिरिक्त इन बैंकों को अपनी आर्थिक स्थिति का तिमाही लेखा रजिस्ट्रार के द्वारा प्रान्तीय सरकार को भेजना पड़ता है। प्रान्तीय सरकार उस पर अपना मत प्रकट करती है।

अखिल भारतीय प्रान्तीय सहकारी बैंक एशोशियेसन- इस सभा को सन १९२६ में जन्म दिया गया। इसका मुख्य कार्य यह है कि यह प्रत्येक सदस्य-बैंक की कार्यशील पूंजी के बाहुल्य तथा कमी के आंकड़ों को जमा करे, और सब सदस्यों को सूचित कर दे, जिससे किस बैंक को पूंजी की आवश्यकता है और कौन बैंक पूंजी दे सकता है, यह सब को ज्ञात हो जाये। सदस्य-बैंकों के आर्थिक प्रश्नों पर राय देना तथा उनकी सहायता करना, व प्रान्तीय बैंकों की समय समय पर कानफ्रेंस बुलाना, और उसमें प्रान्तीय बैंकों तथा साख आन्दोलन

के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण प्रश्नों पर विचार करना भी इसी संस्था के कार्य है। जब कभी प्रान्तीय बैङ्कों का सरकार या रिजर्व बैंक का ध्यान किसी विशेष बात की ओर आकर्षित करना होता है तो यह संस्था उनसे लिखा पढ़ी करती है।

प्रान्तीय बैंक सहकारी साख आन्दोलन के सञ्चालन केन्द्र होने के अतिरिक्त वे सभी कार्य करते हैं, जो व्यापारिक बैंक करते हैं, जैसे हुँडी पुर्जे का भुनाना इत्यादि। साधारणतः प्रान्तीय बैंकों की शाखाएँ नहीं होतीं, किन्तु बम्बई प्रान्तीय बैंक ने, उन क्षेत्रों में जहां सेन्ट्रल बैंक नहीं है, अपनी शाखाएँ खोल दी है, जो उस क्षेत्र की प्रारम्भिक साख समितियों को ऋण देती है।

—०—

नवाँ परिच्छेद

सहकारी भूमि-बन्धक बैङ्क

—०—

पहले बताया जा चुका है कि किसान को साधारण खेती बारी के कारबार को चलाने के लिये थोड़े समय और मध्यम समय के लिये ऋण की आवश्यकता पड़ती है इसके अन्तर्गत वह सभी ऋण आ जाता है, जो पशु, बीज, खाद, हल तथा अन्य यन्त्र खरीदने के लिये, लगान देने के लिये, तथा अपने कुटुम्ब के पालन के लिये लिया जाता है। इसके अतिरिक्त, किसान को पुराने ऋण चुकाने के लिये, भूमि की चकबन्दी करने और उसको उपजाऊ बनाने के लिये, कूआं खोदने के लिये तथा कीमती यन्त्र खरीदने के लिये अधिक समय के वास्ते भी ऋण चाहिये।

ग्राम्य सहकारी साख समितियां किसानोंको थोड़े समय और मध्यम समयके लिये ऋण देती है। आरम्भ में, जब सहकारिता आन्दोलन का श्रीगणेश हुआ था, लोगों की यह धारणा थी कि साख समितियां अधिक समय के लिये भी ऋण दे सकेंगी। यह केवल धारणा ही नहीं थी, साख समितियो ने अधिक समय के लिये ऋण दिया भी। किन्तु न तो साख समितियो के पास इतनी पूँजी थी कि वे सदस्यो के पुराने ऋण चुका सकें, और न ऐसा करना उनके हित में ठीक ही था, इस कारण साख समितियो ने अधिक समय के लिये ऋण देना बन्द कर दिया। अधिकतर प्रान्तीय बैंकिंग इनक्वायरी कमेटियों की यह सम्मति है कि स्थिर सम्पत्ति को बन्धक रख कर अधिक समय के लिये ऋण देना ग्रामीण साख समितियों के लिये ठीक नही है। एक तो, साख समितियों को स्थिर सम्पत्ति की जमानत पर ऋण देने से व्यक्तिगत साख का महत्व चले जाने की सम्भावना है, जो सहकारिता के सिद्धांतो के विरुद्ध है। दूसरे, सेन्ट्रल बैंक तथा ग्रामीण साख समितियों मे डिपाजिट थोड़े समय के लिये होती हैं; और थोड़े समय के लिये जमा किये हुए रुपये से अधिक समय के लिये ऋण देना जोखिम से खाली नहीं है। यह बैंकिंग के सिद्धांत के भी विरुद्ध है। तीसरे, अधिक समय के लिये ऋण देने मे सम्पत्ति की जमानत लेते समय उसके मूल्य को आंकने तथा उसके स्वामित्व के विषय मे जांच करने के लिये अनुभवी कार्यकर्ताओ और कर्मचारियो की आवश्यकता होगी, जो ग्रामीण समितियों के पास नहीं हैं। इसके अतिरिक्त एक कठिनाई यह भी है कि भूमि बन्धक रखने पर उसके सम्बन्ध के कागज ग्रामीण समितियो के पास रखने में जोखिम है; और अन्तिम सब से बड़ी कठिनाई यह है कि सदस्यों के ऋण न

चुकाने पर समिति की पूँजी फंस जावेगी और समिति को सदस्य के विरुद्ध डिगरी करा कर उस भूमि को नीलाम करवाना होगा। यह सब कानूनी काम समिति सफलता पूर्वक नहीं कर सकती।

प्रान्तीय बैंकिंग इनक्वायरी कमेटियों की रिपोर्टों से स्पष्ट है कि प्रान्तीय सहकारी बैंक, सेन्ट्रल बैंक, तथा साख समितियां किसान के पुराने ऋण चुकाने में, या भूमि बन्धक रख कर दीर्घ काल के लिए ऋण देने में, असमर्थ हैं। सेंट्रल बैंकिङ्ग इनक्वायरी कमेटी के सामने गवाही देते हुए प्रान्तीय बैंकों के प्रतिनिधियों ने भी यही सम्मति दी थी। सेंट्रल बैंकिङ्ग इन्क्वायरी कमेटी का भी यही मत है। इधर रिजर्व बैंक ने भी इस बात पर बहुत जोर दिया कि सहकारी साख समितियाँ, सेन्ट्रल बैंक तथा प्रान्तीय बैङ्क थोड़े समय के लिए ऋण दें। इस कारण अब साख समितियां लम्बे समय के लिए ऋण बिलकुल नहीं देतीं। इसके लिए भूमि-बन्धक बैंक अधिक उपयुक्त हैं।

भूमि-बन्धक बैंक तीन प्रकार के होते हैं—(१) सहकारी, (२) गैर सहकारी, (३) अर्ध सहकारी। सहकारी भूमि-बन्धक बैंक के सदस्य ऋण लेने वाले होते हैं; बैंक की अपनी पूंजी नहीं होती। जो भूमि बन्धक रख दी जाती है, उसकी जमानत पर बन्धक बांड ('मार्टगेज बांड') बेचे जाते हैं और उनसे पूंजी प्राप्त की जाती है। यह बैंक लाभ को लक्ष्य करके कार्य नहीं करते, वरन सूद की दर घटाने का प्रयत्न करते हैं।

गैर सहकारी-भूमि बन्धक बैंक मिश्रित पूंजी के होते हैं। जिस प्रकार अन्य व्यापारिक बैंक लाभ की दृष्टि से स्थापित किये जाते हैं, वैसे ही यह बैंक भी हिस्सेदारों की सम्पत्ति होते हैं और लाभ की दृष्टि से चलाये जाते हैं। किसान इत्यादि

अपनी भूमि बन्धक रख कर उनसे ऋण लेते हैं। इस प्रकार के बैंक योरोपीय देशों में सर्वत्र स्थापित किये गये हैं, किन्तु राज्य उन पर नियन्त्रण रखता है, जिससे वे ऋण लेने वालो को तंग न करें। अर्ध सहकारी भूमि बन्धक बैंक न तो पूर्ण रूप से सहकारी होते है, और न गैर सहकारी।

भारतवर्ष में बड़े जमींदारो के लिये गैर सहकारी तथा किसानों के लिये सहकारी भूमि-बन्धक बैंक उपयुक्त होगे। किंतु यहाँ जो भी भूमि-बन्धक बैंक स्थापित किये गये हैं, वे अर्ध सहकारी हैं, कोई भी पूर्ण सहकारी नहीं कहा जा सकता। इस समय जो भी बैंक कार्य कर रहे हैं वे परिमित दायित्व वाली संस्थाएं है, उनके सदस्य अधिकतर ऋण लेने वाले ही होते हैं। किन्तु कुछ सदस्य ऐसे भी ले लिये जाते हैं, जो ऋण लेने वाले नहीं होते। इन सदस्यों को बैंक के प्रबन्ध में सहायता पहुँचाने तथा पूजी को आकर्षित करने के उद्देश्य से लिया जाता है। यह लोग प्रान्त के प्रसिद्ध व्यापारी होते हैं। क्रमशः ऐसे सदस्यों को हटा देने की नीति है, जिससे बैंक पूर्ण रूप से सहकारी संस्था बन जावे। किन्तु यह बात सब को स्वीकार करनी पड़ती है कि जिस प्रकार रैफीसन सहकारी समितियों में सदस्यों का समिति के कार्य से घनिष्ठ सम्बन्ध होता है, वैसा इन बैंकों में नहीं होता।

सन् १९२६ में रजिस्ट्रार सम्मेलन ने एक प्रस्ताव द्वारा भूमि-बन्धक बैंकों की एक योजना तैयार की थी. वह इस प्रकार है—

बैंक के उद्देश्य—(१) किसानों की भूमि तथा मकानों को छुड़ाना, (२) खेती की भूमि तथा खेती बारी के धन्धे की उन्नति करना तथा किसानों के मकानों को बनवाना, (३) पुराने ऋण को चुकाना, (४) भूमि खरीदने के लिये रुपया देना।

भूमि-बन्धक बैंक का कार्यक्षेत्र छोटा होना चाहिए, किन्तु इतना छोटा भी न हो कि उसका ठीक प्रबन्ध न हो सके। यह नियम न बनाया जावे कि ऋण केवल साख समितियों को ही दिया जावेगा; हां, यदि ऋण लेने वाला साख समिति का सदस्य हो तो उसके विषय में समिति का मत ले लिया जावे, किन्तु समिति पर उस ऋण का कोई उत्तरदायित्व न रहे।

सदस्य को उसकी सम्पत्ति के मूल्य के आधे से अधिक ऋण नहीं दिया जा सकता। प्रत्येक सदस्य को बैंक का हिस्सा ख़रीदना होगा, जिससे बैंक के पास अपनी निजी पूँजी हो जावे, जिसकी ज़मानत पर बैंक को बाहर से पूंजी मिल सके। ऋण लेने वाले के हिस्से का मूल्य, जितना ऋण वह लेना चाहता है, उसका बीसवाँ हिस्सा होना चाहिए। प्रत्येक बैंक अपनी आर्थिक स्थिति को देखते हुए एक रक़म निश्चित करले, जिससे अधिक ऋण किसी भी सदस्य को न दिया जावे। प्रान्त के सब भूमि-बन्धक बैंक अपना एक संगठन करें और एक केन्द्रीय संस्था स्थापित की जावे। केवल केन्द्रीय संस्था ही डिबेञ्चर बेचे, पृथक्-पृथक् भूमि बन्धक बैंक डिबेञ्चर न बेचें।

शाही कृषि कमीशन ने भी रजिस्ट्रार सम्मेलन के प्रस्ताव का अनुमोदन किया है और उसकी सम्मति में सहकारी भूमि-बन्धक बैङ्क अधिक उपयुक्त हैं। कृषि कमीशन के सामने यह प्रश्न उपस्थित किया गया था कि सरकार भूमि-बन्धक बैंक के डिबेञ्चरों को ख़रीदे अथवा नहीं। कमीशन का मत था कि सरकार को इन बैंकों डिबेञ्चरों पर सूद की गारंटी दे देना चाहिए, और उन को ट्रस्टी सिक्यूरिटी बना देना चाहिये। डिबेञ्चर केन्द्रीय संस्था बेचे। कुछ वर्षों तक बैंक की प्रबन्धकारिणी समिति में एक सरकारी कर्मचारी अवश्य रखा जावे।

सन् १९२८ में रजिस्ट्रार-सम्मेलन ने कृषि कमीशन की रिपोर्ट पर विचार किया। सम्मेलन ने कृषि कमीशन की सम्मति का अनुमोदन किया, केवल एक बात पर सम्मेलन ने कृषि कमीशन से मतभेद प्रकट किया था। रजिस्ट्रार सम्मेलन ने यह प्रस्ताव पास किया कि सरकार को इन बैंकों के डिबेञ्चर ख़रीद कर तथा इनको ऋण देकर सहायता देनी चाहिये।

सेन्ट्रल बैंकिङ्ग इनक्वायरी कमेटी के सामने भी भूमि-बन्धक बैंकों के सम्बन्ध मे निम्नलिखित प्रश्न उपस्थित हुए थे:—

(१) ऐसी कौन कौन सी आर्थिक आवश्यकताएँ हैं, जिनके लिये किसान को अधिक लम्बे समय के लिये ऋण देना उचित है ?

(२) अधिक से अधिक कितने समय के लिये ऋण देना चाहिये और उसके चुकाये जाने का ढङ्ग क्या होना चाहिये ?

(३) भूमि-बन्धक बैंक अपनी कार्यशील पूँजी कैसे इकट्ठी करें, क्या हिस्से ख़रीदना आवश्यक माना जावे, उस दशा में ऋण तथा हिस्सो के मूल्य का क्या अनुपात हो ? यदि डिबेञ्चर बेचकर कार्यशील पूँजी इकट्ठा करना अभीष्ट हो तो प्रत्येक भूमि बन्धक बैङ्क को यह अधिकार दिया जावे, अथवा किसी एक केन्द्रीय संस्था को; प्रत्येक भूमि बन्धक बैंक को यह अधिकार न दिया जावे तो प्रान्तीय सहकारी बैंक यह कार्य करे अथवा इसके लिये कोई पृथक् सेन्ट्रल भूमि-बन्धक बैंक स्थापित किया जावे ?

(४) क्या भूमि-बन्धक बैंक साधारण बैंकों तथा सरकारी सेन्ट्रल बैंकों की भाँति डिपाज़िट लें ? यदि लें तो उसके लिये क्या शर्तें होनी चाहिये ?

(५) जहाँ सहकारी साख समिति तथा भूमि-बन्धक बैंक

एक ही स्थान पर हों, वहां उनका क्या सम्बन्ध होना चाहिए ?

(६) क्या सरकार इन बैंकों को आर्थिक सहायता दे ? यदि दे तो किस प्रकार दे—बैंकों को ऋण देकर, बैंकों को टैक्स तथा फ़ीस से मुक्त करके, डिबेञ्चरों के मूल तथा सूद की गारंटी देकर, उनको ट्रस्टी सिक्यूरिटी बना कर अथवा डिबेञ्चर ख़रीद कर ?

(७) क्या एक विशेष क़ानून बना कर इन बैङ्कों को यह अधिकार देना चाहिये कि वे बिना अदालत में गये हुए बन्धक रखी हुई भूमि को बेच दें ?

सेन्ट्रल बैंकिङ्ग इनक्वायरी कमेटी की यह सम्मति तो हम पहले ही लिख चुके हैं कि बड़े बड़े ज़मीदारों के लिये मिश्रित पूँजी वाले व्यापारिक भूमि-बन्धक बैंक स्थापित किये जाँय और किसानों के लिये सहकारी भूमि-बन्धक बैंक। ऊपर लिखे अन्य प्रश्नों पर कमेटी की सम्मति नीचे लिखी जाती है—

कमेटी की राय में निम्नलिखित कार्यों के लिये ऋण देना चाहिये—(क) किसान की भूमि और मकान को छुड़ाने के लिये तथा पुराने ऋण को चुकाने के लिये, (ख) भूमि तथा खेती बारी के ढङ्ग सुधारने के लिये तथा किसानोंके मकान बनवाने के लिये। (ग) विशेष अवस्थाओं में भूमि ख़रीदने के लिये।

ऋण कितना दिया जावे, और कितने समय के लिये यह ऋण लेने वाले की क्षमता तथा जिस कार्य के लिए ऋण लिया जा रहा है, उस पर निर्भर होगा। रुपया पाँच वर्ष से लेकर बीस वर्ष तक के लिये दिया जावे। आगे चल कर तीस वर्ष के लिये भी रुपया दिया जा सकता है। कमेटी की सम्मति में ५,००० रु० से अधिक एक सदस्य को न दिया जावे, सदस्य की भूमि का आधे से अधिक ऋण किसी भी दशा मे न दिया जावे।

कमेटी की राय में ऋण सूद सहित बराबर बराबर किस्तों में अदा किया जावे. जिससे कि एक निश्चित समय पर ऋण चुक जावे ; इससे यह लाभ होगा कि किसान को लगभग उतनी ही किस्त देनी होगी, जितनी वह महाजन को केवल सूद में ही देता है। किन्तु बैंकों को यह अधिकार दे दिया जावे कि यदि वे चाहें तो दूसरे ढग से किस्तें वसूल कर सकते है।

भूमि-बन्धक बैंको की कार्यशील पूँजी हिस्सा-पूँजी तथा डिबेञ्चरों से प्राप्त की जानी चाहिये। हिस्सा-पूँजी दो प्रकार से प्राप्त की जा सकती है—एक तो आरम्भ मे हिस्सा बेच कर, दूसरे ऋण लेते समय दी हुई रक़म मे से पाँच प्रतिशत काट कर हिस्से का मूल्य वसूल करने से। किन्तु आरम्भ मे काम चलाने के लिये जहाँ कहीं भी आवश्यकता हो प्रान्तीय सरकार बैंको को बिना सूद के रुपया दे दे और डिबेञ्चर बिकने पर जो रुपया आवे उसमे से सरकार को रुपया दे दिया जावे। यह ध्यान में रखने की बात है कि पूँजी की यह व्यवस्था बैंकों के प्रारम्भिक काल मे ही उपयुक्त होगी। विशेषज्ञों का कथन है कि आगे चल कर इन बैंकों को बहुत पूँजी की आवश्यकता होगी, उस समय प्रान्तीय सरकारों को इन बैंकों के हिस्से ख़रीद कर इनको सहायता पहुँचानी चाहिये।

अधिकतर कार्यशील पूँजी डिबेञ्चरों के द्वारा ही प्राप्त हो सकती है। सैन्ट्रल बैंकिंग इनक्वायरी कमेटी के सामने गवाही देते हुए कुछ विदेशी विशेषज्ञो ने कहा था कि बैंकों की जितनी हिस्सा-पूँजी हो उससे पाँच गुने डिबेञ्चर निकालना चाहिए। किन्तु कमेटी इससे सहमत नहीं है। कमेटी की राय में बैंक जितने मूल्य के डिबेञ्चर निकालना आवश्यक समझे, निकाले; किन्तु डिबेञ्चरों का मूल्य भूमि बन्धक रख कर दिये हुए ऋण

से अधिक न होना चाहिये, क्योंकि उस भूमि की ज़मानत पर ही डिबेंचर निकाले जावेंगे। डिबेञ्चरों को सफलता पूर्वक बेचने के लिये सरकार द्वारा मूलधन की गारंटी दी जाने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती; हां, सूद की गारंटी सरकार को अवश्य दे देनी चाहिये। कमेटी की यह भी सम्मति है कि यदि सरकार को इस बात का संतोष हो जावे कि बैंक ने डिबेञ्चरों को चुकाने का प्रबंध कर लिया है तो इन डिबेञ्चरों को ट्रस्टी-सिक्यूरिटी बना देना चाहिये।

कमेटी की सम्मति है कि डिबेञ्चर एक केन्द्रीय संस्था (प्रान्तीय भूमि-बन्धक बैंक) निकाले, और ज़िला भूमि-बन्धक बैंक उनको बेंचे। जिला बैंक बन्धक की जमानत पर प्रान्तीय बैंक से पूँजी ले ले और प्रान्तीय बैंक उस सिक्यूरिटी पर निर्भर हो कर डिबेंचर निकाले। बैंकिंग इनक्वायरी कमेटी की यह स्पष्ट सम्मति है कि सहकारी साख समितियाँ, सहकारी सेन्ट्रल बैंक, तथा प्रान्तीय सहकारी बैंक थोड़े समय के लिये किसान को साख देने का प्रबन्ध करें, और प्रान्तीय भूमि-बन्धक बैंक, तथा ज़िला भूमि-बन्धक बैंक अधिक समय के लिये साख दें। जहाँ सहकारी साख समिति तथा भूमि-बन्धक बैंक दोनों ही कार्य कर रहे हों, वहाँ दोनों संस्थाओं को एक दूसरे से बिलकुल स्वतंत्र रहना चाहिये। हाँ, दोनों में सहयोग होना आवश्यक है। यदि कोई साख समिति का सदस्य भूमि-बन्धक बैंक से ऋण लेने के लिये प्रार्थना पत्र दे तो बैंक समिति से उसके विषय में पूछताछ करले, किन्तु समिति ऋण की ज़िम्मेदार न होगी।

कमेटी, भूमि-बन्धक बैंक के लिये, बाहर की डिपाज़िट लेना उचित नहीं समझती; कारण यह है कि बैंक को अधिक लम्बे

समय के लिये ऋण देना पड़ता है, अस्तु, डिपाज़िट के रुपये से ऋण देना बैंक के लिए उचित न होगा।

भूमि-बन्धक बैंकों की सफलता के लिये सहकारितावादी यह आवश्यक समझते हैं कि बैंकों को यह अधिकार दिया जावे कि वे बिना अदालत मे गये अपना रुपया वसूल करने के लिये बन्धक रखी हुई भूमि ज़ब्त करलें और बेच दें। अधिकतर प्रांतीय बैंकिंग इनक्वायरी कमेटियों ने इस मांग का विरोध किया है। उन का कहना है कि जब बैंक इस अधिकार का उपयोग करेंगे, तब उनके विरुद्ध जनता मे विरोधी वातावरण तैयार हो जावेगा। उनके विरोध का दूसरा कारण यह है कि यदि बैंकों को यह अधिकार दे दिया गया तो वे ऋण देते समय भूमि की भली भांति जांच पड़ताल नहीं करेंगे। उनके विचार से यदि बैंक सावधानी से काय करें और उनका प्रबन्ध अच्छा हो तो मुक़दमेबाज़ी की आवश्यकता न पड़ेगी। सेन्ट्रल बैंकिंग इंक्वायरी कमेटी के सामने भी यह प्रश्न उपस्थित किया गया था। जो लोग बैंकों को यह अधिकार देने के पक्ष में हैं, उनका कथन है कि यदि कोई विशेष क़ानून बनाकर यह अधिकार न दे दिया गया तो फल यह होगा कि बैंक को अदालत की शरण लेनी पड़ेगी, अथवा रजिस्ट्रार द्वारा नियुक्त किये गये पंच के सामने मुक़दमा लड़ना पड़ेगा। भारतवर्ष में सम्पत्ति का हस्तांतरकरण कानून (Transfer of Property Act) तथा ज़ाब्ता दीवानी (सिविल प्रोसीडयोर कोड) इतने पेचीदे हैं कि बैंक को डिगरी कराने में बहुत समय तथा धन नष्ट करना होगा। इसका फल यह होगा कि बैंक को कार्य करने में बहुत सी रुकावटों का सामना करना होगा तथा डिबेञ्चरों की बिक्री पर इसका बुरा असर होगा।

योरोपीय देशों में भी भूमि-बन्धक बैंकों को विशेष क़ानून बना कर यह अधिकार दिया गया है कि यदि देनदार ऋण नहीं चुकाता तो बैंक बिना अदालत में गये भूमि को बेच सकता है। सेन्ट्रल बैंकिंग इनक्वायरी कमेटी का मत है कि बिना यह अधिकार दिये डिबेंचर बेच कर कार्यशील पूँजी प्राप्त नहीं की जा सकती; जनता डिबेंचरों को न लेगी। अस्तु, कमेटी ने इस माँग का समर्थन किया है; साथ ही यह भी कहा है कि देनदार को यह अधिकार होना चाहिये कि यदि वह समझता है कि बैंक का कार्य न्यायपूर्ण नहीं है तो वह अदालत की शरण में जा सके। बैंक के देनदार के हिस्सेदार तथा अन्य किसी लेनदार को, भूमि के बैंक द्वारा ज़ब्त कर लेने पर, यदि हानि होती हो तो वह भी अदालत की शरण में जा सकता है।

भारतवर्ष के कुछ प्रान्तों में भूमि हस्तान्तर क़ानून (लैंड-एलीनियेशन एक्ट) लागू है। इस क़ानून के अनुसार कुछ जातियाँ खेतिहर जातियाँ मान ली गई हैं, उन्हीं जातियों के लोग भूमि मोल ले सकते हैं। यह क़ानून सारे पंजाब, तथा संयुक्त प्रान्त, मध्यप्रान्त और सेन्ट्रल एरिया ❀ के कुछ भागों में लागू है। इन प्रांतों में भूमि-बन्धक बैंकों को अधिकार मिल जाने पर भी भूमि के बेचने में अड़चन होगी। इसके अतिरिक्त बहुत से प्रांतों में काश्तकारी क़ानून (टिनेन्सी एक्ट) के कारण भी भूमि के बेचने में रुकावटें होंगी। प्रांतीय बैंकिंग इनक्वायरी कमेटियों का मत है कि भूमि हस्तांतर क़ानून से विशेष लाभ नहीं हुआ है। अस्तु, इन क़ानूनों में ऐसा परिवर्तन कर देना चाहिए कि बैङ्कों को भूमि के बेचने में कोई रुकावट न हो।

❀ सीधे भारत सरकार द्वारा शासित प्रान्त अर्थात् देहली, अजमेर-मेरवाड़ा, कुर्ग और ब्रिटिश बिलोचिस्तान।

भूमि-बन्धक बैंकों की दशा

पंजाब:—भारतवर्ष में सबसे पहला भूमि-बन्धक बैङ्क पंजाब में झंग जिले में १६२० में स्थापित हुआ। उसके उपरान्त यहाँ १२ भूमि-बन्धक बैङ्क और भी स्थापित हुए किन्तु वे सफल नहीं हुए। १६२६ के बाद जो भयङ्कर आर्थिक मंदी आरम्भ हुई, उसके कारण भूमि के मूल्य में भारी कमी हुई। भूमि हस्तांतर क़ानून के लागू होने से तथा डायरेक्टर और अवैतनिक कार्यकर्ताओं के अधिक ऋण ले लेने के कारण यह बैङ्क असफल हो गए। केवल दो बैङ्क कुछ काम कर रहे हैं। इन्हें प्रान्तीय बैङ्क ही ऋण देता है।

मदरास:—मदरास में भूमि-बंधक बैंकों को बहुत सफलता मिली है। इस समय यहाँ १२० बैंक कार्य कर रहे हैं जो ४५०० गाँवों के क्षेत्र में काम करते हैं और भविष्य में १७,२५० गावों के क्षेत्र को अपना कार्यक्षेत्र बनावेंगे। इस समय इन बैंकों ने ४ करोड़ रुपये के लगभग ऋण दिया है, प्रति वर्ष पचास लाख रुपये के लगभग दिया जाता है। किसानों को जो ऋण दिया जाता है उस पर केवल ६ प्रतिशत सूद लिया जाता है। १६४० में जो मदरास सहकारिता कमेटी बैठी, उसने प्रान्त में २०० भूमि-बन्धक बैंकों की आवश्यकता बतलाई। कमेटी के मतानुसार १६४५ तक प्रान्त में २०० भूमि बन्धक बैंक स्थापित हो जाने चाहिये, जिससे प्रत्येक सिंचाई के साधनों से युक्त ताल्लुके में एक, और सूखे प्रदेश में दो या तीन ताल्लुक़ों के बीच एक बैङ्क हो सके।

मदरास में आरम्भ में प्रत्येक भूमि-बन्धक बैंक अपने डिबेञ्चर बेचता था। १६२६ में सेन्ट्रल भूमि-बन्धक बैंक स्थापित हुआ, तब से सब प्रारम्भिक भूमि-बंधक बैंकों के लिए वही

डिबेंचर बेंचता है। इससे, द्रव्य-बाज़ार में भूमि-बन्धक बैंकों में आपस में जो प्रतिस्पर्द्धा होती थी, वह बच गई, और कम सूद पर पूँजी मिल जाती है।

प्रत्येक बैंक का क्षेत्र एक ताल्लुक़ा है। प्रत्येक भूमि-बन्धक बैंक सेन्ट्रल भूमि-बन्धक बैंक से ऋण लेता है, जो भूमि-बंधक बैंक की हिस्सा-पूँजी और रक्षित कोष का बीस गुना तक ऋण दे देता है। प्रारम्भिक भूमि-बन्धक बैंक अपने सदस्यों को उनकी भूमि के मूल्य का २५ प्रतिशत से ५० प्रतिशत ऋण दे देते हैं। बन्धक रखी हुई भूमि की क़ीमत हर साल जाँची जाती है, जिससे यदि वह गिर रही हो, तो सदस्य से और रुपया वसूल कर लिया जावे और बैंक को घाटा न सहना पड़े। किसी भी व्यक्ति को पाँच हज़ार रुपये से अधिक ऋण नहीं दिया जाता। जिस सूद पर प्रारम्भिक बैंक सेन्ट्रल भूमि-बन्धक बैंकसे ऋण पाता है, उससे एक फ़ीसदी अधिक सूद पर सदस्यों को ऋण दिया जाता है। सदस्यों को ऋण २० वर्षों के लिये दिया जाता है। सदस्य क़िस्तों में रुपया अदा कर देता है।

जिन बातों के लिये ऋण दिया जा सकता है, वे निम्नलिखित हैं :—(१) खेती की भूमि को बन्धक से छुड़ाना (२) पुराने ऋण को चुकाना, (३) खेती की भूमि में सुधार करना, तथा खेती के ढंग में सुधार करना, (४) भूमि को मोल लेना, (५) खेतों की चकबंदी कराना। किन्तु व्यवहार में अभी तक ऋण पुराने क़र्ज़ों को चुकाने के लिए ही दिया जाता है।

बैंक का प्रबन्ध एक बोर्ड करता है; उसके ६ सदस्य होते है, जो अवैतनिक कार्य करते हैं। जब कोई किसान बैंक से ऋण लेना चाहता है तो बैंक के छपे हुये फ़ार्म पर अपनी लेनी और देनी का पूरा हवाला भर कर और साथ में अपनी भूमि सम्बन्धी

काग़ज़ात नत्थी करके अपने क्षेत्र के बैंक को प्रार्थनापत्र दे देता है। तब बैंक का एक डायरेक्टर और सुपरवाइज़र उस किसान के खेतों का मूल्य, उनकी पैदावार, और किसान के ऋण चुका सकने की क्षमता की पूरी जाँच करता है। तदुपरान्त इस आशय का एक सर्टिफिकट प्राप्त किया जाता है कि उस पर जमीन पर कोई ऋण लिया हुआ नहीं है। इतना हो चुकने पर बैंक का क़ानूनी सलाहकार उन काग़ज़ों को देखकर किसान का स्वामित्व ठीक है या नहीं, उस पर अपनी रिपोर्ट देता है, और सारे काग़ज़ात सहकारिता विभाग के सब-रजिस्ट्रार के पास भेज दिए जाते हैं, जो इसी काम के लिए नियुक्त किया गया है। सब-रजिस्ट्रार उस भूमि की जाँच करके अपनी रिपोर्ट देता है। बैंक का संचालक-बोर्ड उस रिपोर्ट के आधार पर ऋण देना स्वीकार करता है, अथवा अस्वीकार करता है। स्वीकृत प्रार्थनापत्र भूमि-बन्धक बैङ्कों के डिप्टी-रजिस्ट्रार के पास भेज दिये जाते हैं, जो उनको अपनी सिफारिश सहित सेन्ट्रल भूमि-बन्धक बैंक के पास भेज देते हैं। सेन्ट्रल-भूमि बन्धक बैंक के दफ्तरों में सब काग़ज़ों की जाँच होकर वे बैंक की कार्यकारिणी समिति के सामने रखे जाते हैं। जब सेन्ट्रल बैंक ऋण देना स्वीकार कर लेता है तो उसकी सूचना प्रारम्भिक भूमि-बन्धक बैङ्क को दे दी जाती है, प्रारम्भिक भूमि-बन्धक बैंक प्रार्थी से बन्धक-पत्र लिखा कर सेन्ट्रल बैंक के नाम करा देता है। सेन्ट्रल भूमि-बन्धक बैंक बंधक-पत्र पाने पर प्रारम्भिक भूमि-बन्धक बैंक को ऋण दे देता है और प्रारम्भिक भूमि-बन्धक बैंक सदस्य को ऋण दे देता है।

सरकार ने भूमि बन्धक बैङ्को को बहुत सी सुविधाएँ दे रखी हैं, जैसे काग़ज़ात की रजिस्ट्री कराने के लिए उन्हें आधी ही फ़ीस देनी पड़ती है। यह मालूम करने के लिए कि भूमि पर

और कोई ऋण लिया हुआ है या नहीं, और उसका सर्टिफिकट प्राप्त करने के लिये २००० रु० से कम ऋण के लिए कोई फीस नहीं ली जाती, और उससे अधिक की अर्ज़ी के लिये आधी फीस ली जाती है। गांव के नक़शे, बन्दोबस्त के रजिस्टर और ज़िले का गज़ट बिना मूल्य दिया जाता है।

मदरास सहकारी भूमि-बन्धक बैंक एक्ट के अनुसार भूमि-बन्धकों को कुछ विशेष सुविधाएँ दी गई हैं। सदस्यों से रुपया वसूल करने में आसानी हो, इसलिए भूमि-बन्धक बैंकों को यह अधिकार दे दिया गया है कि यदि सदस्य रुपया न अदा करें, तो बन्धक रखी हुई भूमि पर उत्पन्न की हुई फसल को रोकने और उसे बेच देने का बैंक को अधिकार होगा। यही नहीं, बैंक को बन्धक रखी हुई भूमि को बिना अदालत से डिगरी कराये ही बेच देने का अधिकार दे दिया गया है। एक्ट ने प्रान्तीय सरकार को यह अधिकार भी प्रदान कर दिया है कि वह सेन्ट्रल भूमि-बन्धक बैंक के डिबेंचरों की अदायगी की गारंटी कर दे। एक्ट द्वारा सेन्ट्रल भूमि-बन्धक बैङ्क को प्रारम्भिक भूमि-बन्धक बैंकों की देख-भाल का भी अधिकार प्राप्त है।

मदरास सेन्ट्रल भूमि-बन्धक बैंक की स्थापना १६२६ में हुई थी। इसके सदस्य व्यक्ति और प्रारम्भिक भूमि बन्धक बैंक होते हैं। सेन्ट्रल भूमि-बन्धक बैंक का संचालन एक एक संचालक-बोर्ड करता है, जिसमें व्यक्तियों और प्रारम्भिक भूमि बन्धक बैंकों के चुने हुए प्रतिनिधि होते हैं। रजिस्ट्रार भी एक व्यक्ति को नियुक्त करता है। दैनिक कार्य की देखरेख एक कार्यकारिणी समिति करती है।

इस समय बैंक जिस सूद की दर पर डिबेञ्चर निकालता है, उससे दो प्रतिशत अधिक पर वह प्रारम्भिक बैंकों को ऋण देता

है। साधारणतः सेन्ट्रल भूमि बन्धक बैंक साढ़े तीन प्रतिशत पर डिबेञ्चर बेचता है और साढ़े पाँच प्रतिशत पर प्रारम्भिक भूमि-बन्धक बैंकों को देता है। प्राम्भिक भूमि-बन्धक बैंक एक फी सदी बचा कर, साढ़े छः प्रतिशत सूद पर सदस्यों को ऋण देते हैं।

सेन्ट्रल बैंक डिबेञ्चर बेच कर भी रुपया प्राप्त करता है। डिबेञ्चर खरीदने वालों के हितों की रक्षा सहकारिता विभाग का रजिस्ट्रार करता है, जो उनके ट्रस्टी की हैसियत से काम करता है।

भूमि-बन्धक बैंक कानून पास हो जाने के उपरान्त प्रान्तीय सरकार ने डिबेञ्चरों के मूलधन और उसके सूद की गारंटी दे दी है। अभी तीन करोड़ से कुछ अधिक के डिबेञ्चरों की गारंटी है; आवश्यकतानुसार उसको बढ़ाया भी जा सकता है। मूलधन और सूद की गारंटी हो जाने से डिबेञ्चर ट्रस्टी सिक्यूरिटी मान लिए गए है, जिनमें अर्द्ध सरकारी और सरकारी संस्थाएँ अपना रुपया जमा कर सकती हैं। रिज़र्व बैंक की सलाह के अनुसार मदरास प्रान्तीय सरकार ने सेन्ट्रल भूमि-बन्धक बैंक को इन डिबेञ्चरों की अदायगी के लिए एक ऋण-परिशोध कोष स्थापित करने पर विवश किया है। प्रतिवर्ष इस कोष में निश्चित रक़म जमा कर दी जाती है, जिससे डिबेंचरों की अदायगी समय पर हो सके।

सेन्ट्रल भूमि-बन्धक बैंक का संचालन बहुत ही सतर्कता पूर्वक हो रहा है। प्रतिवर्ष लाभ का ४० प्रतिशत रक्षित कोष में जमा किया जाता है, और केवल साढ़े चार प्रतिशत लाभ बाँटा जाता है। अतएव बैंक की आर्थिक स्थिति बहुत ही दृढ़ है।

बम्बई—बम्बई में इस समय १७ भूमि-बन्धक बैंक कार्य कर रहे हैं। ये बैंक प्रान्तीय भूमि-बन्धक बैंक से सम्बधित हैं, जो इन्हें ऋण देता है। जिन कार्यों के लिए ये बैंक अपने सदस्यों को ऋण देते है, वे लगभग वही है जो मद्रास में है। प्रारम्भिक भूमि-बन्धक बैंक अपनी हिस्सा-पूंजी और रक्षित कोष का बीस गुना ऋण, प्रान्तीय भूमि-बन्धक बैंक से पा सकता है। प्राम्भिक भूमि-बन्धक के संचालक-बोर्ड मे एक डायरेक्टर रजिस्ट्रार का एक नियुक्त, प्रान्तीय भूमि बन्धक बैंक का, और एक उस क्षेत्र के सहकारी सेन्ट्रल बैंक का मनोनीत रहता है। प्रत्येक प्रारम्भिक भूमि-बन्धक बैंक में एक मेनेजर और भूमि का मूल्य जाँचने वाला अफसर रहता है, जो बैंक के कार्य का संचालन करते हैं।

ऋण बीस वर्ष से अधिक समय के लिए, और १०,००० रु० से अधिक रकम का, नहीं दिया जाता। ऋण देने में लगभग वही कार्यवाही करनी पड़ती है, जो मद्रास में करनी पड़ती है।

प्रारम्भिक भूमि-बन्धक साढ़े छः प्रतिशत सूद पर सदस्यों को ऋण देते हैं। नियम के अनुसार प्राम्भिक भूमि-बन्धक बैंक अपने लाभ का ५० प्रतिशत रक्षित कोष में रखता है, और सवा छः प्रतिशत से अधिक लाभ नहीं बाँट सकता।

प्रान्तीय भूमि-बन्धक बैंक डिबेञ्चर बेच कर कार्यशील पूँजी प्राप्त करता है, जिनके मूलधन और सूद की अदायगी की गारंटी प्रांतीय सरकार ने दे रखी है, और जो ट्रस्टी-सिक्यूरिटी मान लिए गए हैं। यह बैंक रक्षित कोष के अलावा ऋण परिशोध कोष भी रखता है।

आसाम—आसाम में ४० भूमि-बन्धक बैंक थे किन्तु वे नितांत असफल रहे। अब वे सदस्यों को ऋण नहीं देते।

बंगाल—बंगाल में ५ प्रारम्भिक भूमि-बन्धक बैंक हैं, जिन्हें प्रांतीय सहकारी बैंक कुछ समय पूर्व तक ऋण देता था, किन्तु अब प्रांतीय बैंक ने उन्हें उस समय तक ऋण देना बन्द कर दिया है, जब तक प्रांतीय सरकार से उस सम्बन्ध मे बात तय न हो जावे।

मध्यप्रांत—मध्यप्रांत मे इस समय २१ भूमि-बंधक बैंक है। उन्हें प्रांतीय सहकारी बैंक ऋण देता है, जिसकी भूमि-बंधक शाख इस कार्य को करती है। प्रांतीय बैंक इस कार्य के लिए २५ वर्षों के डिबेंचर निकालता है। प्रांतीय सरकार ने ५० लाख रुपये तक के डिबेञ्चरों के मूलधन और सूद की अदायगी की गारंटी दे दी है। सरकार ने टिनेंसी एक्ट में संशोधन करके मौरूसी और सीर ज़मीन को भी भूमि-बंधक बैंक के पास बन्धक रखने की सुविधा दे दी है।

उड़ीसा—उड़ीसा में एक प्रांतीय भूमि-बंधक बैंक कुछ समय से स्थापित है, वह अपनी शाखाओं द्वारा सदस्यों को ऋण देता है।

संयुक्तप्रांत—संयुक्तप्रांत में केवल ५ भूमि-बंधक सहकारी समितियाँ हैं। वे मदरास के प्रारम्भिक भूमि-बंधक बैंकों की अपेक्षा बहुत छोटी हैं, और सहकारी सेंट्रल बैंकों से ऋण लेकर सदस्यों को देती हैं। यहाँ भूमि-बंधक बैंकों की उन्नति उस समय तक नहीं हो सकती, जब तक मध्यप्रांत की तरह कानून में यह संशोधन न कर दिया जावे कि मौरूसी काश्तकार भी अपनी ज़मीन बंधक रख सकता है और जब तक प्रांतीय भूमि-बंधक बैंक न स्थापित किया जावे, जो डिबेञ्चर निकाले।

अजमेर—अजमेर-मेरवाड़ा में तीन भूमि-बंधक बैंक हैं, जिनकी स्थिति अच्छी नहीं है।

देशी राज्यों में मैसूर, कोचीन, और बड़ौदा मे भूमि-बंधक बैंकों की स्थापना हुई है।

भूमि-बंधक बैंकों के कार्य का सिंहावलोकन करते हुए रिज़र्व बैंक ने इस बात पर विशेष ज़ोर दिया है कि इन बैंकों को केवल पुराने ऋण को चुकाने के लिए ही नहीं, वरन खेती और भूमि की उन्नति के लिए भी ऋण देना चाहिए।

—:o:—

दसवाँ परिच्छेद

सहकारिता आन्दोलन का पुनर्निर्माण

—o—

सहकारी साख आन्दोलन की दशा गिरी हुई होने और कुछ प्रान्तों में आन्दोलन लगभग नष्ट हो जाने के कारण इस बात की आवश्यकता हुई कि आन्दोलन का पुनर्निर्माण किया जाय। जांच के लिए विशेष अफ़सर या कमेटियाँ नियुक्त की गयीं। यद्यपि सभी प्रान्तों में पुनर्निर्माण का विचार हो रहा है, बिहार, बंगाल और मध्यप्रान्त की योजनाएँ मुख्य हैं।

पुनर्निर्माण की योजना - इन योजनाओं के मूल में विशेष अन्तर नहीं है। सब के पहले सहकारी साख के दिये हुए ऋणों की जांच की जाती है और उनको इतना कम कर दिया जाता है कि सदस्य उसको चुका सकें। ऐसा करते समय सदस्य की हैसियत और उसकी सम्पत्ति का ध्यान रखा जाता है। फिर कम की हुई रक़म को क़िस्तों में बांट दिया जाता है,

जिन्हें सदस्य धीरे-धीरे अदा करता है। किसी भी दशा में बीस वर्षों से अधिक के लिए किस्तें नहीं बांधी जातीं। सदस्यों के ऋण न चुकाने के कारण जो भूमि समितियों के कब्जे में आ गयी हो, वह उसके पहले मालिकों को 'किराये पर खरीद' ('हायर-पर्चेज') पद्धति से दे दी जाती है; सदस्यों के ऋण की रक़म चुका कर, क़िस्तें बांध दी जाती हैं, उनके अदा कर देने पर भूमि उसके पहले मालिक को दे दी जाती है।

सदस्यों के ऋण को कम करने में जो घाटा होता है, या जिन सदस्यों से ऋण वसूल ही नहीं किया जा सकता, उनकी रक़म बट्टे खाते में डाल दी जाती है और समितियों के रक्षित कोष या हिस्सा-पूँजी से उस हानि को पूरा किया जाता है। यदि समितियाँ उस हानि को सहन करने में असमर्थ होती हैं, तो सेन्ट्रल बैंक समितियों पर जो उसकी रक़म उधार होती है, उसको उसी अनुपात में कम कर देता है। और जो समितियां अपनी देनी को चुकाने में असमर्थ होती हैं, उन्हें तोड़ दिया जाता है। सेन्ट्रल बैंकों की लेनी और देनी की भी पूरी जांच की जाती है और यदि इससे यह ज्ञात होता है कि सेन्ट्रल बैंक अपनी देनी को नहीं चुका सकते तो उनके लेनदारों को उसी अनुपात में अपनी रक़म कम कर देने के लिए कहा जाता है। इस प्रकार मध्यप्रान्त-बरार और बंगाल में सेन्ट्रल बैंकों ने लेनदारों की रकम को इस प्रकार घटा दिया था। बंगाल में लेनदारों की रकम घटा कर जो शेष रही, उसके डिबेंचर लेनदारों को दे दिये गये। बिहार में लेनदारों की रक़म कुछ तो नकद रुपये में दे दी गई, कुछ डिपाज़िट में परिणत कर दी गई, और कुछ बट्टे खाते में डाल दी गई (यानी खतम कर दी गई)।

पुनःनिर्माण योजना की एक विशेष बात यह है कि पुनर्संगठित समितियों के सदस्यों को ऋण अनाज के रूप में दिया जाता है, जिससे वे खेती इत्यादि कर सकें। यह ऋण क़िस्तों में चुकाये जाने हैं और अनाज के रूप में ही वापस दिये जाते है। बंगाल और बरार में इस प्रकार की फसल के लिए ऋण देने वाली बहुत सी समितियाँ स्थापित की गईं, जो फसल की ज़मानत पर ऋण देती हैं क्योंकि ग्राम्य सहकारी साख समितियाँ तो वहाँ प्रायः बंद सी हो गई हैं।

प्रान्तीय बैङ्कों को प्रान्तीय सरकार की सहायता — बंगाल प्रान्तीय सरकार ने प्रान्तीय सहकारी बैंक को २४ लाख रुपये की सहायता इसलिए दी कि उसको जूट विक्रय समितियों को ऋण देने में इतनी हानि उठानी पड़ी थी। इसी तरह बिहार सरकार ने सेन्ट्रल बैंकों कों १२ लाख रुपये की सहायता देने के अतिरिक्त १४ लाख रुपये का ऋण प्रान्तीय बैंक के द्वारा, पुनर्संगठित सेन्ट्रल बैंकों के लेनदारों का भुगतान करने के लिए, दिया। इसके सिवाय पुनर्संगठन की योजना के फल-स्वरूप प्रान्तीय बैंक को जो १८ लाख रु० की हानि उठानी पड़ी, उसकी भी बिहार सरकार ने क्षति पूर्ति कर दी। मध्यप्रान्त की सरकार ने सेन्ट्रल बैंकों के डिपाज़िटरों को घटी हुई रकम पर सूद की गारंटी दे दी है, कुछ सहायता सेन्ट्रल बैंकों को भी दी गई है। इसी प्रकार मैसूर तथा हैदराबाद राज्यों ने भी प्रान्तीय बैंकों को आर्थिक सहायता दी थी।

प्रारम्भिक समितियों का पुनर्निर्माण; अपरिमित और परिमित दायित्व—प्रारम्भिक समितियों के सम्बन्ध में कई प्रश्नों पर आज कल बहुत तर्क वितर्क हो रहा है, जैसे समितियों

का दायित्व, उनका क्षेत्र, उनका निरीक्षण, उनका और सेन्ट्रल बैंकों का सम्बन्ध आदि। पहले उनके दायित्व का विषय लें। यहाँ सहकारिता आन्दोलन में लगे हुए कार्यकर्त्ताओं का बहुत बड़ा समूह इस पक्ष मे है कि कृषि साख समितियों का दायित्व अपरिमित न होकर परिमित होना चाहिये। १९४० में मदरास सहकारी कमेटी के बहुमत ने भी इसी पक्ष में मत दिया। उनका कहना था कि अपरिमित दायित्व से अब कोई लाभ नहीं है वरन् हानियाँ अधिक हैं। पिछले वर्षों में समितियों को दिवालिया बनाने में अपरिमित दायित्व के कारण उन सदस्यों को बहुत अधिक हानि उठानी पड़ी, जो समिति से ऋण नहीं लेते थे और जिन्होंने अपना ऋण चुका दिया था। इस कारण आन्दोलन की बहुत बदनामी हुई। उनका कहना यह है कि अपरिमित दायित्व से अच्छे किसान भयभीत हो जाते हैं और सहकारी समितियो के सदस्य नहीं बनते। भविष्य में तो यह और भी अधिक होगा। वास्तव में, जब साख समिति भंग की जाती है तब अपरिमित दायित्व अपरिमित न रह कर केवल अपनी अपनी योग्यता अनुसार समिति की देनी चुकाने का दायित्वरह जाता है। अपरिमित दायित्व के विरोधियो का यह भी कहना है कि अपरिमित दायित्व का आधार अर्थात् एक दूसरे के सम्बन्ध में पूर्ण जानकारी. एक दूसरे के कार्यों पर निरीक्षण रखना तथा पारस्परिक नियन्त्रण आज के ग्रामीण जीवन में सम्भव नहीं हैं। व्यवहार में व्यक्तिगत जमानत के स्थान पर हैसियत तथा सम्पत्ति की जमानत, ऋण देने में, अधिक महत्वपूर्ण समझी जाती है।

जो लोग अपरिमित दायित्व के पक्ष में हैं. उनका कहना है कि अभी तक जितने भी कमीशन या कमेटियाँ बैठीं, उन्होंने

अपरिमित दायित्व के पक्ष में ही अपना मत दिया है। अपरिमित दायित्व सहकारिता का आधारभूत सिद्धान्त है—"प्रत्येक सब के लिए, और सब प्रत्येक के लिए"। यह सिद्धान्त सामूहिक ज़िम्मेदारी और भाईचारे की भावना को उदय करने के लिए अपनाया गया था। इसको छोड़ देने से पारस्परिक विश्वास तथा जानकारी नष्ट हो जावेगी और समितियाँ सहकारी न रहकर सेन्ट्रल बैंकों की शाखा मात्र रह जावेंगी। अपरिमित दायित्व की कठोरता सहकारिता विभाग के नियमों ने कम कर दी है। उसे पूर्णतया हटा देने से जनता का साख-समितियों में विश्वास जाता रहेगा और उन्हें डिपाज़िट प्राप्त नहीं होगी। अपरिमित दायित्व निर्धन व्यक्तियों के लिए विशेष रूप से उपयुक्त है, क्योंकि उनके पास कोई सम्पत्ति तो होती नहीं, उनकी ज़मानत तो केवल उनका अच्छा चरित्र, ईमानदारी और उनकी उत्पादन शक्ति ही हो सकती है।

रिज़र्व बैंक का भी यही मत है कि कृषि साख सहकारी समितियों का दायित्व अपरिमित ही होना चाहिए।

परन्तु, दिसम्बर १९३६ में देहली में सहकारिता विभागों के रजिस्ट्रारों का जो सम्मेलन प्राप्त हुआ था उसमें केवल सभापति के 'कास्टिंग वोट' (निर्णायक मत) से ही यह प्रस्ताव गिर सका कि कृषि साख सहकारी समितियों का दायित्व परिमित होना चाहिए। इससे यह सिद्ध होता है कि देश में बहुत संख्या में ऐसे कार्यकर्ता हैं, जो अपरिमित दायित्व को व्यर्थ समझते हैं।

ग्राम्य समिति का क्षेत्र—मदरास सहकारी कमेटी का मत है कि एक गांव बहुत छोटा क्षेत्र है और उसकी समिति इतनी छोटी होती है कि वास्तव में वह आर्थिक दृष्टि से सफल हो ही नहीं सकती। अतएव मदरास कमेटी के मतानुसार बहुत छोटी

समितियों को मिलाकर एक कर दिया जावे और वह एक से अधिक गाँव में कार्य करे। लेकिन ऐसा करने से वह पारस्परिक विश्वास और जानकारी, जो कि आन्दोलन का आधार है, नष्ट हो सकती है।

बहु उद्देश्य वाली समितियाँ—कुछ समय से इस विषय मे बड़ा विवाद है कि साख समितियों का कार्यक्षेत्र क्या होना चाहिए। यह तो सभी मानते हैं कि किसान की आर्थिक स्थिति मे तब तक सुधार नहीं हो सकता, जब तक उसके जीवन में सर्वांगीण उन्नति न हो। रिज़र्व बैंक ने इसी बात को लेकर बहु उद्देश्य वाली समितियों का समर्थन किया था। उसका मत है कि बहु उद्देश्य वाली समिति सदस्य को खेती या अन्य धन्धे के लिए साख दे, और अपने अच्छे सदस्यो के पुराने ऋण को भूमि-बंधक बैङ्क के द्वारा अदा करवा दे; किसान-सदस्यों की आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिए उनकी पैदावार को बेचे, उनके लिए बढ़िया बीज खरीदे और उन्हे अपनी आवश्यकता की चीज़ों को ठीक मूल्य पर दिलाने के लिए उनसे आर्डर लेकर उन चीज़ों को खरीद कर उन्हे दे; मुकदमेबाज़ी को कम करने के लिए पंचायत स्थापित करे; भूमि की चकबंदी करके अच्छे बीज और औज़ारों का प्रचार करके खेती की पैदावार को बढ़ावे; खेती के अतिरिक्त बेकार समय मे गौण तथा सहायक धंधो के द्वारा उनकी आय को बढ़ाने का प्रयत्न करे; और, जीवन-सुधार को हाथ मे लेकर स्वास्थ्य, औषधि-वितरण, उपचार, सामाजिक कृत्यों में अधिक धन व्यय न करने और गाँव में सफाई रखने का प्रबन्ध करे। कहने का तात्पर्य यह है कि बहु उद्देश्य वाली समिति गाँव की सभी मुख्य समस्याओं को हल करके गांव वालों को सुखी और

समृद्धिशाली बनाने का प्रयत्न करे। ऐसी समिति गाँव के सार्वजनिक जीवन का केन्द्र बन जावेगी। वे केवल साख ही नहीं देंगी, वरन गाँव की आर्थिक दशा सुधारने और सामाजिक उन्नति करने का प्रयत्न करेंगीं।

सहकारिता आन्दोलन में लगे हुए कार्यकर्ताओं का इस विषय में काफी मतभेद है। कुछ बहु-उद्देश्य वाली समितियों के पक्ष में हैं, कुछ विपक्ष में हैं। विरोध करने वालों का कहना है कि इस प्रकार की समितियों को चलाना कठिन है। ये समितियाँ कुछ शिक्षित व्यक्तियों के हाथ का खिलौना भर रह जावेंगी, जो कि सहकारिता की भावना के विरुद्ध है। यही नहीं, उनका यह भी कहना है कि भिन्न भिन्न विभागों के हिसाब एक दूसरे से मिले रहेंगे, जिससे कि समिति की वास्तविक स्थिति छिपी रहेगी और एक विभाग के ख़राब होने से दूसरों पर बुरा असर पड़ेगा। इसका परिणाम यह होगा कि समिति के उपयोगी कार्य भी असफल हो जावेंगे। इसलिए प्रत्येक कार्य के लिए एक समिति स्थापित की जावे।

परन्तु यह सब स्वीकार करते हैं कि गाँव की सभी समस्याओं के विरुद्ध एक साथ युद्ध छेड़ने से ही गाँव की सर्वाङ्गीण उन्नति हो सकती है। सहकारिता आन्दोलन के प्रसिद्ध विद्वान श्री० फे महोदय ने भी बहु-उद्देश्य वाली समितियों का समर्थन किया है। १९१९ में रजिस्ट्रारों के सम्मेलन ने बहु-उद्देश्य वाली समितियों की स्थापना करके उनका प्रयोग करने की सिफारिश की है। मदरास सहकारिता कमेटी ने भी बहु-उद्देश्य वाली समितियों की स्थापना का समर्थन किया है। संयुक्तप्रान्त, मदरास, बम्बई, बड़ौदा में यह प्रयोग आरम्भ भी हो गया है, और बहु-उद्देश्य वाली समितियां स्थापित की गई हैं। बंगाल के

रजिस्ट्रार ने भी अपना मत बहु-उद्देश्य वाली समिति के पक्ष में यह कह कर दिया है कि सहकारी समिति को सम्पूर्ण मनुष्य की समस्याओं को हल करना चाहिए। बम्बई और मदरास में बहु-उद्देश्य वाली समितियों का कार्यक्षेत्र कई गाँवों में होता है, लेकिन संयुक्तप्रान्त और बड़ौदा में एक समिति का कार्यक्षेत्र केवल एक गाँव होता है। अभी यह समितियाँ प्रयोग की स्थिति में हैं. इसलिए उनके विषय में कुछ कहा नहीं जा सकता। लेकिन हमें यह न भूल जाना चाहिए कि बहु-उद्देश्य वाली समितियाँ धीरे धीरे ही स्थापित होंगी। जब तक गाँवों में ऐसे व्यक्ति नहीं उत्पन्न होते, जो इन समितियों के विभिन्न विभागों को सफलता-पूर्वक चला सकें, तब तक इन समितियों की गति तीव्र नहीं हो सकती।

नियन्त्रित साख और फसली ऋण समितियां— सहकारिता आन्दोलन के अत्यन्त कठिन परिस्थिति मे से गुज़रने के कारण आन्दोलन में एक नई प्रवृत्ति चल पड़ी है। मदरास मे यह विशेष रूप से दृष्टिगोचर हुई। वहाँ साख पर नियन्त्रण रखा जाता है। सदस्य को जिस कार्य के लिए ऋण दिया जाता है, वह उसमें ही उसे व्यय कर सकता है। इसके लिए समिति उसे पूरी रक़म एक साथ न देकर जैसे आवश्यकता पड़ती है, क़िस्तों में देती है। और सदस्य को एक इक़रारनामा लिखना पड़ता है कि वह अपनी फसल को या तो साख समिति या विक्रय समिति के द्वारा ही बेचेगा। विक्रय समिति फसल बेच देने पर साख समिति का ऋण तथा भूमि-बंधक बैंक की क़िस्त (यदि वह सदस्य भूमि-बंधक बैंक का भी सदस्य है) चुका देने के उपरान्त शेष रक़म सदस्य को दे देती है। इस प्रकार वहाँ साख का नियंत्रण किया जाता है। यद्यपि बहुत से लोग इसका

विरोध इस आधार पर करते हैं कि इससे प्रारम्भिक साख समिति की जिम्मेदारी, महत्व और स्वतन्त्रता नष्ट हो जायगी।

बंगाल में फसली ऋण-समितियों की बहुत बड़ी संख्या (१३,०००) है। बरार में भी ये समितियाँ बहुत बड़ी संख्या में स्थापित हैं। इनकी आवश्यकता इस कारण पड़ी कि वहाँ सहकारी साख समितियाँ ठप्प हो गईं। उस कमी को पूरा करने के लिए इनकी स्थापना की गई। मूलतः ये समितियाँ भी मद्रास की तरह ही कार्य कर रही हैं। बंगाल में तो यह नियम है कि फसली ऋण-समिति के सदस्य को बहु-उद्देश्य वाली समिति का भी सदस्य बनना पड़ता है और उसे अपनी पैदावार को बहु-उद्देश्य वाली समिति के द्वारा ही बेचना पड़ता है।

रिज़र्व बैंक और सहकारी साख आन्दोलन—रिज़र्व बैङ्क के स्थापित हो जाने के उपरान्त उसकी कृषि साख शाखा १९३५ में स्थापित की गई। इस शाखा के निम्नलिखित कार्य हैं:—कृषि साख के विशेषज्ञों को नियुक्त करना, जो कृषि साख के सम्बन्ध में भारत सरकार, प्रान्तीय सरकारों और सहकारी बैङ्कों को सलाह दें; और, रिज़र्व बैंक तथा सहकारी बैङ्कों के आपसी सम्बन्ध तथा कृषि साख के सम्बन्ध में जो नीति रिज़र्व बैङ्क निर्धारित करे, उसका स्पष्टीकरण करना। रिज़र्व बैङ्क एक्ट के अनुसार, कृषि साख विभाग ने सहकारिता साख आन्दोलन के सम्बन्ध में एक रिपोर्ट भारत सरकार को १९३६ में भेजी। रिज़र्व बैङ्क ने इस बात पर ज़ोर दिया कि साख आन्दोलन उसके बतलाये अनुसार पुनः संगठित होना आवश्यक है, तभी वह बलशाली बन सकता है। रिपोर्ट की सिफारिशें इस प्रकार थीं :—

(१) जहाँ ऋण इतना अधिक बढ़ गया हो कि कर्ज़दार की

सामर्थ्य के बाहर हो, उसको घटा देना चाहिए।

(२)भविष्य में एक सीमा निर्धारित कर देनी चाहिए, जिससे अधिक ऋण न दिया जावे।

(३) सदस्य-किसान को एक से अधिक स्थानों से ऋण न लेने दिया जावे।

(४) सहकारी गोदाम और विक्रय समितियों की स्थापना की जावे।

(५) प्रान्तीय बैङ्क को कृषि साख का नियंत्रण करना चाहिए।

(६) अधिक लम्बे समय के लिए दी जाने वाली साख, थोड़े समय के लिए दी जाने वाली साख से, अलहदा कर दी जानी चाहिए।

(७) सहकारी सेन्ट्रल बैङ्कों को अपने कर्ज़े की रक़म इतनी घटा देनी चाहिए कि सदस्य खेती के लाभ में से उसे २० वर्षों में चुका सकें। जो रक़म वसूल न हो सके, उसे बट्टे खाते में डाल देना चाहिए।

(८) साख समितियों को सूद की दर कुछ बढ़ानी चाहिए, जिससे वे अधिक रक्षित कोष इकट्ठा कर सकें।

(९) बैङ्कों की संचालक समिति मे बैंकिंग के अनुभव वाले आदमी अधिक होने चाहिएँ।

(१०) आवश्यकता से अधिक कर्ज़ा लेने और सदस्यों से कर्ज़ा की रकम वसूल करने में ढिलाई को दूर करने के लिए डिपाज़िटरों के प्रतिनिधि भी सेन्ट्रल तथा प्रान्तीय सहकारी बैङ्कों के बोर्ड में रहने चाहिएँ।

(११) यदि एक वर्ष से अधिक के लिए ऋण देना ही पड़े तो भी दो वर्षों से अधिक के लिए न दिया जावे (बैल इत्यादि

खरीदने के लिए)। इस प्रकार के ऋण को वार्षिक ऋण से अलहदा रखा जावे, और, साख समिति ऐसे ऋण अधिक न दे।

(१२) सभी ऋण जो किसान को दिये जावें, जैसे जैसे उसे आवश्यकता हो किस्तों में दिये जावें, एकमुश्त रक़म न दी जावें।

(१३) यदि ऋण की अदायगी ठीक समय पर न हो तो उसे तुरन्त वसूल करने का प्रयत्न किया जावे, अथवा समिति को तोड़ दिया जावे (यदि फसल नष्ट हो गई हो तो बात दूसरी है)।

(१४) अदायगी के समय को फसल के नष्ट हो जाने की दशा मे ही बढ़ाया जावे।

(१५) प्रारम्भिक समिति का, जो आन्दोलन की आधार-शिला है, पुनः संगठन होना चाहिए; और, उसका कार्यक्षेत्र किसान का सारा जीवन हो।

(१६) ये समितियां छोटी बैंकिंग यूनियन से सम्बन्धित करदी जावें।

(१७) प्रान्तीय बैङ्क को अन्दोलन की देखभाल करना चाहिए और उसका नेतृत्व करना चाहिए।

रिज़र्व बैङ्क सीधे किसानों को ऋण नहीं देता और न खेती के वास्ते लम्बे समय के लिए ही ऋण दे सकता है। वह फसलों के लिए लिखे गए बिलो को डिस्काउट करके प्रान्तीय बैंकों की सहायता कर सकता है। किन्तु ये बिल ६ महीने से अधिक के लिए नहीं हो सकते। थोड़े समय के लिए आवश्यकता पड़ने पर रिज़र्व बैङ्क प्रान्तीय बैंकों को ऋण दे सकता है। रिज़र्व बैंक से आर्थिक सहायता पाने के लिए यह आवश्यक है कि प्रान्तीय बैंक

अपनी चालू खाते की जमा की ढाई प्रतिशत, और मुद्दती जमा की एक प्रतिशत, नकदी रिज़र्व बैंक में जमा करे।

इसके अतिरिक्त रिज़र्व बैंक ने प्रान्तीय बैंकों को अपना रुपया एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजने के लिए कुछ सुविधाएँ दी है। एक प्रकार से प्रान्तीय बैंक भी प्रामाणिक ('शिड्यूल्ड') बैंक मान लिये गए हैं। सेन्ट्रल बैंकों को रिज़र्व-बैंक ने प्रान्तीय बैंक की शाख मान लिया है, अतएव उन्हें भी वे सुविधाएँ प्राप्त हो जावेंगी। प्रान्तीय बैंक इन थोड़ी सी सुविधाओं से संतुष्ट नहीं हैं। अभी सब प्रान्तों के बैंकों ने अपना सम्बन्ध रिज़र्व बैंक से स्थापित नहीं किया है। किन्तु भविष्य में जब प्रान्तीय बैंकों का सम्बन्ध रिज़र्व बैंक से स्थापित हो जावेगा तो साख आन्दोलन सबल और दृढ़ होगा।

—०—

ग्यारहवाँ परिच्छेद

दूध सहकारी समितियां

—०—

घने आबाद देश के लिये मांस विलास की वस्तु है। जितनी भूमि पर एक गाय का निर्वाह होता है उतनी भूमि पर अनाज उत्पन्न करके आठ मनुष्यों का भोजन उत्पन्न किया जा सकता है। अस्तु, मांसाहारी केवल वही देश हो सकते हैं, जहाँ भूमि तो बहुत है किन्तु जनसंख्या कम है, जैसे संयुक्त राज्य अमरीका, कनाड़ा, अरजैनटाइन, इत्यादि। अथवा, वे घने आबाद देश माँसाहारी हो सकते हैं, जो धनवान होने के कारण विदेशों से

मांस मंगाकर खा सकते हैं, जैसे इङ्गलैंड इत्यादि। भारतवर्ष में अधिकांश जनता शाकाहारी है; जो लोग मांस खाते हैं, उन्हे यथेष्ट परिमाण मे नहीं मिलता; वे स्वाद के लिये कभी कभी मांस खा लेते हैं।

अस्तु, भारतीयों के स्वास्थ्य के लिये फल और दूध की बड़ी आवश्यकता है। यदि देश में दूध की उत्पत्ति का हिसाब लगाया जावे तो ज्ञात होगा कि यहाँ प्रति मनुष्य प्रति दिन पाव भर से भी कम दूध होता है। ऐसी परिस्थिति में मनुष्यों का स्वास्थ्य कैसे अच्छा रह सकता है। विशेषकर नगरो में तो दूध की समस्या ने विकट रूप धारण कर लिया है। वहां दूध का अकाल है; छोटे छोटे क़स्बों में भी दूध उचित मूल्य पर नहीं मिलता।

गांव से आया हुआ दूध—शहरों में दूध समीपवर्ती गांवों से आता है,अथवा शहरों में रहनेवाले घोसी और ग्वाले बेचते हैं। अधिकतर, नगर मे किसान वहां से पांच या छः मील की दूरी से दूध बेचने आता है। जो किसान भैंस रखता है, वह शहर के किसी हलवाई से बातचीत कर लेता है। हलवाई खोये के हिसाब से दूध के दाम देता है। यदि हलवाई किसान से आठ सेर का दूध लेता है तो ग्राहक को चार-पाँच सेर का ही देता है। किसान हलवाई को शुद्ध दूध देता है। किन्तु वह सायंकाल शहर मे नहीं आ सकता, इस लिए सायंकाल का दूध प्रातः काल के दूध के साथ मिला कर लाता है। अतएव नगर-निवासियों को बासी दूध मिलता है। दूध बेचने वाले को भी हानि उठानी पड़ती है, क्योंकि किसान को अपना दूध सस्ते दामों पर देना होता है।

शहरों के ग्वालों का दूध—शहरों के घोसी अपनी गाय भैंसो को लेकर को शहरो में ही रहते है। शहरो में स्थान की कमी होने के कारण इन ग्वालो के स्थान बहुत गन्दे रहते हैं, वहां एक प्रकार के कीड़े उपत्न्न हो जाते हैं जो दूध को दूषित कर देते है। विशेषज्ञों का कथन है कि शहरो के दूषित दूध को पीने के ही कारण बहुत से रोग उत्पन्न हो जाते है। दूध बहुत शीघ्र बिगड़ने वाली वस्तु है, इस कारण ग्वालो का दूध स्वास्थ्य के लिये हानिकारक होता है। ग्वाला भी उसी क़ीमत पर दूध बेचता है जिस पर हलवाई। शहरो में दूध पहुँचाने की समस्या अत्यन्त महत्वपूर्ण है और सहकारी समितियो के द्वारा ही वह हल हो सकती है।

भारत में दूध की उत्पत्ति—श्री० नारमन राइट के अनुसार भारतवर्ष में प्रतिवर्ष लगभग ७० करोड़ मन दूध उत्पन्न होता है। उसका मूल्य,महायुद्ध के पूर्व,तीस करोड़ रुपये कूता गया था। प्रति व्यक्ति यहां दूध का दैनिक औसत ७ औंस है। भोजन-विशेषज्ञों का कथन है कि स्वास्थ्य के लिए हर रोज़ ३० औंस दूध आवश्यक है। अधिकांश योरोपीय देशों में मनुष्य पीछे दूध की खपत का औसत इससे अधिक पड़ता है।

भारतवर्ष में जितनी भी दूध की उत्पत्ति है, उसका लगभग ३१ प्रतिशत पीने के काम आता है; ५२·७ प्रतिशत घी बनाने में, और शेष खोया, दही, रबड़ी, मक्खन, आइसक्रीम इत्यादि के बनाने में व्यय होता है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि भारतवर्ष में दूध की सबसे अधिक खपत घी बनाने में होती है, और उसके बाद दूध का मुख्य उपयोग उसको पीना है। यद्यपि भारतवर्ष में १९४० में गाय बैलों की संख्या लगभग २१

करोड़ थी, जो पृथ्वी भर के गाय बैलों की संख्या की लगभग एक तिहाई थी, फिर भी भारतवर्ष में दूध की उत्पत्ति बहुत कम है। इसका एक मात्र कारण यहां गाय की नस्ल का कल्पनातीत ह्रास होना ही है।

भारतवर्ष में गाय बैल की नस्ल के ह्रास होने के मुख्य तीन कारण हैं :—(१) चारे की कमी (२) अच्छे सांड़ों की कमी (३) पशुओं के रोग। जब तक यह तीनों समस्याएँ हल नहीं होती, तब तक गोवंश की उन्नति नहीं हो सकती। महात्मा गांधी के नेतृत्व में गौ सेवा संघ इस दिशा में प्रशंसनीय कार्य कर रहा है। यदि सरकार, गौशालाएँ तथा अन्य संस्थाएँ उस ओर ध्यान दें तो देश में दूध की यथेष्ट उत्पत्ति हो सकती है।

दूध सहकारी समितियों का संगठन—पास पास के चार पांच गांवों के लिये सहकारी समिति का संगठन किया जावे। जितने किसान गाय या भैंस रखते हैं, उनको सदस्य बनाया जावे। प्रत्येक सदस्य को अपना सब दूध समिति के दफ्तर में निश्चित समय पर पहुँचाने पर बाध्य किया जावे। जर्मनी के बवेरिया प्रान्त में समितियों ने किसानों का दूध इकट्ठा करने का एक अच्छा ढंग निकाला है। प्रत्येक सदस्य को बारी बारी से अपने गांव भर का दूध इकट्ठा करके अपनी गाड़ी में समिति के कार्यालय में लाना पड़ता है, इससे दूध इकट्ठा करने में सुविधा होती है। डेनमार्क की सहकारी समितियों की योजना यह है—

जिन प्रदेशों में पक्की सड़कें हैं, वहां की समितियां मोटर के द्वारा सदस्यों का दूध इकट्ठा करती है। प्रत्येक गांव के सदस्य निश्चित समय पर अपना दूध लेकर गांव के बाहर सड़क के किनारे आ जाते हैं, और, मोटर आकर उनका दूध ले जाती

है। जहां सड़कें अच्छी नहीं हैं, वहां यह काम घोड़ा गाड़ियों से लिया जाता है। समिति प्रत्येक सदस्य को एक बर्तन देती है, जो प्रति दिन भाप द्वारा साफ किया जाता है। सदस्य दूध इसी बर्तन मे भर कर समिति को देता है।

समिति का मन्त्री वैतनिक कर्मचारी होता है, उसे दूध के धंधे का जानकार होना आवश्यक है। डेनमार्क तथा जर्मनी में दूध के धंधे की शिक्षा प्राप्त विद्यार्थी मन्त्री बनाये जाते हैं। मन्त्री दूध की जांच करता है, यदि दूध में मिलावट होती है तो सदस्य पर जुर्माना किया जाता है। दूध नापकर सदस्य के हिसाब में जमा कर लिया जाता है, कहीं कहीं दूध का मूल्य मक्खन के औसत से दिया जाता है। दूध आ जाने पर, समिति का मन्त्री उसे समिति की गाड़ी में नगर को भेज देता है। समिति मक्खन बनाने की मशीन तथा अन्य आवश्यक वस्तुएँ अपनी पूँजी से ख़रीदती है। मन्त्री उन यन्त्रों के उपयोग से उत्तम मक्खन तैयार करता है। समिति मक्खन बड़ी राशि में बनाती है और उसे डिब्बों में भर कर विदेशों में बेचती है।

एक ज़िले की सहकारी दूध समितियां मिल कर एक दूध सहकारी यूनियन का संगठन करती हैं। यूनियन का मुख्य कर्तव्य यह है कि वह समितियों द्वारा बनाये हुए मक्खन के लिये विदेशो में बाज़ार तैयार करे, और अपने से सम्बन्धित समितियों की देखभाल करे। यूनियन विदेशों में विज्ञापन देती है, और समितियों को उचित परामर्श देती है। यही कारण है कि संसार के प्रत्येक देश में डेन्मार्क का मक्खन बिकता है।

संगठन—समिति के जितने सदस्य होते हैं, उनकी सम्मिलित सभा को साधारण सभा कहते हैं। साधारण सभा अपनी

बैठक में प्रबन्धकारिणी समिति का चुनाव करती है, दूध का भाव निर्धारित करती है तथा दूध में पानी मिलाने वालों के लिए दण्ड निश्चित करती है। साधारण सभा ही मन्त्री को नियुक्त करती है। मन्त्री का केवल यही काम नहीं होता कि वह दूध का प्रबन्ध करे, वह प्रति सप्ताह सदस्यों के पशुओं की जाँच करता है और पशु-पालन के विषय में उन्हें यह परामर्श देता रहता है कि पशुओं को किस प्रकार चारा खिलाना चाहिए तथा उन्हें किस प्रकार स्वस्थ और स्वच्छ रखा जा सकता है। यदि किसी सदस्य का पशु बीमार हो जावे तो मन्त्री उसका उपचार करता है।

सदस्य समिति के हिस्से खरीदते हैं। हिस्सों का मूल्य किस्तों में चुकाया जा सकता है। समिति सहकारी बैङ्कों से कर्ज़ लेती है, और उचित सूद पर सदस्यों को पशु खरीदने के लिये रुपया उधार देती है। समिति उत्तम जाति के सांड पालती है और सदस्यों के पशुओं की नस्ल को उत्तम तथा अधिक दूध देने वाला बनाती है। समिति चारे का भी प्रबंध रखती है, जो आवश्यकता पड़ने पर सदस्यों को उधार दिया जाता है।

भारतवर्ष में दूध का धन्धा— भारतवर्ष में पशुओं की दशा इतनी शोचनीय है, जितनी संसार के किसी भी देश में नहीं है। यहाँ गाय का इतना ह्रास हो चुका है कि वह दूध के लिये बहुत अनुपयुक्त होगई है। डेनमार्क में कोई मनुष्य १८ सेर से कम दूध देने वाली गाय को नहीं पालता। भारतवर्ष में पशुओं के ह्रास के दो मुख्य कारण है; एक तो अच्छे साँडों की कमी, दूसरे चारे का अभाव। एक सीमा तक, सहकारी समितियाँ इन दोनों समस्याओं को हल कर सकती हैं।

अभी तक भारतवर्ष में इस महत्वपूर्ण विषय की ओर जनता

का ध्यान नहीं गया है; हाँ, कुछ स्थानों पर सहकारी दूध समितियाँ स्थापित हुई हैं, जिनमें कलकत्ता के समीपवर्ती गाँवों की समितियाँ विशेष उल्लेखनीय हैं। इस विशाल जनसंख्या वाले नगर को प्रति दिन बहुत दूध की आवश्यकता रहती है। दूध आस-पास के गाँवों से ही मिलता है। जिन गाँवों मे समितियाँ स्थापित नहीं हुई है, वहाँ से दूध कलकत्ते तक लाने का धन्धा ग्वाले करते हैं। ग्वाले गाय नहीं रखते, उनका काम केवल गाँव से दूध लाकर बेचना भर है।

ग्वालेहर छःमाही गाय वालों को कुछ पेशगी रुपया दे देते हैं, और उनसे यह तय कर लेते हैं कि वे उसी ग्वाले को दूध दें। ग्वाला प्रातःकाल ही अपने दूध दुहने वालो को गाय वालों के मकानों पर भेज देता है और वे आसामी की गायो को दुह लेते हैं। ग्वाला उस दूध को कलकत्ते ले जाता है अथवा दही या छाना बनाता है। ग्वाला कलकत्ते बिना पानी मिलाये दूध नहीं ले जाता; पानी मिलाते समय वह इस बात का भी ध्यान नहीं रखता कि पानी गंदा तो नहीं है। यह पानी मिला हुआ दूध बड़े बड़े पीतल के कलसों में भर लिया जाता है और उनके मुँह में पत्तियां ठूँस दी जाती हैं, जिससे दूध न छलके। ये कलसे भी साफ़ नहीं रहते। ग्वाला माहवारी टिकट ले लेता है और प्रातः काल रेल में दूध कलकत्ते तक लाता है। रेल गाड़ियो में ग्वालों के लिये एक तीसरे दर्जे का डिब्बा रहता है, जो प्रायः बहुत गंदा होता है।

सत्ताईस वर्ष व्यतीत हुए, श्री० डोनोवन तथा श्री० जे. एम. मित्रा का इस ओर ध्यान आकर्षित हुआ और उन्होंने प्रयत्न करके एक दूध सहकारी समिति की स्थापना की। आरम्भ में गांव वाले तैयार नहीं हुए; किन्तु पीछे एक गांव के किसान,

जिनका ग्वाले से झगड़ा हो चुका था और जो इस चिन्ता में थे कि वे अपना दूध कलकत्ते में किस प्रकार बेचें, तैयार हो गये। इस तरह पहली समिति की स्थापना हो गई।

समिति ने किसानों को ग्वाले से एक रुपया फी मन अधिक मूल्य दिया और उनके हिसाब की पासबुक हर किसान को दे दी। समिति भी दूध दुहने वालों को नौकर रखती थी। आरम्भ में समिति को बहुत थोड़ा लाभ हुआ, किन्तु समिति ने दो बातों से सफलता प्राप्त की; एक तो किसानों को दूध की क़ीमत अधिक दी; दूसरे, ग्राहकों को शुद्ध दूध दिया। क्रमशः समितियों की संख्या बढ़ने लगी। समितियों के सदस्यों को दूध का अधिक मूल्य मिलते देख, अन्य गांवों में भी किसान समितियों के सदस्य बनने को लालायित होने लगे और कलकत्ते में समिति के दूध की मांग बढ़ने लगी। सन् १९१९ में समितियों ने एक दूध सहकारी यूनियन संगठित की. तबसे समितियों की संख्या बड़ी तेजी से बढ़ती गई। इस समय १२६ दूध समितियां यूनियन से संबंधित हैं, जिनके लगभग ६५०० सदस्य हैं। केवल कलकत्ते में ही यूनियन लगभग १५० मन दूध प्रति दिन बेचती है, जिसका मूल्य वर्ष में चार लाख रुपये से अधिक होता है।

दूध की उत्पत्ति का केन्द्र ग्राम्य दूध समितियां हैं, दूध यूनियन तो केवल बेचने का प्रबन्ध करती है। जैसा ऊपर लिखा जा चुका है, ग्राम्य समिति के सदस्यों की साधारण सभा प्रबन्धकारिणी समिति, सभापति, मन्त्री तथा मैनेजर को चुनती है। प्रत्येक सदस्य की केवल एक ही वोट (मत) होती है, फिर वह चाहे जितने हिस्से खरीद चुका हो। केवल ग्राम्य दूध सहकारी समितियां ही यूनियन की सदस्य हो सकती हैं। दूध-यूनियन समितियों को पूँजी देती है, उनका निरीक्षण तथा नियन्त्रण

करती है, और कलकत्ते मे दूध बेचती है :

समितियों के प्रतिनिधि यूनियन के डायरेक्टरों का चुनाव करते हैं। प्रत्येक समिति की एक वोट होती है। केवल सभापति और उपसभापति नहीं चुने जाते। डायरेक्टर ही यूनियन के कार्य की देखभाल करते है।

यूनियन ने कुछ भण्डार स्थापित किये है, जिनमे कर्मचारी नियुक्त किये गये है। भंडार पर समितियो का दूध लिया जाता है। जिन समितियों के समीप कोई भंडार नहीं है, वे समीपवर्ती रेलवे स्टेशन पर दूध भेज देती हैं। भण्डारों के मेनेजर रेलवे के द्वारा दूध कलकत्ते भेज देते हैं। कलकत्ते में यूनियन का एक कर्मचारी दूध ले लेता है तथा ग्राहकों के यहाँ भेज दिया जाता है।

भंडार में जब दूध आता है तो भंडार का मेनेजर यन्त्र से उसकी जांच करता है तथा शुद्ध बर्तनो में भरे हुये दूध को कलकत्ते भेजता है। यूनियन एक पशु-चिकित्सक रखती है, जो समितियों के सदस्यों के पशुओं की जांच करता है और पशुओं के रहने के स्थानों को देखता है कि वे गन्दे तो नहीं हैं। इन सब कर्मचारियों के ऊपर एक सरकारी कर्मचारी है जो कि यूनियन का चेयरमेन है। सरकार ने इस कर्मचारी की सेवाएँ सहकारिता विभाग को दे दी हैं। दूध को वैज्ञानिक ढंग से सुरक्षित तथा शुद्ध रखने के लिये यूनियन ने एक फ़ेक्टरी स्थापित की है। यूनियन मोटर, बैलगाड़ी, तथा ठेलों के द्वारा ग्राहकों के पास दूध पहुँचाती है, और अपने कर्मचारियों तथा एंजटो के द्वारा दूध बेचती है।

आरम्भ में यूनियन के पास बहुत थोड़ी पूँजी थी, किन्तु इस समय यूनियन की कार्यशील पूंजी एक लाख से कुछ ही कम है,

और निजी पूँजी अस्सी हज़ार रुपये से कुछ अधिक है। यूनियन का वार्षिक लाभ लगभग रु० २०,००० है। यूनियन ने बहुत से प्रायमरी स्कूल खोले है, जिससे सहकारी समितियों के सदस्यों के लड़के शिक्षा पासकें। यूनियन ने गावो मे कुए भी खुदवाये है, तथा बढ़िया सांड़ ख़रीद कर रखे है, जिससे कि सदस्यो के पशुओं की जाति अच्छी बने। बङ्गाल मे कलकत्ते के अतिरिक्त ढाका, दार्जलिंग, तथा अन्य स्थानो मे भी सहकारी समितियां स्थापित हो गई हैं, जिनकी संख्या २२६ से कुछ अधिक है। प्रान्त में यह आन्दोलन अत्यन्त सफल हुआ है, और भविष्य मे अधिकाअधिक उन्नति की आशा है।

कलकत्ते की भांति मदरास में भी दूध सहकारी समितियां स्थापित की गई हैं। यह समितियां संख्या में १४ हैं और एक यूनियन से सम्बन्धित हैं। यह दूध सहकारी यूनियन ४४ दूकानें चलाती है और वर्ष में लगभग तीन लाख रुपये से कुछ कम का दूध बेचती है।

संयुक्तप्रान्त में, लखनऊ में एक सहकारी दूध-यूनियन है, इससे १३ सहकारी दूध समितियाँ सम्बन्धित हैं, यह समितियाँ ४७ गाँवों का, वर्ष में लगभग १२,००० मन दूध बेच देती हैं। कुछ घी और मक्खन भी तैयार किया जाता है। सदस्य अपनी गायो का दूध पंचों के सामने दुहते हैं, और उन बर्तनो को, जिनमे भरकर दूध लखनऊ भेजा जाता है, वहीं ताला लगा दिया जाता है। समितियों से दूध उन भण्डारों पर ले जाया जाता है, जहाँ वह इकट्ठा होता है वहाँ दूध की परीक्षा होती है। फिर उसे गरम किया जाता है। गरम दूध बड़े बड़े बर्तनो में भर कर उन पर मुहर लगा दी जाती है और मोटर लारी द्वारा उन्हे लखनऊ भेज दिया जाता है। लखनऊ यूनियन में पहुँचने पर दूध जांचा

जाता है फिर उसे ठंडा किया जाता है और शीतभंडार ('कोल्ड स्टोरेज') मे रखा जाता है। पीछे उसे बर्तनों मे बन्द करके ग्राहकों के पास भेज दिया जाता है। यह यूनियन आर्थिक दृष्टि से बहुत सफल हुआ है।

लखनऊ के अतिरिक्त इलाहाबाद के पास के गांवो मे ७ समितियां स्थापित की गई है. और इलाहाबाद में एक दूध यूनियन स्थापित की गई है। इसके अतिरिक्त उन्नाव और बनारस मे भी एक एक दूध समिति स्थापित हुई है।

आसाम मे भी कुछ दूध समितियां स्थापित की गई हैं, किन्तु वहां कुछ को छोड़ कर शेष असफल रहीं।

पंजाब में दूध सहकारी समितियो का तो संगठन नहीं हुआ है, किन्तु कुछ ऐसी समितियां स्थापित की गई हैं, जो प्रति सप्ताह अपने सदस्यो की गायो का दूध नापती हैं, और उसका लेखा रखती हैं। समिति का निरीक्षक सदस्योको बतलाता है कि कौनसी गाय का रखना व्यापारिक दृष्टि से लाभदायक है और किस गाय का हानिकारक। जब तक भारतवर्ष मे दूध का धंधा उन्नत नहीं हो जाता, यह आशा करना कि इस प्रकार की समितियां अधिक स्थापित होंगी, स्वप्न मात्र है।

घी समितियाँ - संयुक्तप्रान्त में घी का धंधा बहुत महत्वपूर्ण है। यह धंधा व्यापारियो के हाथ मे है, जो किसान को घी का कम मूल्य देकर उसमें चर्बी, या तेल, वनस्पति-घी मिला कर ऊँचे दामों पर ग्राहको को बेचते हैं। अतएव ग्राहकों को शुद्ध घी देने और किसानों को अच्छा मूल्य दिलाने के लिए सहकारी घी समितियाँ स्थापित की गयी हैं। इस समय प्रान्त में आगरा, मैनपुरी, इटावा, मेरठ, बुलन्दशहर इत्यादि जिलों में ६५७ घी समितियाँ है, जिनके लगभग ६००० सदस्य हैं।

एक गाँव में एक घी समिति स्थापित की जाती है। जिस किसान के पास गाय या भैंस होती है, वह उसका सदस्य बन सकता है। जब गाय या भैंस ब्याती हैं, तभी समिति उससे एक निश्चित राशि मे घी के लिए वादा करा लेती है। समिति उस घी का रुपया पेशगी किसान को दे देती है। प्रति पखवारा घी, पंचायत के सामने, गरम किया जाता है और तोला जाता है। केवल शुद्ध घी ही लिया जाता है और उस सदस्य के हिसाब में जमा कर दिया जाता है। प्रत्येक ज़िले में एक घी यूनियन है जो कि घी को इकट्ठा करके बाहर भेजती है। ऊपर लिखे ज़िलो के अतिरिक्त एटा, मथुरा, जालौन, बांदा, हरदोई, मुरादाबाद, और झांसी में भी कुछ समितियां स्थापित की गईं। यह समितियां भविष्य में अधिक सफलता प्राप्त करेंगी, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है।

बारहवाँ परिच्छेद

चकबन्दी समितियाँ

—०—

भारतवर्ष कृषि-प्रधान देश है, लगभग ७० प्रति शत जनता खेती बारी में लगी हुई है। गृह-उद्योग-धंधों के नष्ट हो जाने के कारण उनमें लगी हुई जनता भी खेती बारी में घुस पड़ी, साथ ही बढ़ती हुई जनसंख्या के लिये भी खेती के अतिरिक्त और कोई भरण-पोषण का साधन नहीं रहा। इन सब कारणों से खेती में लगी हुई जनसंख्या बराबर बढ़ती गई। फल यह हुआ

कि प्रति किसान भूमि कम होती गई। बम्बई, पंजाब तथा अन्य प्रान्तों में तो कहीं कहीं खेत केवल तीन या चार वर्ग गज के रह गये हैं। देश में खेती बारी के योग्य जितनी भूमि थी, वह सब जोत ली गई; यहाँ तक कि चरागाह भी खेतों में परिणत कर दिये गये, फिर भी भूमि की कमी रही।

किसानों के पास भूमि थोड़ी तो है ही, साथ ही वह छोटे छोटे टुकड़ों में विभाजित है, और ये टुकड़े एक दूसरे के पास न होकर बिखरे हुए है। खेतों के बिखरे हुए होने से खेती बारी की उन्नति असम्भव होती जाती है। किसान का समय, परिश्रम तथा पूँजी का इतना अधिक अपव्यय होता है कि यह आशा नहीं की जा सकती कि वैज्ञानिक ढंग से खेती की उन्नति हो सकेगी।

खेतों के बिखरने का कारण यह है कि भारतवर्ष में हिन्दू तथा मुसल्मानों में यह रीति है कि बाप के मरने पर भूमि बराबर बराबर सब लड़कों में बांट दी जावे। फल यह होता है कि प्रत्येक लड़का बाप के हर एक खेत में से बराबर हिस्सा लेना चाहता है। मिसाल के तौर पर यदि किसी के पास चार भूमि के टुकड़े हैं और उसके चार बेटे है तो चारों बेटे प्रत्येक टुकड़े में से एक चौथाई हिस्सा लेंगे। बात यह है कि प्रत्येक टुकड़े की उत्पादन शक्ति भिन्न-भिन्न होती है, इसलिए अच्छी तथा बुरी सारी ही भूमि के बराबर टुकड़े कर के बांट दिये जायंगे। फल यह होगा कि वे चार टुकड़े सोलह टुकड़ों में विभाजित हो जावेंगे। क्रमशः खेत बंटते बंटते एक दूसरे से दूर पड़ जाते हैं। और क्षेत्रफल में बहुत छोटे हो जाते हैं।

बिखरे हुए खेतों का खेती बारी पर बहुत बुरा प्रभाव होता है। कुछ खेत तो इतने छोटे हो जाते हैं कि उन पर खेती बारी

हो ही नहीं सकती, वह भूमि बेकार पड़ी रहती है। फिर, बहुत सी भूमि खेतों की मेड़ों में नष्ट हो जाती है। किसान को एक खेत से दूसरे खेत पर जाने में बहुत समय खर्च करना पड़ता है। वह न तो उन बिखरे हुए खेतों की ठीक तरह से देख भाल ही कर सकता है, और न वैज्ञानिक ढंग से खेती ही कर सकता है। यदि किसान के सब खेत एक ही स्थान पर हो तो वह एक कुआ खोद कर सिंचाई कर सकता है, किन्तु प्रत्येक बिखरे हुए खेत पर तो वह कुआ नहीं खोद सकता ; बिखरे हुए खेतों की रखवारी भी नहीं कर सकता। छोटे छोटे खेतों की मेड़ों के कारण किसानों में आपस में झगड़ा होता है, जिसके कारण मुक़दमेबाज़ी तक की नौबत आती है। इस प्रकार खेतों के बिखरे हुए होने की दशा में खेती-बारी की उन्नति नहीं हो सकती। जब तक हिन्दू तथा मुस्लिम कानूनों में परिवर्तन न किया जावे, तब तक यह समस्या हल नहीं हो सकती। बम्बई प्रान्त में दो बार इस बात का प्रयत्न किया गया, किन्तु दोनों बार वह असफल रहा। हाँ, बड़ौदा राज्य में एक ऐसा क़ानून अवश्य बना दिया गया है, जिससे कोई खेत एक निश्चित सीमा के बाद बांटा नहीं जा सकता।

पंजाब में चकबन्दी—भारतवर्ष में सर्व प्रथम पंजाब में सहकारिता के द्वारा खेतों की चकबन्दी काम प्रारम्भ किया और वहाँ आशाजनक सफलता प्राप्त हुई। १९२० में वहाँ भूमि की चकबन्दी करने वाली समितियाँ स्थापित की गईं। इन समितियों का उद्देश्य यह है कि छोटे छोटे बिखरे हुए खेतों को इस प्रकार बांटा जाय कि किसानों को अपनी सारी भूमि के बराबर एक ही स्थान पर, अथवा दो या तीन बड़े टुकड़ों में, भूमि मिल जावे।

पंजाब प्रान्तीय सहकारिता विभाग ने इस कार्य के लिये

रेवन्यू विभाग के कर्मचारियो को नियुक्त किया है। वहाँ सब-इन्सपेक्टर गांवों में जाकर किसानों को बिखरे हुए खेतों से होने वाली हानियां, चकबन्दी के लाभ और चकबन्दी करने के उपाय समझाता है। जब चकबन्दी किसान समिति के सदस्य बनने को तैयार हो जाते है तो समिति की स्थापना की जाती है, और एक पंचायत चुन ली जाती है। समिति का सदस्य या तो ज़मींदार हो सकता है अथवा मौरूसी किसान।

प्रत्येक व्यक्ति को समिति का सदस्य बनने के उपरान्त निम्न-लिखित बातों को स्वीकार करना पड़ता है—(१) चकबन्दी के लिये बिखरे हुए खेतों का नया बटवारा आवश्यक है। (२) यदि किसी योजना को दो-तिहाई सदस्य स्वीकार कर लेंगे तो वह योजना प्रत्येक सदस्य को स्वीकार करनी होगी। (३) स्वीकृत योजना के अनुसार वह अपने खेतो को सदा के लिये छोड़ देगा। (४) यदि किसी प्रकार का झगड़ा उपस्थित हो जाय तो पंच नियुक्त किये जावेंगे और जो फ़ैसला वे देंगे, वह सबको मान्य होगा। यद्यपि समिति के नियमों के अनुसार दो-तिहाई सदस्यों से स्वीकृत योजना हर एक सदस्य को मान्य होगी, किन्तु यह नियम अभी काम में नहीं लाया जाता, और जब तक सब सदस्य अपने टुकड़ो को दे कर नये खेत लेना स्वीकार नहीं कर लेते, तब तक योजना सफल नहीं होती।

सब-इंस्पेक्टर, गाँव में कितने प्रकार की ज़मीन है, यह निश्चित करता है, और नवीन बँटवारे में इसका ध्यान रखा जाता है। वह थोड़ी सी भूमि सार्वजनिक हित के लिये सुरक्षित रखता है, जैसे सड़क इत्यादि। कूओं तथा सिंचाई के अन्य साधनों में किसानों का हिस्सा निर्धारित किया जाता है। जब यह सब निश्चय हो जाता है तो पंचायत कर्मचारी की

सहायता से एक नक्शा तैयार करती है, जिसमें नवीन बँटवारा दिखाया जाता है। यह नक्शा साधारण सभा के सामने रखा जाता है। यदि सब सदस्य उसको स्वीकार कर लेते हैं तो वह लागू होता है, नहीं तो फिर से नया बँटवारा होता है और नया नक्शा तैयार किया जाता है। इस प्रकार कभी कभी तीन चार बार तक नक्शे तैयार करने पड़ते हैं, और कभी कभी महीनों का परिश्रम केवल एक किसान के हठ से नष्ट हो जाता है। जब नये बँटवारे को सब लोग स्वीकार कर लेते है, तब उन्हें नये खेत दे दिये जाते हैं और उन खेतों की रजिस्ट्री करा दी जाती है।

इस योजना में किसी को हानि नहीं होती, किसी को भी पहिले से कम भूमि नहीं मिलती। कोई जबरदस्ती नहीं की जाती, और छोटे तथा बड़े सभी किसान इससे लाभ उठा सकते हैं। चकबन्दी समितियाँ इन बिखरे हुए खेतों की केवल चकबन्दी करती हैं, भूमि का लड़कों में बंटना नहीं रोक सकतीं।

पंजाब में चकबन्दीका कार्य आरम्भ होने पर पहले आठ वर्षों में केवल १,६२,००० भूमिकी चकबन्दी हुई, किन्तु सन् १९२९ में ४८,०७९ एकड़ की, १९३० में ५०,००० एकड़ से अधिक की, और १९३१ मे ७२,८२१ एकड़ भूमि की चकबन्दी हुई। १९३५ तक चकबंदी की गति कुछ धीमी रही क्योंकि वह समय आर्थिक मंदी का था। १९३५ के उपरान्त चकबंदी बहुत तेजी से बढ़ी। अब प्रतिवर्ष डेढ़ लाख एकड़ भूमि की चकबंदी हो रही है। अब तक लगभग १५ लाख एकड़ भूमि की चकबन्दी हो चुकी है और प्रति एकड़ पीछे २ रुपये से कम खर्च होता है। चकबंदी के फलस्वरूप उन गांवों में ६००० नये कुए और २७ झालरें खोदी गईं, १००० कूओं की मरम्मत की गई और वे सिंचाई के योग्य बनाये गये।

पंजाब में सन १९३६ में चकबन्दी कानून पास कर दिया गया। वहाँ रेवन्यू विभाग को चकबंदी के काम में अच्छी सफलता मिली है।

चकबन्दी के दो लाभ तो स्पष्ट देखने में आये हैं। जिन गाँवो में चकबन्दी हो चुकी है, वहाँ कूए अधिक संख्या में खोदे गये है; तथा जो भूमि पहिले जोती नहीं जाती थी उस पर खेती बारी होने लगी है। साथ ही उन गाँवो में खेती बारी की विशेष उन्नति हुई है। खेतों के बिखरे होने से जो हानियाँ थीं, वे क्रमशः दूर हो रही हैं। गाँवों में एक प्रकार से नया जीवन आ गया है। यही नहीं, कहीं कहीं किसानों ने अपने खेत पर ही मकान बना कर रहना प्रारम्भ कर दिया है।

किन्तु इस प्रकार चकबन्दी करने में बहुत सी कठिनाइयाँ उपस्थित होती हैं। जिस योजना में प्रत्येक किसान को राज़ी करना आवश्यक हो, उसका सफल होना संदेहजनक ही होता है। प्रत्येक भूमि का स्वामी अपनी पैतृक भूमि को अच्छा समझता है, पुराने विचारों के बुड्ढे किसान कोई परिवर्तन नहीं चाहते; छोटे किसानों को चकबन्दी में अधिक लाभ नहीं दिखाई देता, क्योंकि उनके पास एक या दो ही खेत होते हैं; तथा मौरूसी काश्तकार समझता है कि यदि उसने अपनी भूमि को बदल लिया तो उसके अधिकार जाते रहेंगे। यह कठिनाइयाँ तो हैं ही, गाँव का पटवारी भी चकबन्दी नहीं चाहता। वह समझता है कि चकबन्दी हो जाने से उसकी आमदनी कम हो जावेगी। अस्तु, इस कार्य के करने वालों को अत्यन्त धैर्य तथा सहानुभूति से काम करना चाहिए।

जब किसी किसान के हठ से योजना असफल होती दिखाई दे तो उस किसान की भूमि को छोड़ देने से काम चल सकता

है। परन्तु ऐसे बहुत से उदाहरण हैं, जिनमें बहुत समय तथा रुपया खर्च करके योजना तैयार करने पर भी कतिपय किसानों के राज़ी न होने से सब किया-धरा व्यर्थ होगया। सन १९२८ में यह नियम बनाया गया कि यदि ९० प्रतिशत सदस्य किसी योजना को स्वीकार करें तो उस योजना को लागू किया जावे।

कुछ विद्वानों का कथन है कि बिना कोई क़ानून बनाये चकबन्दी का कार्य सफलता पूर्वक नहीं किया जा सकता। कुछ लोगों का तो यहाँ तक कहना है कि सहकारिता आन्दोलन इस कार्य के लिये उपयुक्त नहीं है, इसलिए क़ानून के द्वारा चकबन्दी होना चाहिए। किन्तु यह सब मानते हैं कि सहकारिता के इतने अधिक लाभ हैं कि जब तक इसके द्वारा सफलता मिल रही है तब तक इसको न छोड़ना चाहिये। जहाँ-जहाँ चकबन्दी का कार्य सफलता पूर्वक हो चुका है, वहाँ जनता इसके लाभों को समझ गई है; और लोगों की राय क़ानून बनाने के पक्ष में है। परन्तु अभी वह समय नहीं आया जब कि क़ानून के द्वारा चकबन्दी का कार्य किया जावे; क्योंकि यदि कोई ऐसा क़ानून बनाया गया तो यह कार्य रेवन्यू विभाग के कर्मचारी करेंगे, फल यह होगा कि जनता का विश्वास हट जावेगा और बड़ी कठिनाइयाँ उपस्थित होंगी।

१९२८ में रजिस्ट्रार सम्मेलन ने निम्नलिखित आशय का प्रस्ताव पास किया था—"जहाँ तक स्थानीय परिस्थिति सहकारी समितियों के द्वारा चकबन्दी के लिये अनुकूल हो, वहाँ तक समितियाँ यह कार्य करें।"

मध्यप्रान्त में — मध्यप्रान्त की छत्तीसगढ़ कमिश्नरी में खेत बहुत छोटे तथा बिखरे हुए हैं। प्रान्तीय सरकार ने कई बार इस समस्या को हल करने का विचार किया। रेवन्यू तथा बन्दोबस्त विभाग के कर्मचारियों ने चकबन्दी करने का प्रयत्न भी किया

किन्तु सफलता न मिली। इसी कमिश्नरी में ज़मींदारों तथा मालगुज़ारों ने भी चकवन्दी करने का प्रयत्न किया, किन्तु किसानों ने इस कार्य से सहयोग नहीं किया, क्योंकि मालगुज़ार यह प्रयत्न करते थे कि अच्छी भूमि उन्हें मिल जावे। छत्तीसगढ़ डिवीजन में एक तो भूमि बहुत प्रकार की है, दूसरे क़ानूनी अड़-चनें भी है। इस कारण प्रान्तीय सरकार ने क़ानून के द्वारा चकबन्दी करना उचित समझा। अस्तु, सन् १९२८ में एक एक्ट बनाया गया जो अभी केवल छत्तीसगढ़ डिवीजन मे ही लागू किया गया है।

इस एक्ट के अनुसार कोई दो या अधिक गाँवों की भूमि के स्वामी, अथवा स्थाई रूप से जोतने वाले, चकवन्दी के लिए प्रार्थनापत्र दे सकते है। किन्तु शर्त यह है कि उनके पास गाँव की भूमि का एक निश्चित भाग होना चाहिए। एक्ट के अनुसार गाँव के कम से कम आधे भूमि जोतने वाले (Permanent right-holders) जिनके पास गाँव की दो-तिहाई भूमि हो, यदि चकबन्दी की किसी योजना को मान लें और अधिकारियों से उसकी स्वीकृति मिल जावे तो वह योजना अन्य लोगों पर लागू हो जावेगी। इस कार्य को करने के लिये एक अफ़सर नियुक्त किया गया है। उसे उच्च अधिकारियों से योजना की स्वीकृति लेनी पड़ती है। यदि उस योजना में किसी को कुछ भी अपत्ति हो तो डिप्टीकमिश्नर अथवा सेटलमेन्ट अफ़सर स्वीकृति दे सकता है, नहीं तो सैटलमेन्ट कमिश्नर स्वीकृति देता है। इसकी कोई अपील नहीं हो सकती केवल प्राँतीय सरकार इस बँटवारे को पलट सकती है।

मध्यप्रान्त में चकबन्दी क़ानून के द्वारा बहुत कुछ काम हुआ है। सन् १९३९ तक १९८५ गाँवों में चकबन्दी हुई और ३३

करोड़ ४० लाख भूमि के टुकड़ों को घटाकर उन्हें केवल पाँच लाख सत्तर हज़ार कर दिया गया। प्रति वर्ष अधिकाधिक भूमि की चकबन्दी हो रही है। चकबन्दी रेवन्यू विभाग करता है।

संयुक्तप्रान्त में संयुक्तप्रान्त में १८२ सहकारी भूमि चकबन्दी समितियाँ स्थापित हो चुकी हैं। ये समितियाँ पजाब की समितियों को ही आदर्श मान कर कार्य कर रही हैं। किन्तु यहाँ कठिनाइयाँ अधिक हैं। एक तो यहाँ गाँवों में भूमि बहुत प्रकार की होती है, दूसरे ज़मीदार तथा किसान भी बहुत प्रकार के हैं, उनके अधिकारों में बहुत भिन्नता है। इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि यह आँदोलन कहाँ तक सफल होगा। फिर भी लगभग ८०,००० बीघा भूमि की चकबन्दी हो चुकी है, और १ लाख खेत, ६ हजार खेतों में परिणत कर दिये गये हैं। १६३६ में चकबन्दी कानून पास हो गया, तब से रेवन्यू विभाग भी यह काम कर रहा है।

कुछ समय से मदरास प्रान्त में भी चकबन्दी समितियाँ स्थापित हो रही हैं। वहाँ प्रयोग अभी नया ही होने से, उसके बारे में विशेष नहीं कहा जा सकता।

देशी राज्यों में बड़ौदा तथा कश्मीर में चकबन्दी समितियाँ सफलतापूर्वक काम कर रही हैं, इन दोनों राज्यों में चकबन्दी का काम क्रमशः बढ़ता जा रहा है।

भारतवर्ष के प्रत्येक प्रान्त तथा देशी राज्य में बिखरे हुए छोटे छोटे खेतों की समस्या ने विकट रूप धारण कर रखा है। जगह जगह इस पर विचार हो रहा है, किन्तु क्या उपाय काम मे लाया जावे, इसका निश्चय नहीं हो पाया है। पंजाब ने इस आन्दोलन में पथ-प्रदर्शक का कार्य किया है।

—o—

*

तेरहवाँ परिच्छेद

सफ़ाई तथा स्वास्थ्य रक्षक समितियां

—०—

भारतवर्ष के गाँवों में गन्दगी का तो मानो साम्राज्य है। जिधर देखिये, उधर ही कूड़ा तथा गन्दगी के ढेर दिखलाई देंगे। गाँव की गलियाँ कभी साफ़ नही की जातीं. घरों के समीप ही अथवा कुछ ही दूरी पर, खाद के ढेर लगा दिये जाते हैं, जिनसे गन्दगी तो बढ़ती ही है, साथ ही मक्खियाँ इतनी अधिक उत्पन्न हो जातीं हैं कि वे सारे गाँव में फैल जाती हैं। ये मक्खियाँ गन्दे पदार्थ पर बैठ कर अपने परों तथा पैरों से गंदगी को भोजन, वस्त्र, जल, तथा बच्चो के चेहरे, तथा पशुओं के मुँह नाक, तथा आँख में डालती रहती हैं। फिर, गाँवों में, घरों में शौचगृह नहीं होते। स्त्री पुरुष शौच के लिये बाहर खेतों में जाते हैं। यदि कोई नदी, ताल, अथवा पोखरा हो तब तो कुछ कहना ही नहीं, वह गाँव भर के लिये शौच-स्थान का काम देता है।

भारतीय ग्रामीण जनता निर्धन होने के कारण जूते कम पहिनती है। अधिकतर किसान नंगे पैर ही रहते हैं। फल यह होता है कि खेतो तथा मैदान में पड़े हुए मल से पैरों का सम्पर्क होने से एक प्रकार का कीड़ा मनुष्य की खाल पर असर करता है और मनुष्य को 'हुकवर्म' नामक रोग हो जाता है। यह रोग भारतीय ग्रामों में, विशेष कर बंगाल में, बहुत होता है। जब मल सूख जाता है तो वह हवा के द्वारा इधर उधर फैल जाता है।

मल के कण हवा में उड़ते रहते हैं, भोजन, और जल को दूषित करते है तथा बच्चों की आँखों में पड़ कर उनकी आँखों को ख़राब करते हैं। गाँवों में धूल भी बेहद होती है इससे स्वास्थ्य को बहुत हानि पहुँचती है।

गाँव वाले अपने मकान बनाने के लिये मिट्टी खोदते हैं, इससे गाँव के आस पास बहुत से गड्ढे हो जाते हैं। वर्षा का जल इन गड्ढों में भर जाता है और रुक जाने के कारण सड़ने लगता है। मलेरिया ज्वर के कीड़ों का तो वह उद्गम स्थान बन जाता है और गाँव के निवासी ज्वर से पीड़ित होते हैं। गाँव के घरों में, गन्दे जल को बहा ले जाने के लिये नाली नहीं होती। गन्दा पानी घरों के पास ही सड़ता रहता है। घर अधिकतर कच्चे होते हैं, और उनमें हवा के लिये कोई खिड़की इत्यादि नहीं लगाई जाती। साधारण किसान अपने पशुओं को उसी मकान में रखता है, जिसमें वह स्वयं रहता है; इस कारण वह मकान गन्दे रहते हैं।

इसके अतिरिक्त निर्धन अशिक्षित किसान स्वच्छता से रहना नहीं जानता। इससे हमारे गाँव भयंकर रोगों के स्थाई अड्डे बन गये हैं। वर्षा के दिनों में तथा वर्षा के बाद तनिक गाँवों में जाकर देखिये, वहाँ सर्वत्र लोगों को ज्वर से पीड़ित पाइयेगा। प्लेग, हैजा, चेचक, तथा ज्वर तो मानो हमारे गाँवों में स्थायी रूप से जम गये हैं। तिस पर भी औषधियों का कोई प्रबन्ध नहीं है। सरकार या डिस्ट्रिक्ट बोर्ड जो अस्पताल स्थापित करती है, उसका लाभ अधिकतर शहर वालों को ही मिलता है।

कुछ वर्ष हुए अखिल भारतवर्षीय मेडिकल कानफ्रेंस (डाक्टरों की सभा) ने अपने अधिवेशन में इस आशय का

एक प्रस्ताव स्वीकार किया था कि भारतवर्ष में प्रति वर्ष एक करोड़ के लगभग मनुष्य दो सप्ताह से लेकर चार सप्ताह तक के लिये उन रोगो से पीड़ित रहते है, जो रोके जा सकते हैं। रोग-ग्रस्त मनुष्यों के केवल वे ही दिन नष्ट नहीं होते, जिनमें वह बीमार रहते हैं, वरन उनकी कार्य शक्ति कुछ महीनों के लिये कम हो जाती है। यही नहीं, लाखों की संख्या में मनुष्य, स्त्रियाँ तथा बच्चे मर भी जाते है। यदि इन रोगों द्वारा होने वाली आर्थिक हानि का हिसाब लगाया जावे तो वह प्रति वर्ष करोड़ों रुपये की होती है। यह बहुत जरूरी है कि मेडिकल विभाग (चिकित्सा विभाग) पर अधिक रुपया खर्च करके, इन रोके जा सकने वाले रोगों को रोका जावे, जिससे सम्पत्ति की उत्पत्ति करने वालों की कार्य शक्ति नष्ट न हो, और देश में अधिक सम्पत्ति उत्पन्न की जा सके। अस्तु, पाठको को यह ध्यान में रखना चाहिये कि स्वास्थ्य का प्रश्न आर्थिक प्रश्न है। आगे हम यह बतलाने का प्रयत्न करेंगे कि सहकारिता के द्वारा स्वास्थ्य-रक्षा का प्रश्न कहाँ तक हल किया जा सकता है।

बंगाल की मलेरिया निवारक समितियां— बंगाल में मलेरिया के कारण प्रति वर्ष बहुत संख्या में मनुष्य मरते हैं। इसका प्रकोप बढ़ता ही जाता है। कहीं कहीं तो गाँव के गाँव उजड़ गये हैं। यद्यपि इस भयंकर रोग ने प्रान्त के जीवन को तहस नहस कर रखा है, किन्तु सरकार इसको रोकने के उपाय न कर सकी ; कारण, उसका विश्वास था कि इस रोग को तभी रोका जा सकता है कि जब कोई बड़ी योजना तैयार की जावे और उसे प्रान्त भर में लागू किया जावे। इस तरह बंगाल के ग्रामीण हताश से हो गये थे।

इस निराशाजनक वातावरण का मुख्य कारण विशेषज्ञों की

यह सम्मति थी कि मलेरिया ज्वर का कीड़ा रुके हुए पानी में उत्पन्न होता है, और वह उत्पन्न होने के स्थान से आठ मील तक जा सकता है। अस्तु, जब तक किसी गांव के चारों ओर आठ मील तक जितने गड्ढे हैं, वे भर न दिये जावें अथवा रुके हुये पानी में मिट्टी का तेल न डाल दिया जावे, मलेरिया नहीं रोका जा सकता। यह समझ कर कि यह कार्य गाँवों में रहने वालों की सामर्थ के बाहर है, कोई प्रयत्न नहीं किया गया।

डाक्टर गोपाल चन्द्र चटर्जी ने खोज करने के उपरान्त यह पता लगाया कि मलेरिया का कीड़ा अपने जन्म-स्थान से आध मील से अधिक दूर जा ही नहीं सकता। अब तो संसार के प्रायः सभी विशेषज्ञों ने चटर्जी महोदय के सिद्धान्त को ठीक मान लिया है। डाक्टर चटर्जी ने सोचा कि इस भयंकर रोग से छुटकारा पाने का सब से सस्ता और अच्छा उपाय यही है कि गांवों में सहकारी समितियां स्थापित की जावें। इसी उद्देश्य को ले कर डाक्टर चटर्जी ने १९१२ में ऐन्टी-मलेरिया (मलेरिया निवारक) लीग स्थापित की, और इस के द्वारा प्रचार करना प्रारम्भ किया। सर्व प्रथम पानीहाटी में ऐन्टी-मलेरिया समिति की स्थापना की गयी। इसमें आशाजनक सफलता प्राप्त हुई। क्रमशः समितियों की संख्या बढ़ने लगीं। इस आंदोलन को गांव गांव में फैलाने के लिये डाक्टर चटर्जी ने एक संस्था की स्थापना की, जिसका नाम "सैन्ट्रल कोआपरेटिव ऐन्टी-मलेरिया सोसायटी, लिमिटेड" है।

व्यक्ति विशेष तथा ऐन्टी-मलेरिया सोसायटी, दोनों ही सेन्ट्रल सोसायटी के सदस्य होते हैं। व्यक्ति-विशेष सदस्य अधिकतर डाक्टर होते हैं; अथवा वे लोग, जिन्हें इस आन्दोलन से सहानुभूति होती है। इस समय सेन्ट्रल सोसायटी की ६०० से

अधिक ऐन्टी-मलेरिया समितियां सदस्य हैं। व्यक्ति-विशेष वार्षिक ६ रुपया चन्दा देते हैं। बहुत से सदस्यों ने सोसायटी को यथेष्ट दान भी दिया है। ग्रामीण समितियां सेन्ट्रल सोसायटी के हिस्से नहीं खरीदतीं। प्रान्तीय सरकार सेन्ट्रल सोसायटी को ग्रांट (सहायता) देती है। सेन्ट्रल सोसायटी इस रुपये से ग्रामीणसमितियों की सहायता करती है तथा प्रचार कार्य में व्यय करती है।

सेन्ट्रल सोसायटी के निम्नलिखित उद्देश्य हैं। (१) प्रान्त भर में ऐन्टी-मलेरिया तथा स्वास्थ्य रक्षक समितियों की स्थापना करना, जिससे प्रान्त में रोगों को रोका जा सके। (२) ग्राम समितियों को मलेरिया, काला आज़ार, प्लेग, हैजा, चेचक, क्षय रोग, तथा कुष्ट रोग को रोकने के तरीके बताना, तथा उन तरीक़ों को काम में लाने के लिए उत्साहित करना। (३) प्रान्त में इस उद्देश्य की पूर्ती के लिये प्रचार करना। (४) ग्राम्य समितियों की देखभाल करना तथा सेन्ट्रल सोसायटी की शाखा स्थापित करना।

आरम्भ में सेन्ट्रल सोसायटी से सम्बन्धित ग्राम समितियों की संख्या कम थी, इसलिए सोसायटी उनकी देख भाल भी करती थी। किन्तु अब ग्राम समितियों की संख्या अधिक है तथा प्रांतीय सरकार इन समितियों को डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के द्वारा सहायता देती है। समितियों की देखभाल का कार्य डिस्ट्रिक्ट बोर्ड ही करते हैं; सेन्ट्रल सोसायटी केवल नई समितियों को स्थापित करती है।

ग्राम समितियां अपने गाँव में मलेरिया तथा अन्य रोगों को रोकने का कार्य करती हैं। समितियों के सदस्यों को चार आने से एक रुपया तक, प्रति मास चन्दा देना पड़ता है। प्रत्येक समिति एक वैद्य अथवा डाक्टर को कुछ मासिक देकर रखती

है, जो सदस्यों के घरों पर बिना फीस लिये जाता है और उनकी चिकित्सा करता है। सेन्ट्रल सोसायटी समितियों को भी आर्थिक सहायता देती है। इन समितियों ने बहुत से अस्पताल तथा स्कूल खोल रखे हैं। इनमें से कुछ अस्पताल तो ऐसे हैं, जिनसे सर्वसाधारण को दवा मिलती है; और कुछ ऐसे हैं, जो केवल हिस्सेदारों को ही दवा देते हैं।

जब किसी क्षेत्र में कुछ समितियाँ स्थापित हो जाती हैं तो सेन्ट्रल सोसायटी उनको दृढ़ करने के लिये एक 'ग्रुप' (समूह) कमेटी स्थापित कर देती है। इस कमेटी में प्रत्येक समिति का एक प्रतिनिधि रहता है। यह ग्रुप कमेटी किसी भी समिति के कार्य में दखल नहीं देती, वह केवल प्रत्येक समिति से कुछ चन्दा लेकर उन समितियों के लिये एक चिकित्सक रखती है। चिकित्सक को उस क्षेत्र में व्यक्तिगत प्रेक्टिस करने की स्वतंत्रता होती है, परन्तु समितियो के सदस्यों के घरों से वह नाममात्र ही फ़ीस लेता है। यदि कहीं काला ज़ार रोग फैल जाता है तो एक स्थान पर एक औषधालय खोला जाता है, चिकित्सक वहाँ पर सब रोगियों की मुफ्त चिकित्सा करता है; औषधियां सेन्ट्रल सोसायटी देती हैं। यही चिकित्सक मलेरिया, चेचक, तथा हैजे का प्रकोप बढ़ने पर, उनको रोकने का उपाय करते हैं।

ग्राम समितियाँ मलेरिया को रोकने के लिये वर्षा से पूर्व गांव के समीपवर्ती सब गड्ढों, खाइयों, तथा पोखरों को भर देती हैं। नाले और नालियों को ऐसा खोद दिया जाता है कि वर्षा का पानी बह जावे। यह कार्य प्रति वर्ष, वर्षा के आने से पूर्व समाप्त कर दिया जाता है। वर्षा के उपरान्त तीन महीने तक गांव के समीप जहां जहां पानी इकट्ठा हो जाता है, वहां वहां समिति मिट्टी का तेल छुड़वाती है, जिससे मलेरिया के

कीटाणु उत्पन्न ही न हो सकें। समिति के प्रत्येक सदस्य को एक छपी हुई पुस्तक दी जाती है, जिसमे वह प्रति सप्ताह, उसके घर के लोग कितने दिन मलेरिया से बीमार पड़े, यह लिख देता है। समिति का मन्त्री इन पुस्तकों के द्वारा, गांव में मलेरिया का प्रकोप कैसा रहा इसका लेखा तैयार करता है। इससे सदस्यों को यह ज्ञात हो जाता है कि गांव मे मलेरिया घट रहा है कि नहीं।

ग्राम ऐन्टी-मलेरिया सहकारी समितियां अपने सदस्यों से थोड़ा सा मासिक चन्दा लेती हैं, यदि कोई बड़ा काम करना हुआ तो वे सरकार तथा सेन्ट्रल सोसायटी से सहायता की प्रार्थना करती है। इन समितियों की यही एक कमजोरी है कि यह आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी नहीं हैं। इस कमी को दूर करने के लिये १६२७ मे सेन्ट्रल मलेरिया सोसायटी ने एक एसोसियेशन स्थापित की, जो ग्राम समितियों के सदस्यों की बजर भूमि पर (जिस पर वे खेती न करते हों) तरकारी तथा फलों के छोटे छोटे बाग लगवाती है, और इन बागों की पैदावार को बिकवाने का प्रबन्ध करती है। इस एसोसियेशन की संरक्षकता मे एक कमेटी स्थापित की गई है, जिसके सदस्य कृषि-शास्त्र के विशेषज्ञ हैं, जो भूमि, खाद तथा बीज सम्बन्धी खोज करते हैं, गांव में समितियो के बागों को देखते हैं और उन्हे सलाह देते रहते हैं। इन बागों में सदस्य अधिकतर अपनी आवश्यकताओं के लिये तरकारियां उपत्न्न करते हैं। इस समय तक बंगाल में, लगभग ७०० समितियां मलेरिया को रोकने का कार्य कर रही हैं।

संयुक्तप्रान्त आदि में संयुक्तप्रान्त मे सहकारी साख समितियों ने कहीं कहीं स्वास्थ्य विभाग के कर्मचारों की सहायता से स्वास्थ्य रक्षा का कार्य करना आरम्भ किया है। सदस्यो को

खाद गड्ढों में रखने का आदेश दिया जाता है, वे गांव में सफ़ाई रखने और अस्पताल खोलने के लिये उत्साहित किये जाते हैं, और ट्रेन्ड दाइयां रखने का प्रयत्न किया जाता है। रहन सहन सुधार समितियां भी भी गांवों में सफाई कराती है, इनके बारे में आगे लिखा जायगा।

पंजाब में ६८ चिकित्सा समितियां हैं, जो सदस्यों को दवाई देने का प्रबन्ध करती है। बिहार उड़ीसा मे कुछ सेन्ट्रल बैंक तथा सहकारी साख समितियाँ गाँव मे सफाई तथा चिकित्सा का प्रबन्ध करती है। यह समितियां गांवों को साफ करती हैं, कूओं में दवाई डलवा कर उनके जल को शुद्ध करती है, औषधियाँ बिना मूल्य बाँटती हैं, तथा आयुर्वेदिक और यूनानी अस्पताल स्थापित करती है। बम्बई मे कुछ समितियाँ अस्पतालों को ग्रान्ट देती हैं, जो औषधियां मुफ्त बांटते हैं।

लेखक की योजना—भारतवर्ष में रोगों के कारण मनुष्य जीवन तथा शक्ति का जो भयङ्कर ह्रास हो रहा है, वह हम पहिले ही लिख चुके हैं। हमारे गाँवो की गन्दगी, और वहाँ चिकित्सा का कोई प्रबन्ध न होने के कारण ही यह ह्रास निरन्तर हो रहा है। अस्तु; गाँवो की सफाई तथा स्वास्थ्य रक्षा की समस्या हमारे लिये बड़े महत्व की है। यह कार्य सहकारी समितियों के द्वारा सफलता पूर्वक किया जा सकता है।

प्रत्येक गाँव में एक स्वास्थ्य रक्षक समिति की स्थापना की जावे। गाँव वालों को समिति के लाभ समझाकर उसको सदस्य बना लिया जावे। प्रयत्न यह होना चाहिये कि प्रत्येक घर से एक सदस्य बनाया जावे। सदस्य चार आना प्रति मास चन्दा दे। जो लोग बहुत ही निर्धन हों, और चार आना प्रति मास चन्दा

न दे सकें, उनसे चन्दा न लिया जावे; उसके बदले में वे सदस्य मास में एक दिन समिति का कार्य कर दिया करें। यदि कोई सदस्य चाहे तो अपना चन्दा अनाज में भी दे सकता है, किन्तु चन्दा देने वाले तथा कार्य करने वालों में कोई अन्तर न होना चाहिए। सब प्रकार के सदस्यों के अधिकार एक ही हों।

साधारण सभा वर्ष का बजट पास करे और समिति का वार्षिक प्रोग्राम निर्धारित करे। वह एक पंचायत. उसका सरपंच, दो मन्त्री तथा एक कोषाध्यक्ष का निर्वाचन करे। पंचायत साधारण सभा द्वारा निश्चित की हुई नीति के अनुसार कार्य करे। दोनों मन्त्री समिति के कार्य का संचालन करें। जो सदस्य चन्दा न दें. उ से मन्त्री समिति का निम्नलिखित काम करवाले—सरोपवर्ती सब गड्ढों को पाट देना; नालों को ऐसा खोद देना कि पानी एक स्थान पर न रुक सके; वर्षा समाप्त होने पर जहां जहां पानी रुक जावे, वहां समय समय पर मिट्टी का तेल डलवाना। इसके अतिरिक्त ऐसे सदस्यों से औषधालय में दवाई तैयार कराने का काम लिया जावे; आवश्यकता पड़ने पर वे लोग दूसरे स्थानों पर भेजे जा सकते हैं।

समिति चिकित्सक की सलाह से कुछ औषधियों का संग्रह करे, जो साधारण रोगों मे काम आ सकें। औषधियों को सदस्यो में बांटने का कार्य दूसरे मन्त्री के हाथ में रहे। समिति गांव की आवश्यकता के अनुसार गांव से कुछ दूरी पर गड्ढे खुदवावें। यह गड्ढे ६ या ७ फीट गहरे हों, गड्ढों के चारों ओर अरहर अथवा फूस की आड़ खड़ी कर दी जावे, तथा गड्ढे के मुँह पर दो लकड़ी के तख्ते रख दिये जावें। यही गड्ढे गांव के शौचगृह हों। सदस्यों को मैदानों में शौच जाने की हानियां बता कर, वहां शौच जाने पर बाधित किया जावे। कुछ शौचगृह

स्त्रियों के लिये पृथक् कर दिये जावें। समिति एक मेहतर को नौकर रखे, जो गांव के घरों का कूड़ा प्रति दिन इन शौच-गृहों में डाल आया करे, और गांव की गलियों की सफाई रखे। समिति प्रत्येक सदस्य को गड्ढों में खाद बनाने के लाभ समझावे और उन्हे गड्ढो में खाद तैयार करने के लिये उत्साहित करे। प्रत्येक किसान दो गड्ढे तैयार करे; जब एक मे से खाद निकाल ली जावे तब दूसरे मे गोबर इत्यादि भरा जावे। प्रति दिन गोबर, भूसा तथा चारा, जो पशुओ के पास बच रहे, और घरो का कूड़ा इन गड्ढों में डाला जाया करे। इससे दो लाभ होंगे—एक तो गंदगी दूर हो जावेगी, दूसरे अच्छी खाद उत्पन्न होगी। समिति शौचगृहों में बनी हुई खाद को बेच दे।

समीपवर्ती गांवों की स्वास्थ्य रक्षक समितियां मिल कर एक बड़ी या सामूहिक समिति बनावें। बड़ी समिति एक चिकित्सक तथा एक ट्रेंड दाई नियुक्त करे। इन कर्मचारियों को निजी प्रेक्टिस करने की इजाज़त न होनी चाहिए। दाई का यह कार्य हो कि वह बड़ी समिति से सम्बन्धित गांवों में बच्चा जनाने का काम करे। प्रत्येक सदस्य से बच्चा जनाने की फ़ीस आठ आना से एक रुपया तक ली जावे। डाक्टर बीच के गांव में रहे और तीसरे दिन प्रत्येक गांव में जाकर रोगियों को दवा दिया करे। इस बीच में सभा का मन्त्री रोगियों को डाक्टर की बतलाई दवा देता रहे। यदि किसी रोगी को देखने के लिये डाक्टर को उसके घर जाना पड़े तो उस सदस्य से समिति आठ आना या चार आना, जैसा भी निश्चित किया जावे, फ़ीस ले। यदि कोई गांव का रहने वाला समिति का सदस्य न बने तो उससे डाक्टर तथा नर्स की दुगनी फ़ीस ली जावे; वह रुपया उसी समिति में जमा किया जावे।

चिकित्सक का मुख्य कार्य केवल चिकित्सा करना ही न होगा, वरन् रोगों से बचने के उपाय बतलाना भी उसका कर्तव्य होगा। सप्ताह में एक दिन नियत किया जावे जब डाक्टर मैजिक लालटेन, चित्रों तथा चार्टों की सहायता से व्याख्यान देकर बतलावे कि रोग क्यों उत्पन्न होते हैं, और उनसे बचने के क्या उपाय हैं। बड़ी समिति के कार्यकर्ता चिकित्सक की सलाह से प्रचार-कार्य करें। जब कभी समीपवर्ती स्थान मे मेला अथवा पैंठ लगे, तब बड़ी समिति के पदाधिकारियों को वहां विशेषकर स्वास्थ्य सम्बन्धी प्रचार करना चाहिये।

ये बड़ी समितियां अथवा सामूहिक समितियां मिलकर तहसील समिति का संगठन करें। तहसील समितियों का कार्य केवल ग्रा०. समितियों की देखभाल करना, स्वास्थ्य रक्षा सम्बन्धी प्रचार करना, तथा जिले के स्वास्थ्य विभाग के कर्मचारियों से लिखा पढ़ी करके, जब कभी उस तहसील के किसी क्षेत्र में कोई बीमारी फैल रही हो, उसको रुकवाने का प्रयत्न करना होगा। बड़ी समितियों के प्रतिनिधि तहसील-समिति में जावेंगे। इस प्रकार संगठन हो जाने से जिले के मेडिकल अफसर तथा जिला-बोर्ड के अधिकारियों को गांवों में बीमारी फैलने के समय सफलता पूर्वक चेतावनी दी जा सकती है, और उनसे सहायता ली जा सकती है।

प्रत्येक प्रान्त में एक प्रान्तीय स्वास्थ्य रक्षक समिति का संगठन होना चाहिये, जो ग्रामों में कार्य करने के लिये दाइयों तथा चिकित्सकों को तैयार करे, आन्दोलन का नेतृत्व ग्रहण करे, तथा प्रचार-कार्य के लिए साहित्य प्रकाशित करे। प्रांतीय समिति को उन दाइयों में से, जो इस समय गांवों में कार्य करती हैं, साफ, चतुर, तथा कम आयु वाली दाइयों को छांट लेना चाहिये और

उन्हें छात्रवृत्ति देकर दाई के काम की वैज्ञानिक शिक्षा दिलवाकर अपने अपने गांवों में भेज देना चाहिये। सामूहिक समितियां इन्हीं दाइयों को नौकर रक्खें। बच्चा जनाने के अतिरिक्त इन दाइयों का यह भी कर्तव्य होना चाहिये कि ये माताओं को बतावें कि बच्चों का लालन पालन किस प्रकार होना चाहिये। चिकित्सक भी ऐसे होने चाहिएँ, जो गांवो के रहने वाले हों और गांवो में रहना पसन्द करें। प्रारम्भ में तो आयुर्वेदिक विद्यालयों में से निकले हुए युवक छांट लिये जावें तथा उनको कुछ दिन आवश्यक शिक्षा देकर गांवों में भेज दिया जावे। इसके बाद प्रान्तीय समिति गांवों में रहने वाले शिक्षित नवयुवकों को आयुर्वेदिक विद्यालयों में भेजकर इस कार्य के लिये तैयार करावे।

प्रान्तीय समिति एक पत्रिका प्रकाशित करे, ट्रैक्ट छपवावे, चित्र तैयार करावे, फिल्म तैयार करावे, तथा मैजिक लालटेन के लिये स्लाइड तैयार कराकर प्रचार के लिए गांवों में भेजे।

प्रान्तीय सरकार प्रान्तीय समिति को आवश्यकतानुसार ग्रांट (सहायता) दे। जिला-बोर्ड सामूहिक समिति को चिकित्सक तथा दाई का आधा वेतन दें।

इस प्रकार यदि सहकारिता आन्दोलन का उपयोग स्वास्थ्य रक्षा के लिए संगठित ढंग पर किया जावे तो ग्रामों में स्वास्थ्य रक्षा की समस्या हल हो सकती है।

———

चौदहवाँ परिच्छेद

क्रय विक्रय समितियां

—o—

योरोपीय देशों में खेती-बारी की उन्नति के लिये सहकारिता का खूब उपयोग किया गया है। सहकारिता से वहाँ किसानों की आर्थिक स्थिति में जो सुधार हुआ है, वह वर्णन नहीं किया जा सकता। कोई काम ऐसा नहीं है, जिसमें सहकारिता का उपयोग न हुआ हो। खेतों की पैदावार को बेचने में, किसानों के लिये आवश्यक वस्तुएँ खरीदने में, पशुओं की जाति को उन्नत करने में, पैदावार को अच्छे मूल्य पर बेचने के लिये राक रखने में, तथा अन्य कार्यों में सहकारिता का सफलता पूर्वक उपयोग किया गया है। किसी किसी देश में तो किसानों ने खेती के यंत्रों को बनाने का काम भी सम्मिलित रूप में आरम्भ कर दिया है। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि खेती-बारी सम्बन्धी प्रत्येक कार्य सहकारिता के द्वारा हो सकता है। परन्तु क्या प्रत्येक कार्य के लिये भिन्न भिन्न समितियां स्थापित की जावें? डेनमार्क के अतिरिक्त जर्मनी. इटली, तथा स्विटज़रलैंड में साख समितियां ही ये कार्य करती हैं। लेखक का मत है कि भारतवर्ष में ग्रामीण साख समितियों को यह सब, कार्य भी करने चाहिएँ, क्योंकि इन कार्यों के लिये पृथक् पृथक् समितियाँ स्थापित करना असम्भव होगा।

किसानों के लिये साख के बाद, खेती की पैदावार को बेचना, आवश्यक वस्तुओं को खरीदना, तथा ग्रामीण उद्योग धन्धों के

द्वारा सम्पत्ति उत्पन्न करना ही मुख्य कार्य हैं। किसान किसी भी देश में साधन सम्पन्न नहीं होता, इसलिये उसको बीज, यन्त्र, खाद, तथा दैनिक व्यवहार की वस्तुएं गांव के बनिये अथवा दूकानदार से खरीदनी होती हैं, और उन वस्तुओं के लिये बहुत मूल्य देना पड़ता है। किसान बेचने की कला नहीं जानता, इसलिए वह गांव के बनिये, तथा मंडियों के दलालों और व्यापारियों से लुटता है, और उसको अपनी पैदावार का मूल्य कम मिलता है।

यदि हम चाहते हैं कि किसान की आर्थिक स्थिति सुधरे तो केवल साख का प्रबन्ध कर देने से ही काम नहीं चलेगा, उसके लिये क्रय-विक्रय समितियों की स्थापना करना आवश्यक होगा। नहीं तो जहां हम साख समितियों के द्वारा किसान को महाजन के हाथों से बचाते है, वहां वही महाजन किसान को आवश्यक वस्तुएं बेचने में तथा उसकी पैदावार खरीदने में लूटता रहेगा। इस कारण क्रय-विक्रय समितियों के स्थापित किये बिना किसान की स्थिति सुधर नहीं सकती।

क्रय समितियां— सहकारी साख समितियों के द्वारा यह कार्य सफलता पूर्वक किया जा सकता है। जब साख समिति का कोई सदस्य किसी वस्तु को खरीदने के लिये ऋण लेना चाहे, तब उसे रुपया न देकर वह वस्तु खरीद दी जावे। जहां क्रय समितियां स्थापित की गई हैं, वहां यह तरीका है कि समिति का मेनेजर सदस्यों से आर्डर इकट्ठे कर लेता है, फिर एक साथ चीजें मंगाकर सदस्यों में बांट दी जाती है, कमीशन केवल नाममात्र का लिया जाता है। इससे यह लाभ होता है कि समिति थोक मूल्य पर चीजें खरीद सकती है; सदस्यों को अधिक मूल्य नहीं देना पड़ता। क्रय सहकारी समितियों की सफलता के

लिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि बाज़ार का अध्ययन किया जावे। इससे यह लाभ होगा कि समिति मन्दी के समय खरीद करेगी। समिति के कार्यकर्ताओं को यह देखना चाहिये कि विना मांग के कोई वस्तु न खरीदी जावे। आरम्भ में केवल उन्हीं वस्तुओं को खरीदा जावे, जिनकी सदस्यों में अधिक मांग हो।

क्रय समितियां भारतवर्ष में बहुत कम पाई जाती हैं। गुजरात की कुछ समितियां अपने सदस्यों को अच्छी कपास का बीज देती है, और कपास को पेचो से ओटवा कर बेचती हैं। बम्बई प्रान्त में कुछ समितियां खाद तथा खेती-बारी के यन्त्रों को खरीदने के लिये स्थापित की गई थीं किन्तु उनकी दशा ठीक नही है। इन समितियो की असफलता का मुख्य कारण दोषपूर्ण प्रबन्ध तथा सदस्यो की उदासीनता है। जो समितियां क्रय-विक्रय दोनों ही कार्य कर रही है, वे कुछ सफल अवश्य हुई हैं।

खेतिहरों के लिये उत्तम बीज की समस्या सदा उपस्थित रहती है। किसानों को उत्तम बीज सहकारी समितियों के द्वारा उचित मूल्य पर मिल सकता है। समिति सदस्यों से ही फ़सल के समय बीज मोल लेकर अपने भण्डार में रख सकती है, अथवा, बीज कृषि विभाग से मिल सकता है। बम्बई प्रान्त में कपास बेचने वाली समितियां बीज रखती हैं। किन्तु अभी तक इस प्रकार की समितियां भारतवर्ष के भिन्न भिन्न प्रान्तों में बहुत कम हैं।

विक्रय समितियां —यह तो पहिले ही कहा जा चुका है कि अधिकतर किसान ऋणी हैं; इस कारण वे अपनी फ़सल बेचने में स्वतन्त्र नहीं होते। जो गांव का बनिया लेन देन करता है, वही फ़सल को खरीदता है। छोटे किसानों को अपनी फसल उसी

बनिये के हाथ बेचनी पड़ती है। एक तो फ़सल कटने के कुछ दिन बाद तक बाज़ार भाव वैसे ही गिरा रहता है, दूसरे बनिया गांव में अकेला ख़रीददार होता है; इस लिए वह बाज़ार भाव से भी कम क़ीमत पर फ़सल ख़रीद लेता है। किसान बाज़ार भाव से अनभिज्ञ होने के कारण जो मूल्य बनिया देता है, ले लेता है। कपास, तम्बाकू, जूट, तथा अन्य कच्चा औद्योगिक माल ख़रीदने के लिए व्यापारी, (जो बड़े बड़े व्यापारियों के एजन्ट होते हैं) गांवों में जाकर फ़सल को ख़रीदते हैं। यह व्यापारी विदेशों के भाव को भली भांति जानते हैं, इस लिए यह लोग गांव के सीधे साधे किसानों को जो मूल्य देते हैं, वही उन्हें स्वीकार करना पड़ता है। जिन किसानों के पास भूमि अधिक होती है और जिनकी पैदावार भी अधिक होती है, वे यदि समीप में कोई मंडी होती है तो पैदावार वहाँ लेजाकर बेचते हैं। किन्तु इन मंडियों में किसान को खूब ही लूटा जाता है। नियमानुसार टैक्स तो उसे देना ही पड़ता है, मंडी में गाड़ी खड़ी करने का किराया तथा दलालों की दलाली भी उसे देनी पड़ती है। दलाल व्यापारियों से मिला रहता है और किसान को उस मूल्य पर, जो दलाल तय करता है, पैदावार बेचनी पड़ती है। जब क़ीमत निश्चित हो जाती है तो व्यापारी के गोदाम पर तुलाई शुरू होती है। कहीं कहीं बाट जाली होते हैं, कभी कभी जब गाड़ी आधी तुल जाती है तब व्यापारी यह कह कर, कि अन्दर वस्तु ख़राब निकली, लेने से इनकार करता है। बिचारे किसान को विवश होकर कम मूल्य स्वीकार करना पड़ता है, क्योंकि उसे अकेले गाड़ी भरना असम्भव दिखाई देता है। किसान को कहीं कहीं तुलाई भी देनी पड़ती है। अन्त में मूल्य चुकाते समय व्यापारी धर्मशाला, गौशाला, मन्दिर, प्याऊ, पाठशाला, तथा ऐसे ही अन्य धार्मिक कार्यों के लिए प्रति रुपया

कुछ पैसे काट लेता है। शाही कृषि कमीशन का विचार है कि इस प्रकार किसान की पैदावार के मूल्य का १० या १२ प्रतिशत कट जाता है और सेठजी दानवीर कहलाते हैं।

जब तक किसान को इस भयंकर लूट से नहीं बचाया जावेगा, तब तक उसकी आर्थिक स्थिति सुधर नहीं सकती। केवल साख समितियों के स्थापित करने से कुछ न होगा। इसी उद्देश्य से बम्बई में कपास तथा गुड़, और बंगाल में धान तथा जूट बेचने के लिये सहकारी समितियाँ स्थापित की गई हैं।

विक्रय समितियों के लिये पूँजी की समस्या अत्यन्त कठिन है। जबकि किसान अपनी पैदावार समिति के पास लाता है, तभी वह रुपया चाहता है। समिति को यथेष्ट धन पेशगी दे देना पड़ता है। उसकी अपनी निजी पूँजी बहुत कम होती है, और भारतवर्ष म वह दिन दूर है जब कि सहकारी समितियों के पास यथेष्ट डिपाज़िट आजावेगी। सेन्ट्रल बैंक समितियों को केवल उतनी ही साख देते हैं, जितनी उनकी पूँजी होती है। आवश्यकता इस बात की है कि समितियां अपने सदस्यों का दायित्व हिस्सों के मूल्य से दुगना या तिगना रखें जिससे कि सेन्ट्रल बैंक पूँजी से उतने गुनी साख दे सकें। सहकारी विक्रय समितियों से किसान को यह लाभ है कि जब किसान अपनी पैदावार लाता है तो, समिति उसे तोल कर रसीद दे देती है। पैदावार लेकर, कुछ रुपया पेशगी दे दिया जाता है; पीछे पैदावार को अधिक से अधिक मूल्य पर बेचा जाता है।

बम्बई—बम्बई प्रान्त में ६४ विक्रय समितियाँ काम कर रही हैं। इन में ३६ तो केवल कपास बेचती हैं। ये प्रति वर्ष पचास लाख रुपये से अधिक की कपास बेच देती हैं। इनके अतिरिक्त गुड़, फल, तमाखू, मिर्च, धान तथा प्याज बेचने के लिए ५८

समितियाँ स्थापित हैं। गुजरात तथा कर्नाटक में कपास बेचने वाली समितियों को विशेष सफलता मिली है। गुजरात के सूरत तथा भड़ौंच जिलों में ये समितियाँ अधिक संख्या में हैं। एक समिति चार या पाँच गाँवों की पैदावार बेचती है। बिक्रय समिति के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि प्रबन्ध ठीक हो। इस लिये यह आवश्यक होता है कि व्यापार से परिचित लोग प्रबन्ध-कारिणी समिति मे रखे जावें। इसी उद्देश्य से गुजरात की सब समितियों ने एक संघ स्थापित किया है, जो इन समितियों की देख भाल करता है।

कर्नाटक प्रान्त की कपास बेचने वाली समितियों ने आशा-तीत सफलता प्राप्त की है। इस प्रान्त की अधिकतर कपास इन्हीं समितियों के द्वारा बेची जाती है। स्थानीय व्यापारियों ने इन समितियों का बहुत विरोध किया किंतु अब यह समितियाँ बलवान हो गई हैं। १९४० में इन समितियों ने लगभग ७ लाख मन कपास बेची थी।

कुछ कपास विक्रय समितियों ने अपनी यूनियन बना ली हैं, जो सामूहिक रूप से समितियों की कपास को बेचने का प्रबंध करती हैं। उन्होंने कपास के पेच भी खोले है, जिनमें सह-कारी समितियों की कपास ओटी जाती है। बात यह है कि सहकारी समितियां अपने सदस्यों को उत्तम बीज देती हैं, जिससे अच्छी जाति की कपास उत्पन्न हो। यदि समितियां अपनी कपास को अन्य पेचों को दें तो उनका बीज दूसरे घटिया बीज से मिल जावे और वे अपनी कपास के लिए बाजार मे जो प्रसिद्धि प्राप्त करना चाहती हैं, वह न हो सके, और उसके अच्छे दाम न मिलें।

सहकारी विक्रय समितियों को प्रोत्साहन देने के लिए

सहकारिता विभाग ने १९४१ में बम्बई में प्रान्तीय विक्रय समिति स्थापित की। यह प्रान्तीय समिति प्रान्तीय मार्केटिंग विभाग की सलाह से विक्रय समितियों का संगठन करेगी और उन्हें प्रोत्साहन देगी। इसके संचालक-बोर्ड में ४ समितियों के प्रतिनिधियों के अतिरिक्त, सहकारी विभाग का रजिस्ट्रार, चीफ मार्केटिंग अफसर और प्रान्तीय सहकारी बैंक का प्रतिनिधि रहता है।

बङ्गाल—बङ्गाल में पहले लगभग ६० विक्रय समितियां थीं। इनमें से अधिकतर जूट बेचने वाली थी। ये असफल रहीं। अब वहां ७३ विक्रय समितियां हैं, जिनमें से अधिकांश धान सहकारी समितियां हैं, कुछ समितियां गन्ने और मछली की भी हैं। इन समितियों की यूनियन स्थापित हो गयी है। बङ्गाल की विक्रय समितियों में से प्रमुख है—राजशाही जिले की 'नौगांव गांजा उत्पन्न करने वालों की समिति।' इसके सदस्य ४,००० से ऊपर, और कार्यशील पूंजी लगभग छः लाख रुपये है। इस समिति के पास गांजा और भांग उत्पन्न करने का एकाधिकार है। इस समिति को लाखों रुपया वार्षिक लाभ होता है, जिससे तीन अस्पताल तथा एक पशुओं का अस्पताल, चलते हैं; और, तीन हाई स्कूलों, तथा ८७ ग्राम पाठशालाओं को सहायता दी जाती है। समिति ने बङ्गाल में ३६ एजंसियां स्थापित की हैं, जो गांजा बेचती हैं। आसाम, उड़ीसा, संयुक्तप्रान्त राजपूताना, कूचविहार, तथा उड़ीसा की रियासतों में भी गांजा भेजा जाता है। समिति का प्रबंध एक प्रबंध-समिति करती है, जिसके २६ सदस्य होते हैं। समिति लगभग डेढ़ लाख रुपये वार्षिक शिक्षा पर, सवालाख रुपये चिकित्सा पर, और तीस हजार पशु चिकित्सालय पर, व्यय करती है। समिति अपने क्षेत्र

में सड़कों और पुलों की मरम्मत भी कराती है।

पञ्जाब—पञ्जाब में २० कमीशन शाप (दूकान) हैं। वे अपने सदस्यों के लिए बीज, और हल इत्यादि औजार खरीदती हैं, उनकी शिक्षा का प्रबन्ध करती हैं, अच्छे बीजों का प्रचार करती है, और सदस्यों मे मितव्ययिता बढ़ाती है। ये दूकानें अपने सदस्यों की पैदावार को बेचती है। जो सदस्य अपनी पैदावार दूकान को देता है, उसे ७५ प्रतिशत मूल्य पेशगी दे दिया जाता है। इन दूकानों ने १९४० में लगभग ३४ लाख रुपये की पैदावार बेची।

मदरास - मदरास मे इस समय १७५ समितियां है, जो पैदावार की जमानत पर ऋण देती हैं और सदस्य की पैदावार को कमीशन पर बेचती हैं। यह प्रयत्न किया जा रहा है कि ये समितियां पूर्ण रूप से विक्रय समितियो की भांति कार्य करें। इसके लिए यह समितियां गोदाम बनवा रही हैं, जहां सदस्यो की पैदावार को रख कर बेचा जावेगा। ऐसा अनुमान किया जाता है कि इन गोदामों के बन जाने से यह आन्दोलन उन्नति करेगा। मदरास में दक्षिण कनारा कृषि सहकारी होलसेल (थोक) समिति उल्लेखनीय है, जो जिले की मुख्य पैदावार को ४९ शाखाओं में इकट्ठी करती है और अपनी बम्बई शाखा के द्वारा बम्बई के बाजार मे बेच देती है। १९४० में समिति ने २० लाख रुपये से अधिक का माल बेचा।

१९३६ मे मदरास प्रान्तीय सहकारी विक्रय समिति की स्थापना हुई। इसका मुख्य कार्य प्रान्त की विक्रय समितियों की देखभाल और उनका संगठन करना है। प्रान्तीय समिति एक साप्ताहिक पत्रिका भी निकालती है, जिसमें वस्तुओं के भाव और अन्य ज्ञातव्य बातें रहती हैं।

संयुक्तप्रान्त—यहाँ सहकारी विक्रय समितियाँ बहुत बड़ी संख्या में हैं, और आन्दोलन तेज़ी से बढ़ रहा है। १९३९ में प्रान्तीय सरकार ने खेती की पैदावार को बेचने के सम्बन्ध में एक योजना स्वीकृत की। इसके अनुसार प्रत्येक मंडी में एक विक्रय यूनियन स्थापित की जाती है, और उस मंडी के समीपवर्ती गांवों की समितियां उस यूनियन की सदस्य बन जाती हैं। अधिकतर, अनाज और तिलहन की बिक्री का काम किया जाता है। प्रान्त के प्रत्येक जिले में यह योजना काम में लाई जा रही है और लगभग २०० केन्द्रों में यह काम हो रहा है। कहीं कहीं तो यूनियन सदस्यों की पैदावार स्वयं खरीद लेती हैं और कहीं कहीं उसे कमीशन पर बेचती हैं। पश्चिमी जिलों में तो यूनियन आढ़त का कमीशन लेकर सदस्यों की पैदावार बेच देती है और पूर्वी ज़िलों में वह सदस्यों की पैदावार मोल लेती है। इस समय ५५ विक्रय यूनियन यह कार्य कर रही है।

अनाज की बिक्री के अतिरिक्त, प्रान्त में घी, आलू और फलों की बिक्री के लिए भी समितियों का संगठन किया गया है। संयुक्तप्रान्त में इस आशय का एक मारकेटिंक एक्ट पास हो रहा है कि सदस्यों को, अपनी पैदावार विक्रय-समिति के ही द्वारा, बेचना पड़ेगा। इससे यह आन्दोलन और भी तेज़ी से बढ़ेगा। प्रान्तीय सरकार ने इन यूनियनों को आर्थिक सहायता देकर प्रोत्साहित किया है।

सबसे अधिक महत्वपूर्ण विक्रय समितियां गन्ने की समितियां हैं। इनकी संख्या ८५० के लगभग है और वे ६६ यूनियनों से सम्बन्धित हैं। इन समितियों से किसान को अपने गन्ने का ठीक दाम मिलता है और तुलाई में कोई धोखेबाज़ी नहीं होती। इसके अतिरिक्त, ये समितियां अपने सदस्यों को अच्छा बीज,

खाद, और हल इत्यादि औज़ार देकर गन्ने की खेती के लिए प्रोत्साहित करती हैं। पिछले वर्ष समितियों ने सदस्यों में ३२ लाख मन बीज बांटा और उन्हे दो लाख मन खाद और ५७ हज़ार भिन्न भिन्न प्रकार के खेती के औज़ार दिये।

अब प्रान्त में इन गन्ना समितियों का एक जाल सा बिछा हुआ है और वे लगभग १३ करोड़ मन गन्ना प्रति वर्ष कारख़ानों को बेचती हैं। यह ध्यान में रखने की बात है कि संयुक्तप्रान्त के कारखानो मे जितना गन्ना खपता है, उसका लगभग ८० प्रतिशत ये समितियां देती हैं। सरकार ने गन्ने की खेती की उन्नति के लिए एक विभाग स्थापित किया है, जो इन समितियों की सहायता से गन्ने की खेती की उन्नति करने का प्रयत्न करता है। ये समितियां गन्ने की बिक्री के सिवाय ग्राम-सुधार का कार्य भी करती हैं, जैसे सड़कों की मरम्मत, चिकित्सा की सुविधा, शिक्षा का प्रबन्ध, तथा सदस्यो में मितव्ययिता का प्रचार करना इत्यादि।

बिहार—बिहार में भी गन्ना सहकारी समितियां स्थापित की गई हैं। उनकी संख्या ८२८ हैं; ये २८ यूनियनों में संगठित हैं, और प्रतिवर्ष लगभग १ करोड़ मन गन्ना कारखानों को देती हैं। क्रमशः यह समितियां गन्ने की खेती की उन्नति करने का प्रयत्न कर रही हैं।

मध्यप्रान्त और बरार—मध्यप्रान्त में क्रय-विक्रय समितियों का स्वरूप भिन्न है। कृषि एसोसियेशन, उत्पादकों की एसोसियेशन, आढ़त की दूकान और बहु-उद्देश्य वाली समितियाँ ही क्रय-विक्रय का काम करती हैं। कृषि एसोसियेशन अभी तक अधिकतर किसानों को अच्छा बीज, खाद और औज़ार देने का ही काम करती हैं। प्रान्त में उत्पादकों की तीन एसोसियेशन हैं,

ये रायपूर, बिलासपूर और द्रुग में है। यह समितियाँ अपने सदस्यों की पैदावार को अपने गोदामों में रखती हैं और उसका ७५ प्रतिशत मूल्य उन्हे पेशगी देकर शेष उसके बिकने पर देती हैं। १९३६ में नागपूर में एक संतरा बिक्री सहकारी समिति स्थापित की गई; यह कलकत्ता, देहली और लखनऊ संतरे भेजती है। प्रान्त में सहकारी आढ़त की पांच दूकानें हैं परन्तु वे विशेष सफल नहीं हुई। प्रान्त में कुछ बहुउद्देश्य वाली समितियाँ भी हैं, जो सदस्यो के लिए आवश्यक वस्तुओं को खरीदती हैं, और उनकी पैदावार को कमीशन पर बेचती है। किन्तु अभी तक क्रय-विक्रय आन्दोलन प्रान्त में बलशाली नहीं हुआ है।

देशी राज्यो मे बड़ौदा में ४५ विक्रय समितियाँ हैं, जिनमें से अधिकाँश कपास बिक्री समितियाँ हैं। हैदराबाद में ५१ विक्रय समितियाँ हैं, जिनमें १० कपास की और ६ अन्य खेती की उपज की हैं। शेष बढ़ई, चमार, सुनार, कागज़ बनाने वालो इत्यादि की समितियाँ है। इनके अतिरिक्त कोचीन, मैसूर, ट्रावंकोर में भी कुछ विक्रय समितियाँ है।

सच तो यह है कि भारतीय किसान को साख समितियों से भी अधिक आवश्यकता विक्रय समितियों की है। इधर कुछ वर्षों से भिन्न-भिन्न प्रान्तो मे इस ओर विशेष रूप से प्रयत्न हो रहा है; यह एक अच्छा चिह्न है।

क्रय विक्रय समितियाँ ऊपर केवल खरीदने या केवल बेचने का काम करने वाली समितियो के बारे में लिखा गया है। अब ऐसी समितियो के बारे में विचार किया जाता है, जो क्रय और विक्रय दोनों काम करती हैं। ये समितियाँ परिमित दायित्व वाली होती हैं। ये बड़े क्षेत्र में कार्य करके ही सफल

हो सकती हैं, क्योंकि इन समितियों को अधिक राशि में वस्तुओं को ख़रीदने तथा पैदावार को बेचने से ही लाभ हो सकता है। क्रय-विक्रय समितियों के सदस्य केवल वे ही लोग बनाये जाते हैं, जो फ़सल को उत्पन्न करते हैं। जो लोग कुछ बेचना या ख़रीदना नहीं चाहते, वे इन समितियों के सदस्य नहीं बनाये जाते। समिति का लाभ सदस्यों मे ख़रीद फ़रोख्त के हिसाब से बाँट दिया जाता है। यदि किसी किसान ने समिति के द्वारा १०० मन कपास बेची है और दूसरे ने केवल ५० मन ही बेची हैं तो दूसरे को पहले से आधा लाभ मिलेगा। कुछ लोगों का मत है कि पैदावार बेचने का कार्य साख से बिलकुल भिन्न और कठिन भी है। इस कारण क्रय-विक्रय का काम एक समिति करे, तथा साख देने का काम दूसरी समिति करे। किन्तु यह बात ध्यान में रखने की है कि सदस्यों के लिये आवश्यक वस्तुओं को ख़रीदने का कार्य साख समितियाँ भली प्रकार कर सकती हैं। आयर्लैंड में सब कार्य एक ही समिति करती है।

गुजरात की समितियाँ समीपवर्ती गाँवों की सहकारी साख समितियों का एक सामूहिक संगठन मात्र होती है। तीन चार गाँवो की साख समितियो के सदस्य उसके सदस्य बन जाते हैं। सदस्य एक ही प्रकार की कपास उत्पन्न करते हैं। सब कपास इकट्ठी कर ली जाती है और बेच दी जाती है। कर्नाटक प्रान्त की समितियाँ सदस्यों की कपास को इकट्ठा नहीं करतीं, वरन् उसे पृथक् पृथक् नीलाम कर देती हैं।

क्रय विक्रय समितियों के कार्य में कुछ कठिनाइयाँ उपस्थित होती हैं, जिनपर यहाँ विचार कर लेना उचित है। क्रय विक्रय समिति यदि बड़ी नहीं होगी तो वह व्यापारियों की प्रतिद्वन्दिता में टिक न सकेगी। आवश्यकता इस बात की है कि बहुत से गाँवों

के लिये एक समिति स्थापित की जावे। इन समितियों में व्यक्तियों को सदस्य बनाना खतरे से खाली नहीं है, क्योंकि बहुत संभव है कि बनिये तथा व्यापारी, जिनसे समिति प्रतिद्वन्द्विता करने जा रही है, अपने आदमियों को समिति का सदस्य बना कर समिति को नष्ट करने का प्रयत्न करें। अस्तु, केवल साख समितियां ही सदस्य बनाई जावें। किन्तु यह नियम अवश्य रखा जावे कि जो साख समितियों के सदस्य नहीं है, उनकी पैदावार भी समिति बेचेगी। इसके अतिरिक्त जो लोग व्यापारी नहीं है, और जो समिति से प्रतिद्वन्द्विता नहीं करते, उनको सदस्य बना लिया जाय।

—०—

पंद्रहवाँ परिच्छेद

कृषि सम्बन्धी समितियां

—०—

हम पहले कह चुके हैं कि भारतवर्ष में प्रति किसान भूमि बहुत कम है, इस कारण आधुनिक वैज्ञानिक ढङ्ग से खेती-बारी नहीं हो सकती। साथ ही वह थोड़ी सी भूमि भी छोटे छोटे टुकड़ो में बटी हुई है, जिसके कारण खेती-बारी की अत्यन्त हीन दशा है। बिखरे हुए छोटे छोटे खेतों पर खेती-बारी करने से किसान अपना समय, श्रम, पशु शक्ति, तथा पूँजी का अपव्यय करता है, और उत्पत्ति बहुत कम होती है। भूमि चकबन्दी समितियां इस ओर प्रयत्न कर रही हैं किन्तु चकबन्दी के कार्य में इतनी कठिनाइयां उपस्थित हो रही हैं कि शीघ्र ही इससे समस्या हल होती नहीं दिखलाई देती। समस्या को हल करने का अत्यन्त सरल उपाय सामूहिक खेती है।

सामूहिक कृषि समितियाँ—सम्मिलित कृषि समितियों को जन्म देने का श्रेय इटली को है। वहाँ पहले बड़े बड़े जमींदार अपनी ज़मींदारी पर न रह कर नगरों में विलासता का जीवन व्यतीत करते थे और अपनी भूमि दूसरे लोगों को उठा देते थे। ये लोग गांव वालों को मजदूर रख कर उस भूमि पर खेती करवाते थे। किसान-मज़दूरों की अत्यन्त शोचनीय दशा थी, सम्मिलित कृषि सहकारी समितियों ने इस प्रथा को नष्ट करने का प्रयत्न किया। सन् १८८६ में क्रिमोना के किसान-मज़दूरों ने एक समिति का संगठन करके एक ज़मींदार से एक बड़ी स्टेट लगान पर ले ली और उसको अपने सदस्यों में बांट लिया। किन्तु ज़मींदार से झगड़ा हो जाने के कारण यह प्रयत्न असफल रहा। सन् १८६४ में, सर्व प्रथम यह प्रयोग मिलन में सफल हुआ। पीछे यह आन्दोलन क्रमशः बढ़ता गया, किन्तु पूँजी की कमी होने के कारण आरम्भ में यह धीरे धीरे ही फैल सका। योरोपीय महायुद्ध के समाप्त होने पर इटली सरकार को यह आवश्यकता प्रतीत हुई कि बेकार सैनिकों को खेतीबारी में लगावे। उसने बहुत सी सरकारी भूमि तथा पूँजी देकर इस प्रकार की समितियों को प्रोत्साहन देना प्रारम्भ किया। इसके उपरान्त समितियों की संख्या क्रमशः बढ़ती गई। इस समय इटली में लगभग ५०० समितियां सफलतापूर्वक कार्य कर रही हैं।

सम्मिलित सहकारी कृषि समितियां दो प्रकार की होती हैं—(१) जिनमें भूमि को सदस्यों में बांट दिया जाता है और प्रत्येक सदस्य अपने खेत पर खेती करता है तथा समिति को लगान देता है; (२) जिनमें भूमि बांटी नहीं जाती, वरन् समिति एक मेनेजर रख कर सदस्यों के द्वारा समस्त भूमि पर खेती करवाती है और

पैदावार समिति इकट्ठी करती है। समिति सदस्यों को निश्चित् मज़दूरी देती है। पहले प्रकार की समितियां कैथोलिक लोगों की हैं और दूसरे प्रकार की समितियां साम्यवादियों की हैं। समिति का रूप क्या होगा यह बहुत कुछ भूमि के ऊपर निर्भर है। जिस प्रकार की समिति के लिये भूमि उपयुक्त होगी, उसी प्रकार की समिति का संगठन किया जावेगा। पहिले प्रकार की समितियों में सदस्य मज़दूरों की भांति न रहकर किसानों की तरह रहते हैं, किन्तु दूसरी प्रकार की समितियों में सदस्य मजदूरों की भाँति रहते हैं।

पहिले प्रकार की समितियां ज़मीदारों से पट्टे ले लेती हैं; पट्टे ६ से १२ वर्ष तक के लिये होते हैं। प्रत्येक सदस्य को उसकी आवश्यकताओं के अनुसार भूमि उतने समय के लिये दी जाती है, जितने समय के लिये समिति को पट्टा मिलता है। भूमि सदस्यों को इस शर्त पर दी जाती है कि वे उसे लगान पर किसी दूसरे को नहीं उठावेंगे, समिति को नियमित रूप से लगान देंगे, तथा भूमि का दुरुपयोग नहीं करेंगे। जब पट्टा बदलता है, तब इस बात की जांच की जाती है कि किसी सदस्य को उसकी आवश्यकताओं से अधिक भूमि तो नहीं मिल गई है। यदि ऐसा होता है तो कुछ परिवर्तन किया जाता है। प्रत्येक सदस्य को खेती बारी के औज़ार अपने निजी रखने पड़ते हैं, किन्तु मूल्यवान बड़े यन्त्र समिति ख़रीद लेती है और उनको किराये पर सदस्यो को दे देती है। समिति सदस्यों की सुविधा के लिये क्रय विक्रय विभाग भी रखती है, जिससे सदस्यों को बीज, खाद, तथा अन्य घरेलू आवश्यक वस्तुएँ उचित मूल्य पर मिलती हैं और उनके खेतों की पैदावार बेची जा सकती है। समिति सदस्यों को पूँजी उधार देती है। किन्तु यह आवश्यक नहीं है कि

प्रत्येक समिति इन सब विभागों को अवश्य रखे। समिति एक कृषि के जानकार को नौकर रखती है; जो सदस्यों को खेती बारी के विषय में उचित परामर्श देता है। सब सदस्यो को अपनी पैदावार का बीमा कराना पड़ता है।

दूसरे प्रकार की समितियां भी भूमि पट्टे पर देती हैं किन्तु भूमि सदस्यों में बांटी नहीं जाती, सामूहिक रूप से उस पर खेती होती है। समिति खेती बारी के औज़ार, यन्त्र, तथा पशु मोल लेती है। समिति के सदस्यो को उन औज़ारों तथा यन्त्रों की सहायता से, समिति के मेनेजर की अधीनता में, खेती बारी करनी पड़ती है। प्रत्येक सदस्य को उसके कुटुम्ब की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए एक छोटा सा भूमि का टुकड़ा दिया जाता है। भूमि का बंटवारा केवल खेती बारी के लिये ही किया जाता है। प्रत्येक वर्ष भूमि का फिर से बंटवारा होता है। खाद और बीज समिति देती है। सदस्य अपने कुटुम्ब वालों की सहायता से खेत पर काम करता है। जुताई, खाद डालने का काम, तथा फ़सल को साफ़ करके अनाज निकालने का कार्य समिति करती है; दूसरे सब काम किसान को करने पड़ते है। किसान को उस खेत की एक-तिहाई पैदावार दे दी जाती है, जो उसके वर्ष भर के भोजन के लिये काफी होती है। किसान को बीज तथा खाद का एक-तिहाई मूल्य भी देना पड़ता है। जब समिति को आवश्यकता होती है, तब सदस्य को उसका कार्य करना पड़ता है। खेती बारी मेनेजर के कहे अनुसार ही करनी पड़ती है। चरागाह की भूमि सदस्यों में नहीं बांटी जाती। आरम्भ में इन समितियों को पूँजी प्राप्त करने में कठिनाई का सामना करना पड़ा किन्तु पिछले योरोपीय महायुद्ध के उपरान्त सरकार सहायता देने लगी। सदस्यों को उनके खेतों की एक-

तिहाई पैदावार मज़दूरी के रूप में मिलती है, तथा बाकी मज
दूरी सिक्के में दी जाती है। सब पैदावार इकट्ठी की जाती
और बेचने पर जो लाभ होता है, वह मज़दूरी के अनुपात
बांट दिया जाता है। समितियां अपना बैंक तथा स्टोर भ
रखती है।

सामूहिक रूप में सम्मिलित खेती-बारी करने वाली समि
तियां एक बड़े कारख़ाने के समान हैं। सदस्यों को मेनेजर
अनुशासन में कार्य करना पड़ता है। मेनेजर अधिकतर श्रमजीव
समुदाय का ही होता है, किन्तु पटु तथा विशेषज्ञ होता है। यदि
कोई सदस्य आज्ञा नहीं मानता तो उसको चेतावनी दी जाती
है, जुर्माना किया जाता है, मज़दूरी काट दी जाती है। अधिक
उद्दण्डता करने पर उसे निकाल भी दिया जाता है, परन्तु यह
नौबत बहुत कम आती है। समिति का सदस्य स्थानीय मज़दूर सभा
का सदस्य होता है। यदि संयोग से कभी समिति तथा सदस्य
में झगड़ा होता है तो मज़दूर सभा की सहायता तथा परामर्श से
उसका फ़ैसला हो जाता है। इटली में कुछ स्थानों पर यह भी
प्रयत्न किया गया कि खेतों को सदस्यों में बिना बांटे, सामू
हिक-सम्मिलित खेती की जावे; किन्तु सफलता नहीं मिली। फ्रांस
जरमनी, आयर्लैंड तथा रूमानिया में इस प्रकार की समितियां
स्थापित की गई हैं।

भारतवर्ष में बम्बई प्रान्त में दो सम्मिलित खेती बारी करने
वाली समितियां स्थापित की गईं, किन्तु वे सफल नहीं हुईं।
यहां इस प्रकार की समितियों की अत्यन्त आवश्यकता है
किन्तु साथ ही इन समितियों को सफलता पूर्वक चलाने लिये योग्य
मेनेजर तथा ऐसे कार्यकर्ताओं की आवश्यकता है, जो गांवों में इस
प्रकार की समितियों की उपयोगिता का प्रचार करें।

सोवियत रूस में सामूहिक सहकारी फार्म — पिछले कुछ वर्षों में, रूस में सहकारी फार्मों की आश्चर्यजनक गति से उन्नति हुई है। एक फार्म एक ही गाँव तक सीमित होता है; कभी कभी एक से अधिक गाँव भी उसमें सम्मिलित होते हैं। सहकारी फार्म के पास २,००० एकड़ से लेकर १२,००० एकड़ तक भूमि होती है। सहकारी फार्म क़ानून द्वारा निर्मित संस्था होती है। उसके पास खेती की भूमि, चरागाह भूमि, फार्म बिल्डिंग, खती के पशु, औजार, गाय, सुअर, भेड़ और मुर्गी सभी आवश्यक सम्पत्ति होती है।

फ़ार्म का प्रबन्ध एक फ़ार्म-कमेटी करती है। प्रतिवर्ष सरकार के औद्योगिक विभाग से उसे सूचना मिलती रहती है कि वह कितनी भूमि पर अनाज इत्यादि बोवे, और कितनी भूमि सरकारी कारखानों के लिए आवश्यक कच्चे पदार्थ उत्पन्न करे।

सरकार ने इन सहकारी फार्मों की सहायता के लिये स्थान-स्थान पर मशीन और ट्रेक्टर स्टेशन स्थापित किये हैं। स्टेशन फ़ार्मों को बीज, खाद इत्यादि बेचते हैं, और बड़े बड़े यन्त्रों को किराये पर देते हैं। प्रत्येक स्टेशन पर एक कृषि विशेषज्ञ रहता है, जो फ़ार्मों को कृषि सम्बन्धी सलाह देता है। जब फ़सल तैयार होती है तो फ़ार्म भूमि की लगान तथा मशीन ट्रेक्टर स्टेशन की सहायता के फीस स्वरूप फार्म की कुल पैदावार का छठा भाग दे देता है। मशीन ट्रेक्टर स्टेशन तथा भूमि की मालगुजारी (कर) दे देने के बाद जो बचता है, वह सामूहिक फार्म का होता है।

शेष पैदावार में से, जितने नकद रुपये की ज़रूरत होती है, उतने की बेच दी जाती है ; और जो रुपया मिलता है, उसमें से मज़दूरी (सदस्यों की), कृषि-टैक्स जो नक़द आमदनी का एक-

चौथाई होता है, और मशीन ट्रैक्टर स्टेशन के खर्चे को छोड़कर अन्य सब खर्चे तथा फार्म का प्रबन्ध-व्यय इत्यादि खर्चों को निपटाया जाता है।

सदस्यों को जो मज़दूरी दी जाती है, वह उनकी कार्यक्षमता के अनुसार भिन्न-भिन्न होती है। फ़ार्म के सारे मज़दूर सदस्य अपनी कार्यक्षमता के अनुसार सात श्रेणियों में बाँटे जाते हैं। जो सदस्य सबसे ऊँची श्रेणी मे होते हैं, उनके एक दिन का काम दो दिन माना जाता है, और जो सबसे नीचे की श्रेणी में होते हैं उनका एक दिन का काम आधा दिन माना जाता है। यह श्रेणी-विभाजन कमेटी करती है।

यह सब कुछ चुकता हो जाने पर जो उपज बचती है, वह सब सदस्यों में बराबर बाँट दी जाती है। वे इस पैदावार को सहकारी समितियों को बेच देते है।

रूस में इन सामूहिक खेतो की बहुत उन्नति हुई है। यह कह सकना कठिन है कि भारत में सामूहिक खेती कहाँ तक सफल हो सकेगी, क्योंकि यहाँ का किसान अपनी पैतृक भूमि को छोड़ना नहीं चाहता; फिर यहाँ ज़मींदार, महाजन तथा व्यापारियों के रूप में बहुत से दलाल हैं, जो उसका विरोध करेंगे। और, सबसे मुख्य बात यह है कि इस प्रकार की खेती के लिए सरकार का पूरा उद्योग होना चाहिए।

सिंचाई समितियां—भारतवर्ष जैसे कृषि-प्रधान देश में जहाँ खेती बारी वर्षा पर ही अवलम्बित है, और जहां वर्षा अनिश्चित है, सिंचाई के महत्व को बतलाने की आवश्यकता नहीं है। देखना है कि सहकारिता के द्वारा किसान स्वयं किस प्रकार सिंचाई के साधन उपलब्ध कर सकते हैं।

यदि वर्षा के शुरू में जो अत्याधिक जल गिरता है वह रोक

लिया जावे, तथा नदियों के द्वारा समुद्र में न बह जाने दिया जावे तो वह सिंचाई के बहुत काम आ सकता है। इसी उद्देश्य से पुराने समय के राजाओं, ज़मींदारों तथा धनिक वर्ग ने वर्षा के जल को रोक रखने के लिये बाँध बनवाये थे। अनुमान किया जाता है कि पश्चिमी बंगाल में लगभग पचास हज़ार बाँध हैं। कालाँतर में कई कारणों से सिंचाई का यह उत्तम साधन नष्ट हो गया; अधिकाँश बाँध मिट्टी से भर गये, और ज़मींदार उनमें धान की खेती कराने लगे। १९१९ में बाँकुरा जिले में अकाल पड़ा, उस समय अधिकारी वर्ग का ध्यान इस ओर गया, और इन बाँधों को फिर से उपयोगी बनाने का प्रयत्न किया गया।

सहकारिता विभाग ने बर्दमान डिवीजन में सहकारी सिंचाई समितियाँ स्थापित की हैं, जिनका उद्देश्य भरे हुए बाँधों और तालाबों को फ़िर से खुदवाना, तथा नये तालाब बनवाना है। सिंचाई समिति परिमित दायित्व वाली होती है, प्रत्येक सदस्य को अपनी भूमि के अनुपात में ही समिति के हिस्से ख़रीदने होते हैं। समिति के पास निजी पूँजी तो होती ही है, आवश्यकता पड़ने पर सेन्ट्रल बैङ्क से ऋण लिया जा सकता है। जब कि बाँध या तालाब तैयार हो जाता है तब प्रति एकड़ सिंचाई क्या ली जानी चाहिये, यह निश्चय किया जाता है। समिति सदस्यों से सिंचाई का शुल्क वसूल करके ऋण चुकाती है, तथा बाँध की मरम्मत करवाती रहती है। इस समय बंगाल में लगभग १००० सिंचाई समितियाँ कार्य कर रही है। अधिकतर समितियाँ बाँकुरा तथा बीरभूमि के ज़िलों में हैं। इन सिंचाई समितियों के कारण लाखों बीघा ज़मीन पर सिंचाई होती है। बङ्गाल में सिंचाई समितियों की माँग तेज़ी से बढ़ रही है।

बङ्गाल के अतिरिक्त, मदरास में भी सिंचाई समितियाँ स्थापित

की गई हैं, जो सदस्यों की भूमि की सिंचाई करती हैं। बर्मा बिहार, उड़ीसा, सयुक्तप्रान्त तथा मैसूर में भी कतिपय सिंचाई समितियां कार्य कर रही है। पंजाब मे भी यथेष्ट संख्या में सिंचाई समितियां हैं, जो नदियों की मिट्टी निकलवाकर उनसे सिंचाई करती है।

खेती बारी की उन्नति करने वाली समितियां — बम्बई प्रान्त मे सहकारिता तथा कृषि विभाग के उद्योग से 'ताल्लुका डिवेलपमैन्ट एसोशियेशन' नाम की संस्थाएँ सन् १९२२ मे स्थापित की गई थीं, क्रमशः इनकी संख्या बहुत तेज़ी से बढ़ती जा रही है। इनके सदस्य सहकारी समितियो के अतिरिक्त वे व्यक्ति भी हो सकते हैं, जो निश्चित फ़ीस दें। इन संस्थाओं का उद्देश्य यह है कि उनके ताल्लुके में खेतीबारी की उन्नति की जावे, सहकारी समितियों का संगठन किया जावे, तथा उनकी देख भाल की जावे।

यह संस्थाएँ कृषि विषयक जानकारी को किसानों में फैलाने का प्रयत्न करती हैं, सहकारी समितियों द्वारा अच्छा बीज, अच्छा यन्त्र, अच्छी खाद किसानों को देती हैं, पशुओं की नसल सुधारने का और, गृह-उद्योग-धन्धों को पुनर्जीवित करने का प्रयत्न करती हैं, तथा किसानों के कष्टों की ओर अधिकारियों का ध्यान आकर्षित करतीं हैं। अभी तक यह संस्थाएँ ऊपर लिखे हुए उद्देश्यों को पूरा नहीं कर सकी हैं। ताल्लुका ऐसोशियेशन को सरकार सहायता देती है। प्रारम्भ में यह विचार किया गया था कि ताल्लुका एसोशियेशन ही सहकारी साख समितियों की देख भाल करें, किन्तु अनुभव से ज्ञात हुआ कि वे इस कार्य को नहीं कर सकतीं।

ताल्लुका ऐसोशियेशनों की देख भाल करने के लिये

डिवीज़नल बोर्ड स्थापित किये गये हैं। बोर्ड के ६ सदस्य होते हैं—दो सरकारी (कृषि विभाग तथा सहकारिता विभाग के कर्मचारी) तथा चार ग़ैर सरकारी, जिनको कृषि विभाग का डायरेक्टर, तथा सहकारिता विभाग का रजिस्ट्रार मनोनीत करता है। बोर्ड इन संस्थाओं के लिये कार्यक्रम बनाता है, इनके कार्य का निरीक्षण करता है, तथा इनमें सरकारी सहायता बांटता है।

बम्बई के अतिरिक्त मद्रास, बंगाल, बर्मा, तथा मध्यप्रान्त में भी खेती बारी की उन्नति करनेवाली समितियां स्थापित की गई हैं। यह समितियां अपने सदस्यों को यन्त्र, उत्तम जाति का बीज, तथा उपयोगी खाद देती हैं; कोई कोई समिति कृषि विभाग की सहायता से वैज्ञानिक ढंग से खेती करने का प्रदर्शन भी करती हैं।

पंजाब प्रान्त में लगभग दो सौ समितियां इस ओर कार्य कर रही हैं, उनको कुछ सफलता भी मिली है। यह समितियां अपने सदस्यों को उत्तम बीज बोने, उपयोगी यन्त्रों का उपयोग करने, तथा आधुनिक ढङ्ग से खेती करने के लिये प्रोत्साहित करती हैं। इन समितियो को केवल सदस्यो में ही सफलता नहीं मिली है, वरन् इनके कार्य का प्रभाव गांव के अन्य किसानों पर भी पड़ा है। कृषि विभाग इन समितियों को ट्रेंड ओवरसियर दे देते हैं, जो वैज्ञानिक ढङ्ग की खेती करने वालों को परामर्श देते हैं।

बिहार उड़ीसा में सेन्ट्रल बैंक अपने सम्बन्धित समितियों के सदस्यो की खेती बारी की उन्नति करने का प्रयत्न करते है। लगभग पचास सेन्ट्रल बैंकों ने कृषि विभाग की सहायता से अच्छी खाद, और उत्तम बीज को बेचना प्रारम्भ कर दिया

है। ये बैंक प्रदर्शन (डिमांस्ट्रेशन) के द्वारा प्रचार कार्य भी करते हैं। इस कार्य के लिये, बैंकों ने कामदार नियुक्त किये हैं, जिनको कृषि विभाग आधुनिक ढङ्ग की खेती की शिक्षा देकर कार्य करने योग्य बना देता है।

संयुक्तप्रान्त में इस ओर अधिक कार्य नहीं हुआ है। सहकारी साख समितियों के द्वारा कृषि विभाग के कर्मचारी आधुनिक ढङ्ग की खेती का प्रचार करते है। दो कृषि सुधार समितियां भी स्थापित की गई हैं।

मदरास में भी खेती की उन्नति करने वाली कुछ सहकारी समितियां हैं, जिन्हे कृषि प्रदर्शन या कृषि सुधार समितियां कहते हैं। यह समितियां अपने सदस्यों को अच्छा बीज और खाद देती हैं।

चारे आदि की सहकारी समितियां—पंजाब तथा बड़ौदा में कुछ समितियाँ चारे को अच्छी फसल के समय इकट्ठा करके उसे अकाल के समय सदस्यों को देने के लिए स्थापित हैं।

पंजाब में लगभग पचास समितियाँ, फसल नष्ट हो जाने पर सदस्यों की सहायता करने के लिए स्थापित की गयी हैं। ये समितियां किसान से हर फसल पर कुछ अनाज लेती हैं, और उसे बेच कर उसका मूल्य किसान के नाम जमा कर देती हैं। साधारणतया सदस्य यह रुपया निकाल नहीं सकता। जिस साल उसकी फसल नष्ट हो जाती है, उसी साल उसको रुपया निकालने की इजाजत मिलती है।

इस प्रान्त में लगभग २६ फल उत्पन्न करने वाली सहकारी समितियां स्थापित की गई हैं। उनका उद्देश्य बागबानी की, वैज्ञानिक ढंग से, उन्नति करना है। उनकी कार्यपद्धति खेती का

सुधार करने वाली समितियों की तरह ही है। वे सदस्यों को अच्छी पौध और खाद देती हैं, और सलाह देती रहती हैं। इनमें से, मरी पहाड़ियों पर ही, १७ समितियां काम कर रही हैं। इसके बाद मुजफ्फरगढ़ की समितियों का नम्बर आता है। यह समितियां अपने सदस्यों को मुरब्बा, चटनी और अचार इत्यादि बनाना सिखाती हैं।

पंजाब में कुछ गाय की नसल सुधारने वाली समितियां भी स्थापित की गई थीं; परन्तु उन्हें विशेष सफलता नहीं मिली है।

पशु सुधार समितियां—प्रत्येक प्रान्त में कुछ समितियां स्थापित की गई हैं, जो अच्छी नसल के पशु उत्पन्न करने का प्रयत्न करती हैं। समितियाँ उत्तम जाति के सांड़ रखती हैं, और सदस्यों के पशुओं की उन्नति करने के दूसरे उपाय भी करती हैं। पंजाब में इस प्रकार की डेढ़ सौ से अधिक समितियां हैं। अन्य प्रान्तों में ऐसी समितियों की संख्या बहुत कम है। यह समितियां चरागाह ले लेती हैं, और अपनी गायों की नसल को सुधारने का प्रयत्न करती हैं।

सोलहवाँ परिच्छेद

उत्पादक सहकारी समितियाँ

—०—

गृह उद्योग धंधों में लगे हुये हमारे कारीगरों की दशा उतनी ही शोचनीय है, जितनी हमारे किसानों की है। गृह-उद्योग-धंधों को एक तो बड़े बड़े कारखानों की प्रतिस्पर्द्धा करनी पड़ती है; दूसरे, कारीगर व्यापारियों के ऋणी होने के कारण उनके

चंगुल में फँसे रहते है। हमारे धन्धे क्रमशः नष्ट हो रहे हैं। इन धंधों की रक्षा का एक मात्र उपाय उनका सहकारी संगठन है। यदि उनको सहकारिता के ढग पर सुसंगठित कर दिया जावे तो कारीगरों की दशा सुधर सकती है और गृह-उद्योग-धंधे भी पनप सकते है।

गृह-उद्योग-धंधो में लगे हुए कारीगरों की दशा कितनी गिरी हुई है, उसका एक उदाहरण यहाँ दिया जाता है। पंजाब में जुलाहों की कहीं कहीं बस्तियाँ बसी हुई हैं। ये जुलाहे कारखानेदार अथवा कपड़े के व्यवसायी के चिरदास होते हैं। कारखानेदार इन जुलाहों को कुछ रुपया पेशगी दे देता है, जिसे बाक़ी कहते हैं। जुलाहे से यह शर्त की जाती है कि वह केवल कारखानेदार को ही तैयार माल बेचेगा। जुलाहा कारखानेदार से ही सूत उधार ले जाता है और उसकी आज्ञानुसार कपड़ा तैयार करके उसे उसी के हाथ बेचता है। कारखानेदार सूत का अधिक मूल्य लगाता है और बुनाई कम से कम देता है। अस्तु, निर्धन जुलाहों को बहुत कम मज़दूरी मिलती है और वे कारखानेदार के चिरदास बने रहते हैं। यही हाल दूसरे धन्धों का है।

गृह-उद्योग-धंधे और उनकी हीन अवस्था—गृह-उद्योग-धंधे दो प्रकार के होते हैं—एक तो वह धंधा, जिसमें लगे मनुष्य केवल उसी पर निर्भर रहते हैं और वही उनका मुख्य पेशा होता है; दूसरे वे धंधे, जिनको किसान खेती बारी से अवकाश पाने पर करता है। उसका मुख्य धधा खेती होता है और वह अपने अवकाश का उपयोग करने के लिये गौण रूप से कोई दूसरा धंधा कर लेता है।

बात यह है कि भारतवर्ष में लगभग ७६ प्रतिशत जनसंख्या केवल खेती बारी पर निर्भर है। गृह-उद्योग-धंधों के नष्ट हो जाने

के कारण उनमें लगी हुई जनसंख्या खेती बारी की ओर चली आई। खेती के योग्य भूमि कम है और खेती करने वालों की संख्या पिछले ८० वर्षों में लगातार बढ़ती गई। इस लिये किसानों के पास भूमि इतनी कम रह गई कि उस पर इतनी पैदावार नहीं होती कि वे अपने कुटुम्ब का भली भाँति भरण पोषण कर सकें। खेती बारी मौसमी धंधा है, यदि किसान के पास यथेष्ट भूमि हो तो भी वर्ष के कुछ महीनों में वह अवश्य बेकार रहेगा, क्योंकि उन दिनों खेतों पर कुछ काम नहीं होता। भारतवर्ष में किसान वर्ष मे चार महीने बेकार रहता है, और कहीं कहीं तो इस अनिवार्य बेकारी का समय छः महीने तक होता है। जब भारतीय किसान की औसत दैनिक आय दो आने से अधिक नहीं है, तब यदि वह अपने अवकाश के समय को और किसी धंधे में लगाकर अपनी थोड़ी-सी आय को बढ़ा सके तो यह धंधे निर्धन किसान के आर्थिक उद्धार का कारण बन सकते हैं। आज ग्रामीण-उद्योग-धंधों की जितनी आवश्यकता भारतवर्ष को है, उतनी अन्य किसी भी देश को नहीं है। किन्तु यह धंधे तभी पनप सकते हैं, जबकि इनका संगठन सहकारिता के सिद्धान्तों के अनुसार हो।

किसानों के लिये निम्नलिखित धंधे उपयोगी हैं—घी-दूध का धंधा, मुर्गी पालने का धंधा, शहद की मक्खी पालने का धंधा, भेड़ पालने का धंधा, रेशम के कीड़ों को पालने का धंधा, गुड़ बनाना, धान (चावल) साफ़ करना, रुई ओटना, सूत कातना. तेल निकालना, रस्सी बंटना, डलिया बनाना तथा चटाई तैयार करना इत्यादि।

इनके अतिरिक्त कुछ ऐसे धंधे भी हैं, जो किसानों के लिये तो उपयोगी नहीं हैं किन्तु जिनमें कारीगर लगे हुए हैं। भाग्यवंश

कुछ ऐसे गृह-उद्योग-धंधे नष्ट होने से बच गये हैं, यद्यपि असंगठित होने के कारण उनकी दशा अत्यन्त शोचनीय है। उनमें ये धंधे मुख्य हैं—सूती, ऊनी, तथा रेशमी कपड़े बुनने का धंधा; दरी तथा कालीन बनाने का धधा, छींट तथा अन्य प्रकार की छपाई तथा रगाई का धंधा; फूल, पीतल, ताँबे, तथा लोहे के बर्तन, खिलौने, तथा मूर्तियाँ बनाने का धंधा; ज़री तथा काढ़ने का धंधा; सोने, चाँदी के ज़ेवर बनाने का धधा; लकड़ी का सामान बनाने का धंधा; मिट्टी के बर्तन तथा खिलौने बनाने का धंधा तथा चमड़े की वस्तुएँ बनाने का धधा इत्यादि।

भारतवर्ष में इस समय गृह-उद्योग-धंधे असगठित दशा में हैं; वे पनप नहीं रहे है। उनमे लगे हुए कारीगर अत्यन्त हीन अवस्था में रहकर अपना उदर पालन कर रहे हैं। धधो की हीन अवस्था के मुख्य कारण तीन है

(१) पूँजी का अभाव। कारीगर को पूँजी उधार लेनी पड़ती है, महाजन तथा व्यवसायी ऋण तो देते हैं, किन्तु सूद इतना अधिक लेते है कि बेचारे कारीगर को धंधे से कुछ लाभ हो ही नहीं सकता।

(२) कच्चा माल खरीदने तथा तैयार माल बेचने की कठिनाई। माल खरीदने तथा बेचने की कला है, जिससे निर्धन कारीगर नितान्त अनभिज्ञ हैं। बात यह है कि ये कारीगर कच्चा माल थोड़ी मात्रा में खरीदते हैं, वह भी अधिकतर उधार। इस लिये उन्हें कच्चे माल का अधिक मूल्य देना पड़ता है, फिर भी माल अच्छा नहीं मिलता। तैयार माल के बेचने में कारीगर को अत्यन्त कठिनाई होती है। वह थोड़ी मात्रा में माल तैयार करता है, इस कारण वह आधुनिक ढंग से बेच नहीं सकता। औद्योगिक उन्नति के युग में माल के लिये बाज़ार में मांग पैदा

करनी पड़ती है, केवल माल तैयार करने से कुछ नहीं होता। माल की बाज़ार में खपत करने के लिये विज्ञापनबाज़ी करनी होती है. एजन्ट तथा कनवैसर भेजने पड़ते हैं, माल का नुमायशों तथा दूकानों मे प्रदर्शन करना पड़ता है। किसान यह सब कुछ नहीं कर सकता, क्योंकि वह थोड़ी मात्रा में माल तैयार करता है और वह इस कला को जानता भी नहीं।

(३) सङ्गठन का अभाव। कारीगर पुराने ढंग से पुरानी डिज़ाइन का माल तैयार करता है। जनता की रुचि बदलती रहती है किन्तु अशिक्षित कारीगर को इसका ज्ञान नहीं होता; यदि वह जान भी जाता है कि जनता कौनसी वस्तु मांगती है तो उसे नवीन वस्तु के तैयार करने की शिक्षा देने वाला कोई नहीं होता। बुनकर को ही ले लीजिये। नई डिजाइन के कपड़े वह तैयार नहीं कर सकता। आधुनिक समय में, जबकि फ़ैशन शीघ्रता से बदलता रहता है, बुनकर कभी अपने धन्धे की उन्नति नहीं कर सकता, जब तक कि वह जनता की रुचि के अनुसार बढ़िया डिजाइन तैयार नहीं करेगा। अस्तु, कारीगर को परामर्श, तथा नवीन प्रणाली से माल तैयार करने की शिक्षा देने के लिये संगठन की आवश्यकता है।

भारतीय औद्योगिक कमीशन ने प्रान्तों में गृह-उद्योग-धन्धों को प्रोत्साहन देने के लिये तथा मिलों और कारखानों की उन्नति के लिये औद्योगिक विभाग स्थापित करने की सलाह दी थी। यद्यपि प्रत्येक प्रान्त में औद्योगिक विभाग स्थापित हो गये, किन्तु अभी तक वे गृह-उद्योग-धन्धों की उन्नति के लिये कुछ भी नहीं कर सके। हाँ; पंजाब, मदरास, बिहार, उड़ीसा, तथा मैसूर में ऐसे एक्ट अवश्य पास किये गये हैं, जो प्रान्तीय सरकारों को उद्योग-धन्धों की सहायता करने का अधिकार देते हैं। अभी

इस दिशा में कुछ विशेष कार्य नहीं हो सका है।

सहकारी उत्पादक समितियां— यदि गृह-उद्योग-धंधों का संगठन सहकारी समितियों के द्वारा किया जावे तो ये सब कठिनाइयाँ दूर की जा सकती हैं। उत्पादक सहकारी समितियां प्रत्येक धन्धे में लगे हुए कारीगरों का संगठन करेंगी। एक समिति एक ही धन्धे का सगठन कर सकेगी। समिति परिमित दायित्व वाली होगी। प्रत्येक सदस्य समिति का हिस्सा खरीदेगा। समिति डिपाज़िट भी स्वीकार करेगी, तथा सेन्ट्रल बैङ्कों से पूँजी उधार लेगी। हिस्सा-पूंजी, डिपाज़िटें, तथा ऋण समिति की कार्यशील पूँजी होगी। सदस्यों को केवल साख देने का प्रबध कर देने से ही समिति उनकी अवस्था नहीं सुधार सकती। समिति को वे सब कार्य करने होंगे, जो व्यवसायी करता है। व्यवसायी कारीगर को ऋण देता है, कच्चा माल बेचता है, तथा तैयार माल खरीदता है। यदि समिति केवल साख का ही प्रबंध करके रह जायगी तो कारीगर कच्चा माल खरीदने, तथा तैयार माल बेचने में लूटा जावेगा और जो कुछ उसे कम सूद देने के कारण लाभ हुआ, वह व्यवसायी की भेंट हो जावेगा। यदि उत्पादक समितियां वास्तव में कारीगर की आर्थिक उन्नति करना चाहती हैं तो उन्हें व्यवसायी को क्षेत्र से बिलकुल ही हटाना होगा, अर्थात् उसके सब कार्य अपने हाथ में लेने होंगे। भारतवर्ष में एक तो उत्पादक सहकारी समितियां बहुत कम हैं; दूसरे, वे केवल साख का ही प्रबंध करके रह गईं।

जब तक उत्पादक सहकारी समितियां सदस्यों के लिये उचित मूल्य पर कच्चा माल खरीदने तथा तैयार माल बेचने का प्रबंध नहीं करतीं, तब तक गृह-उद्योग-धंधे पनप नहीं सकते। किन्तु इतने से ही धन्धे का सङ्गठन पूर्ण नहीं हो सकता। समिति

को कारीगरों को आधुनिक वैज्ञानिक ढङ्ग से वस्तुएँ तैयार करने की शिक्षा दिलानी होगी और उत्तम औजारों तथा यन्त्रों का प्रचार करना होगा।

यह सब कार्य केवल सहकारी समिति सफलतापूर्वक नहीं कर सकती. क्योंकि तैयार माल के बेचने के लिये विज्ञापन देने, बाजार का अध्ययन करने, एजन्ट तथा कनवैसर भेजने, तथा प्रदर्शनियों का आयोजन करने की आवश्यकता होती है। यह कार्य एक समिति की शक्ति के बाहर है। अस्तु, समितियों को एक यूनियन में अपने को सङ्गठित कर लेना आवश्यक है। यूनियन कुछ कर्मचारी रखकर यह सब कार्य करेगी। उदाहरण के लिये यदि बुनकरों की एक यूनियन स्थापित की जावे तो यूनियन बुनाई-कला को जानने वाले कुछ ऐसे विशेषज्ञ नौकर रखेगी, जो घूम घूम कर कुछ समय प्रत्येक समिति के सदस्यों को नई डिज़ाइन का कपड़ा तैयार करना, अच्छे करघे के लाभ, तथा अन्य आवश्यक सुधारों की शिक्षा देंगे। यूनियन विज्ञापन के द्वारा समितियों के कपड़े का प्रचार करेगी, भिन्न भिन्न स्थानों पर स्टोर स्थापित करके कपड़े को बेचने का प्रबन्ध करेगी, तथा एजन्ट और कनवैसर रखेगी। यूनियन बाज़ार का अध्ययन कर के समितियो को यह सूचना दिया करेगी कि किस प्रकार के कपड़े की बाज़ार में अधिक मांग है। समितियां उसी प्रकार के कपड़े को सदस्यों से तैयार कराया करेंगी। यूनियन प्रति वर्ष प्रदर्शनी का आयोजन करेगी। इससे दो लाभ होंगे—एक तो उस क्षेत्र के कारीगर एक दूसरे के काम को देख सकेंगे और प्रतिस्पर्धा की भावना से अपनी उन्नति करेंग; दूसरे, माल का प्रचार होगा। समिति, कच्चा माल व्यापारियों से न खरीद कर, उत्पन्न करने वालों से खरीदेगी और सदस्यों को देगी। सदस्यों

को कच्चा माल उचित मूल्य पर मिलेगा। सदस्य तैयार माल समिति को दे जावेगा। समिति कुछ रुपया उसी समय सदस्य को देगी। बाक़ी रुपया माल बिकने पर चुकाया जावेगा। समिति प्रति शत कुछ कमीशन लेगी। वर्ष के अन्त में जो लाभ होगा वह सदस्यों मे उस अनुपात से बांट दिया जावेगा, जिस अनुपात में वे समिति के पास तैयार माल बेचने लावेंगे। इस प्रकार उत्पादक सहकारी समितियां गृह उद्योग-धन्धो का संगठन कर सकती हैं। यदि हम चाहते हैं कि गृह-उद्योग-धन्धे पनपें तो हमे उत्पादक सहकारी समितियाँ स्थापित करनी होंगी। योरोप में इस प्रकार की समितियां अत्यन्त सफलतापूर्वक कार्य कर रही हैं।

बुनकर समितियाँ—भारतवर्ष में बुनाई का धन्धा अत्यन्त प्राचीन है। किसी समय हमारे बुनकरों की ख्याति संसार भर में फैली हुई थी और भारतवर्ष में बना हुआ कपड़ा एक अलभ्य वस्तु समझी जाती थी। लेकिन राजनैतिक पतन के साथ ही हमारे धन्धों का भी पतन हो गया और सस्ते, विलायती मिलों में बने हुए, कपड़ों ने तो इस धन्धे की कमर ही तोड़ दी। किन्तु इस गये गुजरे जमाने में भी बुनाई का धन्धा जीवित है। अर्थशास्त्रज्ञों की सम्मति है कि इस गृह-उद्योग-धन्धे ने ऐसी प्रतिकूल अवस्था में भी आश्चर्यजनक जीवन-शक्ति का परिचय दिया है। इससे ज्ञात होता है कि यदि इस धंधे का ठीक प्रकार से संगठन किया जावे तो यह मिलों की प्रतिद्वन्दिता में टिक सकता है। करघों द्वारा बुनाई के धन्धे की महत्ता तो इसी से प्रकट है कि वर्ष भर में भारतवर्ष में जितने कपड़े की खपत होती है उस का २५ से ३० प्रति शत करघों पर तैयार होता है।

अनुमान किया जाता है कि भारतवर्ष में लगभग एक करोड़

बुनकर इस धन्धे में लगे हुए हैं। इसमें सूती, रेशमी और ऊनी कपड़ा तैयार करने वाले, तथा दरी और कम्बल तैयार करने वाले सभी सम्मिलित हैं। अस्तु, यह स्वाभाविक था कि पहले बुनकर सहकारी समितियां स्थापित की जातीं। भारतवर्ष के प्रत्येक प्रान्त में बुनकर सहकारी समितियां स्थापित की गई हैं। बुनकर सहकारी समितियों की संख्या भिन्न भिन्न प्रान्तों में जुदा जुदा है। इन समितियो को अभी पूरी सफलता नहीं मिली। इसका कारण यह है कि ये बहुत कम स्थानों पर व्यवसायियों को हटा सकी हैं। अब यह प्रयत्न हो रहा है कि समितियों को यूनियन में संगठित किया जावे, तथा तैयार माल बेचने, कारीगरों को औद्योगिक शिक्षा देने और तैयार माल बेचने का आयोजन हो। यह होने पर ये समितियां अपने उद्देश्य में सफल हो सकती हैं।

मदरास—मदरास प्रान्त में सहकारी समितियों ने बुनकरों को संगठित किया किन्तु उन्हें बहुत अधिक सफलता नहीं मिली। इसके कारण ये हैं—(१) बुनकरों की अज्ञानता और उदासीनता, (२) तैयार माल को बेचने की कठिनाई (३) व्यापारियों का विरोध, (४) बुनकरों में व्यवसायिक ढंग न होना और अपनी समितियो के संचालन योग्य व्यक्तियों का न होना (५) सूत के मूल्य में भारी कमी बेशी होना। इस समय प्रान्त में लगभग २०० बुनकर समितियां काम कर रही हैं, और लगभग १२ लाख रुपये का कपड़ा तैयार करती हैं।

१९३५ तक यह समितियां बुनकरों को केवल साख ही देती थीं। १९३५ में भारत सरकार ने प्रान्तों को हाथ-करघे के धंधे की उन्नति के लिए सहायता दी। उस सहायता का पूरा उपयोग करने के लिए प्रांतीय सरकारों ने हाथ-करघे के बुनकरों की प्रांतीय

सहकारी समितियां स्थापित कीं। प्रान्तीय समिति सूत तथा अन्य कच्चा माल और कर्घे अपने से सम्बन्धित समितियों को मोल देती है, समितियों के तैयार माल को बेचने का प्रबन्ध करती है, तथा समितियों को आर्थिक तथा अन्य प्रकार की सहायता देती है।

प्रान्तीय समिति ने मुख्य मुख्य नगरों में भंडार स्थापित किये हैं, जिनमें सम्बन्धित समितियों का तैयार माल बिकता है। उसने एक फिनिशिंग प्लांट भी खड़ा किया है, जिसमें समितियों के सदस्यों के बने हुए कपड़े का 'फिनिश' (अन्तिम परिष्कार) किया जाता है।

पंजाब—पंजाब में औद्योगिक समितियों की विशेष रूप से उन्नति हुई है। सब मिलाकर वहां ३५६ औद्योगिक समितियां हैं, जिनमें २०७ बुनकरों की, ६३ चमारों की, ३१ बढ़इयों की, १६ लुहारों की, तथा ६ तेलियों की, और शेष समितियां भिन्न भिन्न पेशे वालों की हैं। औद्योगिक समितियों की स्थापना युद्ध की मांग के कारण और भी अधिक बढ़ गई। कुछ समितियां तो केवल सेना के लिए आवश्यक वस्तुएँ तैयार करने के लिए स्थापित की गई हैं।

बुनकर समितियां सारे प्रान्त में फैली हुई हैं। वे निम्नलिखित कार्य करती हैं—पूँजी देना, कच्चा माल और औज़ार देना, तैयार माल को बेचना, सदस्यों को हुनर की शिक्षा देना, और उनमें स्वावलम्बन की भावना जागृत करना।

समितियाँ अपरिमित दायित्व वाली हैं, और वे अमृतसर के औद्योगिक सहकारी बैंक से सम्बन्धित हैं। समितियां बैंक से ऋण लेकर सूत इत्यादि खरीदती हैं। सदस्यों को कच्चा माल ही उधार दिया जाता है। तैयार माल को बेचने के

लिए समितियां निम्नलिखित उपाय काम में लाती है :—

(१) वे माल के लिए आर्डर लेती हैं, और सदस्यों से बनवा-कर उसे सप्लाई कर देती हैं।

(२) वे भिन्न भिन्न स्थानों पर प्रदर्शनी करती हैं।

(३) उन्होंने लाहौर, शिमला, देहली, जालंधर, करनाल, होशियारपूर, लुधियाना अमृतसर और गुजरात इत्यादि प्रमुख नगरों में सम्मिलित विक्री भंडार खोल रखे हैं, जो समितियों का माल बेचते हैं।

(४) वे राज्य के भिन्न भिन्न विभागों, म्यूनिसपेलटियों और ज़िला-बोर्डों से आर्डर लेती हैं। युद्ध के समय में उन्हे सेना के आर्डर बहुत मिले हैं।

संयुक्तप्रान्त—इस प्रान्त में संडीला, टांडा, बाराबंकी और बनारस में बुनकर समितियां स्थापित की गई हैं, जिन्होने बुन-करों को संगठित किया है, किन्तु उन्हे विशेष सफलता नहीं मिली।

बम्बई—बम्बई में ४० बुनकर समितियां हैं। आरम्भ में वे बुनकरों को केवल साख ही देती थीं किन्तु अब प्रान्त मे आठ औद्योगिक यूनियन स्थापित की गई हैं। यह औद्योगिक यूनियनें बुनकरो को आधुनिक डिज़ाइन के कपड़े तैयार करने की शिक्षा देती हैं, अच्छे कर्घों का प्रचार करती हैं, सूत और रंग देती हैं, और तैयार माल को अपने भंडारों से बेचती है।

बंगाल—बंगाल में लगभग ३६० बुनकर समितियाँ, सवा सौ मछुओं की समितियाँ और ८० रेशम उत्पन्न करने वालों की समितियां हैं। बंगाल की बुनकर समितियाँ, अधिकतर सदस्यों को साख ही देती हैं। रेशम-समितियों की दशा बहुत अच्छी नहीं है। बिहार और उड़ीसा में भी कुछ बुनकर सहकारी

समितियां हैं, किन्तु उनकी दशा कुछ सन्तोषजनक नहीं है।

विश्वव्यापी युद्ध के कारण सैनिक आवश्यकताओं को पूरा करने के उद्देश्य से प्रत्येक प्रान्त में सहकारिता विभाग ने कुछ औद्योगिक समितियों का सङ्गठन करने का प्रयत्न किया है। इस समय बाजार में वस्तुओं की कमी तथा ऊंचे मूल्य के कारण वे सफल प्रतीत हो रही हैं, किन्तु युद्ध के उपरान्त कारखानों में बने हुए माल की प्रतिस्पर्द्धा में वे टिक सकेंगी, यह कहना कठिन है।

—०—

सतरहवाँ परिच्छेद

उपभोक्ता स्टोर, गृह-निर्माण और बीमा समितियां

—०—

इस परिच्छेद में तीन विषयों का विचार करना है। पहले उपभोक्ता स्टोर की बात लें। मनुष्य-समाज का प्रत्येक सदस्य अपनी आवश्यकताएँ पूरी करने के लिए कुछ न कुछ वस्तुओं का उपभोग करता है। इस तरह वह उपभोक्ता है। यदि देखा जावे तो उत्पादन करने वाले, तथा उपभोग करने वालों का घनिष्ठ सम्बन्ध है। एक वर्ग दूसरे वर्ग पर निर्भर है, किन्तु उत्पादन करने वालों तथा उपभोग करने वालों के बीच में इतने दलाल हैं कि वे एक दूसरे से बहुत दूर पड़ जाते हैं। दलाल (अर्थात् व्यापारी) जो मूल्य उत्पादकों को देते हैं, उससे बहुत अधिक उपभोक्ताओं से वसूल करते हैं। यही नहीं कि उपभोक्ताओं को वस्तुओ का मूल्य अधिक देना पड़ता है, वरन वस्तुओं में मिलावट होती है तथा वे अच्छी नहीं होतीं। सहकारी स्टोर दलालो को अपने स्थान से हटा कर उपभोक्ताओं को उचित

मूल्य पर वस्तुओं के देने में सफल हुए हैं।

सर्व प्रथम इंगलैंड में राकडेल नामक स्थान के बुनकरों ने अपनी आवश्यक वस्तुएँ खरीदने के लिये सहकारी स्टोर चलाया था। इसलिए इन बुनकरों को ही इस आन्दोलन का सूत्रधार माना जाता है। संसार को उपभोक्ता सहकारी स्टोर जैसी उपयोगी संस्था देने वाले इन बुनकरों का इतिहास बहुत आकर्षक है। सन् १८४४ में फ़लालैन बुनने वाले २८ बुनकरों ने, जो अत्यन्त निर्धन थे, किन्तु जिनमें विश्वास, धैर्य, साहस,और बुद्धिमत्ता कूट कूट कर भरी थी, एक दूकान खोली। इन बुनकरों के पास केवल २८ पौंड पूँजी थी, किन्तु इनमें उत्साह बहुत था, उसके कारण ये सफल हो गये।

इसके पूर्व, राबर्ट ओवन के नेतृत्व में कुछ स्टोर खुले थे, किन्तु वे सब असफल रहे; कारण यह था कि वे स्टोर वस्तुएं उधार देते थे और उनका मूल्य बाजार से कम रखते थे। राकडेल के बुनकरों ने वस्तुओं को नकद और बाजार भाव पर बेचना प्रारंभ किया। वर्ष के अन्त में खर्च काट कर जो लाभ होता. उसको ये सदस्यों में उनकी खरीद के अनुपात में बांट देते थे। इन, बुनकरों ने एक हिस्से का मूल्य एक पौंड रखा। दो पैंस प्रति सप्ताह क़िस्त लेकर पूँजी इकट्ठी की, और आरम्भ में केवल पाँच वस्तुओं को बेचने का प्रबन्ध किया—मक्खन, शक्कर, ओट (जई) का आटा, मोमबत्ती, तथा गेहूँ का आटा। स्टोर सौदा उधार नहीं देता था, किन्तु वस्तुए शुद्ध तथा तौल में पूरी होती थीं। यदि कभी स्टोर को अधिक पूँजी की आवश्यकता होती तो किसी सदस्य से निश्चित सूद की दर पर उधार ले ली जाती। प्रत्येक सदस्य की एक वोट थी। एक-तिहाई लाभ

सुरक्षित कोष में रखा जाता था, एक-तिहाई सदस्यों को बांट दिया जाता था, और शेष एक-तिहाई शिक्षा पर व्यय किया जाता था। सदस्यों को उत्साहित किया जाता था कि वे अपने लाभ का हिस्सा स्टोर में जमा कर दें. इस प्रकार स्टोर की पूँजी बढ़ती गई। सदस्यों की जमा, और हिस्सा-पूँजी पर निश्चित सूद दिया जाता था।

राकडेल के बुनकरों ने अपने स्टोर का प्रबन्ध ऐसा अच्छा किया कि शीघ्र ही नये सदस्य बनने लगे तथा स्टोर की उन्नति होने लगी। क्रमशः स्टोर सदस्यों को सब आवश्यक वस्तुएँ देने लगा। बिक्री बढ़ने लगी। तब वस्तुओं को उत्पन्न किया जाने लगा। आरम्भ में स्टोर ने जूते बनाने तथा कपड़े सीने के विभाग खोले। धीरे-धीरे उत्पादन-कार्य बढ़ता गया। इस स्टोर की आशातीत सफलता देखकर उत्तर इङ्गलैंड मे शीघ्र ही बहुत से स्टोर खुल गये।

इन स्टोरों की सफलता देख कर फुटकर विक्रेता चौंके और उन्होंने इनका विरोध करना शुरू किया। जब फुटकर विक्रेता विरोध मे सफल न हुए, तब उन्होंने थोक व्यापारियों पर यह ज़ोर डाला कि वे स्टोरों को वस्तुएँ अधिक मूल्य पर दें। अब सहकारी स्टोरो के सामने एक नई समस्या उपस्थित हुई। इस समस्या को हल करने के लिये इङ्गलैंड तथा स्काटलैंड के स्टोरो ने दो होलसेल सोसाइटी स्थापित कीं। होलसेल सोसाइटी थोक व्यापारियों से माल न लेकर सीधे मिलो और कारख़ानों से माल ख़रीदकर अपने सदस्य-स्टोरो के हाथ बेचने लगीं। इस प्रकार थोक व्यापारियों को भी सहकारी आन्दोलन ने अपने स्थान से हटा दिया और उनके लाभ को उपभोक्ताओं के लिये सुरक्षित कर लिया। इसके उपरांत इङ्गलैण्ड तथा स्काटलैण्ड के

स्टोरों ने मिल कर सहकारी यूनियन की स्थापना की। इस यूनियन का मुख्य कार्य विज्ञापन, प्रचार, शिक्षा, तथा आन्दोलन की देखरेख करना है।

क्रमशः आन्दोलन तीव्र गति से बढ़ता गया और स्टोरों की संख्या बढ़ती गई। तब होलसेल सोसायटियों ने उत्पादन कार्य भी अपने हाथ मे ले लिया।

१८७३ में इङ्गलैंड की होलसेल सोसायटी ने उत्पादन कार्य करने का निश्चय किया। उसी वर्ष सोसायटी ने मैचेस्टर का बिस्कुट तथा मिठाई बनाने का कारखाना खरीद लिया। कुछ समय के बाद एक बूट फैक्टरी खोली गई। क्रमशः उत्पादनकार्य उन्नति करता गया तथा दो बूट फैक्टरियां और खोली गईं। इसके उपरांत साबुन, मुरब्बे, मोमबत्ती, कपड़े धोने का पाउडर, फ़लालेन, मोजे, बनियान, फ़र्नीचर, कपड़े, बुरुश, तम्बाकू, सिगरेट, आटा, छापेखाने, लोहा, टिन, तेल, तथा अन्य आवश्यक वस्तुएं बनाने के कारखाने खोले गये। यही नहीं, पीछे जाकर, एक कोयले की खान भी खरीद ली गयी।

१८७६ में सोसायटी ने अपनी वस्तुओं को लाने तथा लेजाने के लिये जहाज़ खरीदे। सोसायटी ने इङ्गलैण्ड में अनाज, तरकारी तथा फल उत्पन्न करने के लिये फार्म खरीद लिये हैं। आसाम में इसने चाय के बाग लगाये हैं, जिनसे स्टोरों के सदस्यों को चाय मिलती है। इङ्गलैण्ड में इसके हजारों स्टोर खुल गए है।

गेहूँ उत्पन्न करने के लिये सोसायटी ने कनाडा में दस हज़ार एकड से अधिक भूमि का एक फ़ार्म ख़रीदा है। पश्चिम अफ्रीका में भी भूमि ख़रीदी गई है। सोसायटी नेजीवन, अग्नि दुर्घटना, तथा अन्य प्रकार का बीमा करना आरम्भ कर दिया है।

सोसायटी, बैंकिंग, गृह-निर्माण, पत्रिका प्रकाशन, तथा बीमारों के लिये स्वास्थ्य-गृह बनाने का कार्य भी करती हैं।

स्काटलैंड होलसेल सोसायटी ने भी अपने सदस्यों के लिये आवश्यक वस्तुएँ बनाने के कारखाने चलाये हैं, तथा भूमि मोल ले कर खेतीबारी करना आरम्भ किया है।

इन दोनो सोसाइटियो ने बीमा तथा कुछ अन्य कार्य सम्मिलित रूप से किये हैं। इन्होने ल्यूटन मे कोको का एक कारखाना खोला है।

होलसेल सोसायटी के सदस्य-स्टोर, सोसायटी के हिस्से खरीदते हैं। जिस स्टोर के जितने सदस्य होते हैं, उसी के अनुपात में स्टोर को हिस्से खरीदने पड़ते हैं। केवल स्टोर ही इसके सदस्य बन सकते हैं। स्टोर को माल बाज़ार के थोक भाव से बेचा जाता है। वार्षिक लाभ स्टोरो में उनकी खरीद के अनुपात में बांट दिया जाता है। होलसेल सोसायटी ने सदस्य-स्टोरों की सुविधा के लिये शाखाएँ खोल दी हैं, तथा प्रत्येक प्रमुख मण्डी में वस्तुओं को खरीदने के लिये एजंसियां स्थापित कर दी हैं।

होलसेल सोसायटियो के कारखानो में मज़दूरो की दशा साधारण कारखानों से अच्छी है, और उनको मज़दूरी भी कुछ अधिक मिलती है। उनके स्वास्थ्य तथा आमोद प्रमोद का प्रबंध किया जाता है। काम करने के घन्टे भी कुछ कम होते हैं, प्रत्येक मज़दूर को वर्ष में दो सप्ताह की छुट्टी वेतन सहित मिलती है। मज़दूरो के लिये प्राविडेंट फंड भी होता है। स्काटलैंड की सोसायटी के कारखानों में मज़दूर सोसायटी के हिस्से ले सकते हैं; प्रबंधकारिणी समिति में उनके भी प्रतिनिधि रहते हैं।

सदस्य—स्टोर अपने प्रतिनिधि चुनकर होलसेल सोसायटी की मीटिंग मे भेजते हैं। ये प्रतिनिधि संचालक-बोर्ड का चुनाव

करते हैं। भिन्न भिन्न विभागों तथा कारखानों के मेनेजरों की नियुक्ति डायरेक्टर करते हैं। डायरेक्टर लोग भिन्न भिन्न विभागों की देख भाल करते हैं।

भारतवर्ष में उपभोक्ता स्टोर

भारतवर्ष में सहकारी स्टोरों का आन्दोलन पिछले योरोपीय महायुद्ध के बाद बहुत बढ़ा। उस समय सरकार ने भोज्य पदार्थों का नियन्त्रण अपने हाथ में ले लिया था। जैसे ही यह नियन्त्रण हटा, स्टोरों की संख्या घटने लगी। बहुत से स्टोर बन्द हो गये और बहुतों का दिवाला निकल गया। इसका मुख्य कारण यह है कि सदस्य आन्दोलन के मुख्य सिद्धान्त को भूल जाते हैं। वे समझते है कि स्टोर सस्ती चीज़ बेचने के लिये खोला गया है। फल यह होता है कि जब बाज़ार भावगिरने लगता है तो सदस्य स्टोर से चीज़ें न खरीद कर दूसरे दूकानदारों से खरीदने लगते हैं। स्टोर फ़ेल हो जाता है। सिद्धान्त तो यह है कि वस्तुओं को बाजार भाव पर बेचा जावे; किन्तु चीज़ें अच्छी हों और तौल पूरी हो।

असफलता का दूसरा मुख्य कारण है सौदा उधार देना। उधार देना स्टोर तथा सदस्य दोनों के लिये हानिकारक है। सदस्य को ऋण लेने की आदत पड़ जाती है। जब वह दैनिक जीवन की आवश्यक वस्तुओं को उधार लेने लगता है तो वह व्यर्थ के कामो मे रुपया फेंकने लगता है। स्टोर को सौदा उधार देने के कारण थोक व्यापारियों से माल उधार लेना पड़ता है।

इन स्टोरों का प्रबन्ध भी ठीक नहीं रहता और व्यय अधिक होता है; यह भी उनकी असफलता का कारण है। एक कारण यह भी है कि यहाँ होलसेल सोसायटियाँ नहीं हैं, इससे स्टोर को माल ऊँचे मूल्य पर मोल लेना पड़ता है।

इनके अतिरिक्त, एक कारण यह भी है कि भारतवर्ष में बनिया बहुत कम लाभ पर काम करता है। महीने के अन्त मे दाम लेता है और बड़े बड़े नगरो में तो वह घर पर ही सामान दे जाता है। अन्य देशो मे उपभोक्ता स्टोर अधिकतर मजदूरो के लिए स्थापित किये जाते हैं परन्तु भारतवर्ष में कारखानों के क्षेत्र में मज़दूर स्थायी रूप से नही रहते, वे अपने गाँवो को चले जाते हैं। इसलिए वे ऐसे कार्यों में उत्साह नहीं दिखलाते। यहां तो निम्न मध्यम श्रेणी ही इनका अधिकतर उपयोग कर सकती है। हाँ, जैसे जैसे मज़दूर वर्ग अधिक सुसंगठित होते जावेंगे, वे उपभोक्ता स्टोरों का अधिकाधिक उपयोग करने लगेंगे।

मदरास में केवल मदरास के ट्रिपलीकेन सहकारी स्टोर ने बड़ी मात्रा में काम करके आश्चर्यजनक सफलता प्राप्त की है। यह स्टोर ६ अप्रेल १६०४ को खोला गया। आरम्भ में दो कर्मचारी रखे गये, एक मेनेजर दूसरा बेचने वाला। दोनो का वेतन आठ रुपया मासिक था। स्टोर के जन्म-दाताओ ने अपना बहुत सा समय स्टोर की देखभाल में देना शुरू किया। जहां तक होता, व्यय कम किया जाता था। १६०५ में स्टोर रजिस्टर कर लिया गया। जब लोगों ने इस स्टोर को चलते देखा, तब वे प्रभावित हुए और सदस्यों की संख्या क्रमशः बढ़ने लगी। २५ जनवरी १६३० को स्टोर की जुबली मनाई गई। उस अवसर पर जुबली-हाल की नींव मदरास गवर्नर ने डाली थी। इस भवन के बनवाने में स्टोर ने लगभग २५ हज़ार रुपये व्यय किये थे।

आर्थिक मन्दी के समय में ट्रिपलीकेन स्टोर के व्यापार की गति बहुत धीमी हो गई। लाभ बहुत कम हो गया और मूलधन

भी घट गया। किन्तु १९३८ के उपरांत फिर स्टोर का व्यापार यकायक चमक उठा। अब उसकी ३३ शाखाएँ हैं; सदस्यों की संख्या सात हज़ार के लगभग है। वह प्रति मास एक लाख रुपये से अधिक की बिक्री करती है। बिक्री इन चीजों की होती है—अनाज, चावल, गुड़, शक्कर, तेल, मसाला, सूखे फल, चाय कहवा, साबुन, आटा, दाल घी और मक्खन। स्टोर मक्खन लेकर उसका घी बनाता है, जिससे सदस्यों को शुद्ध घी मिल सके। स्टोर तेल, बिस्कुट, मिठाई और औषधियाँ भी बेचता है, किन्तु वह अभी तक फल, तरकारी, दूध और दही बेचने का प्रबन्ध नहीं कर सका। यह स्टोर अभी तक मदरास की केवल ५ प्रतिशत जनसंख्या को ही सुविधा देता है उसके सदस्य अधिकांश पढ़े लिखे लोग हैं,मज़दूर उसके सदस्यों में हैं ही नहीं। इन सदस्यों का स्टोर से सामान खरीदने का कारण यह नहीं है कि उनमें सहकारिता की भावना है, परन्तु वे सुविधा, तौल और भाव में धोखा न खाने के लिए स्टोर से सामान खरीदते हैं। स्टोर ने अभी तक कभी भी खरीद पर दो पैसे फी रुपया से अधिक बोनस नहीं बांटा। यह इतना कम है कि सदस्यों को कोई विशेष आकर्षण नहीं है। फिर भी यह स्टोर भारतवर्ष की एक महत्वपूर्ण संस्था है।

हाल में युद्ध-जनित कठिनाई के कारण प्रान्तीय सरकार ने ट्रिप्लीकेन स्टोर को आर्थिक सहायता देकर २५ शाखें और खुलवाई हैं, जो नागरिकों को अनाज, दाल, तेल, शक्कर तथा अन्य दैनिक आवश्यकताओं की चीजें देती हैं।

ट्रिप्लीकेन स्टोर के सिवाय मदरास में युद्ध छिड़ने के पहले केवल ८५ स्टोर थे, जो अधिकतर कालेजों, रेलवे तथा कारखानों में स्थापित थे; किन्तु लड़ाई छिड़ते ही उपभोक्ता स्टोरों की संख्या

बहुत तेज़ी से बढ़ी, क्योंकि जनता को दैनिक आवश्यकताओं की चीज़ों के मिलने मे बहुत कठिनाई होने लगी। इस समय इनकी संख्या ३०० के करीब है। किन्तु युद्ध के उपरान्त यह टिक सकेंगे, इसमे सदेह है।

मैसूर—मैसूर में स्टोर आन्दोलन कुछ सफल हुआ है। इस राज्य में बंगलोर का स्टोर उल्लेखनीय है, यद्यपि यह ट्रिपलीकेन स्टोर से छोटा है। इसके अतिरिक्त अन्य स्टोर अधिकतर रेलवे, मिलो तथा आफ़िसो के कर्मचारियो के लिये हैं और अधिकारियो के संरक्षण मे कार्य कर रहे है। मैसूर मे स्टोर सौदा उधार भी दे देते हैं। वहां लगभग ८० स्टोर है, जो खाने पीने का सामान और कपड़ा बेचते है।

बम्बई - बम्बई में स्टोर आन्दोलन असफलरहा,इसका मुख्य कारण यह है कि परचून की दूकानें बम्बई में अत्याधिक हैं। इस कारण थोक तथा फुटकर मूल्य में अन्तर कम है। दूकानदार सामान घर पर पहुँचा देता है, और मास के अन्तमें हिसाब कर ले जाता है। इन दूकानदारों से प्रतिस्पर्धा करना कठिन है, क्योंकि इनका खर्चा बहुत कम है। वहां २५ स्टोर काम कर रहे हैं, जिनमे बी० बी० सी० आई० रेलवे का स्टोर मुख्य है।

सयुक्तप्रान्त.—इस प्रान्त मे लगभग २५ स्टोर हैं, जो कालेजों तथा सर्वसाधारण की सेवा करते है। इस दिशा में यह प्रान्त बहुत पिछड़ा हुआ है।

इनके अतिरिक्त बंगाल, आसाम, पंजाब, सिंध, बिहार-उड़ीसा, तथा मध्यप्रान्त में भी कुछ स्टोर है; परन्तु उन्हें विशेष सफलता नहीं मिली। देशी राज्यों में यद्यपि ट्रांवकार में ५२, और बड़ौदा में ३० स्टोर हैं, परन्तु वहां भी यह आन्दोलन सफल नहीं हुआ है।

स्टोर की सफलता के लिए आवश्यक है कि सदस्य स्टोर के प्रति अपना कर्तव्य समझें। प्रबन्धकारिणी समिति के सदस्य अपना समय स्टोर के प्रबन्ध में लगावें, सौदा उधार न दिया जावे और नियमों का पालन किया जावे।

अभी तक सहकारिता आन्दोलन के कार्यकर्ताओं का ध्यान गांवों की ओर नहीं गया। भारतवर्ष तो गांवों का देश है। और गाँवों में बनिया किसान को लूटता है। अस्तु, गांव वालों को उनकी आवश्यक वस्तुएँ देने का प्रबन्ध किया जावे तो विशेष हित हो। किन्तु गांवों में केवल स्टोर ही सफल नहीं होगा। आवश्यकता यह है कि कोई ऐसी समिति हो, जो इस कार्य के साथ बिक्री इत्यादि का भी कार्य करे।

सहकारी गृह-निर्माण समितियाँ

सहकारी गृह-निर्माण समितियां दो तरह की होती हैं—(१) जिनमे मकान का मालिक कोई व्यक्ति होता है। (२) जिनमें समिति सामूहिक रूप से मालिक होती है।

पहले प्रकार की समितियां दो प्रकार की होती हैं। एक तो स्थायी, दूसरी अस्थायी। अस्थायी गृह निर्माण समितियां वे हैं, जो एक निश्चित संख्या में सदस्य बनाती हैं। प्रत्येक सदस्य को मासिक या साप्ताहिक चन्दा देना होता है। यदि कोई सदस्य समिति को छोड़ दे तो उसके स्थान पर नया सदस्य लिया जा सकता है। जब चन्दा जमा हो जाता है तब लाटरी डालकर रुपया एक सदस्य को दे दिया जाता है, और उस का मकान बन जाता है। मकान समिति के पास गिरवी रहता है, और सदस्य सूद सहित ऋण किस्तों में चुकाता रहता है। इसी प्रकार सब सदस्यों के मकान तैयार हो जाते हैं। समिति उस समय तक

नहीं तोड़ी जाती, जब तक सबकी क़िस्तें न चुक जावें। सब ऋण चुक जाने पर रुपये का हिसाब किया जाता है, तथा लाभ को बांटकर समिति तोड़ दी जाती है।

स्थायी समिति मे सदस्यो की संख्या निश्चित नहीं होती। सदस्यो को समिति के हिस्से ख़रीदने पड़ते है। समिति डिपाज़िट लेती है, तथा ऋण भी लेती है। समिति नये सदस्य बनाती जाती है और जैसे जैसे रुपया मिलता जाता है, सदस्यों को ऋण देती है। कुछ बड़ी समितियां इंजीनियर, सर्वे करने वालों तथा अन्य कर्मचारियो को नौकर रखती है, जो सदस्यो को परामर्श देते हैं। सदस्यों को इस सहायता के लिये एक निश्चित फ़ीस देनी पड़ती है। सदस्यों को मकान के ऊपर ऋण दिया जाता है और एक निश्चित समय में रुपया चुका देना पड़ता है। समिति मकान की लागत का तीन-चौथाई ऋण देती है, एक-चौथाई रुपया सदस्य को लगाना पड़ता है। प्रत्येक इमारत का बीमा कराया जाता है। बीमा समिति के नाम होता है।

कुछ समितियां मकान स्वयं बनवाती हैं। मकान सदस्यों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए बनवाये जाते हैं। सदस्य उन मकानों में किरायेदारों की तरह रहते हैं, वे यदि चाहें तो प्रति मास किराये के अतिरिक्त कुछ रुपया मकान के मूल्य को चुकाने के लिये दे सकते हैं। जब मकान का मूल्य चुक जाता है, तब मकान सदस्य का हो जाता है। किन्तु इस प्रकार वही समितियां मकान बना सकती हैं जिनके पास यथेष्ट पूँजी हो। इङ्गलैंड के उपभोक्ता स्टोर तथा फ्रैंडली सोसायटियां अपनी बेकार पूँजी को मकानों में लगा देती हैं। इस प्रकार की समितियों का जिनमें सदस्य मकान का मालिक हो जाता है, एक बड़ा दोष यह है कि सदस्य को यह अधिकार हो जाता है

कि यदि वह चाहे तो मकान को बेच दे। इसका फल यह होता है कि समितियों द्वारा बनाये हुये मकान ऐसे लोगों के पास पहुँच जाते हैं, जो उनको बेचकर लाभ उठाने का प्रयत्न करते हैं।

इस दोष को दूर करने के लिये बम्बई में एक नवीन योजना काम में लाई गई है। इस योजना में समिति भूमि या तो पट्टे पर लेती है या फिर मोल ले लेती है। समिति उस भूमि पर सड़कें बनाती है, फिर भूमि को छोटे छोटे प्लाटों मे बांट देती है। यह प्लाट सदस्यों में बांट दिये जाते हैं। कुछ भूमि सार्वजनिक हित के लिये समिति अपने हाथ में रखती है। उदाहरण के लिये पार्क, वाचनालय, खेलने के लिये तथा अन्य ऐसे ही कार्यों के लिये भूमि रख ली जाती है। यदि समिति ने भूमि पट्टे पर ली है तो सदस्य को प्लाट समिति के पट्टे से एक साल कम के पट्टे पर मिलेगा। यदि समिति ने भूमि मोल ली है तो सदस्य को प्लाट ९९९ साल के पट्टे पर दिया जाता है। शर्त यह होती है कि जब कभी वह भविष्य में मकान अथवा प्लाट बेचे तो खरीदने का पहिला अधिकार समिति को, अथवा समिति जिस सदस्य के लिये कहे, उसको होगा। प्रान्तीय सरकार इस प्रकार की समितियों के सदस्यों को उनकी दी हुई पूँजी से दुगना ऋण देती है। किन्तु किसी एक सदस्य को १०,०००) रु० से अधिक ऋण नहीं दिया जा सकता। सदस्य को २० साल में ऋण चुका देना पड़ता है। समिति या तो स्वयं मकान बनाती है अथवा निर्धारित प्लाट पर सदस्यों को मकान बनाने देती है। जब मकान बन जाते हैं तो समिति उस छोटे से उपनिवेश की म्यूनिसपेल्टी का कार्य करती है।

यह तो उन समितियों की बात हुई, जिनमें मकान का

मालिक कोई एक व्यक्ति होता है। अब उन समितियों का विचार करें जो सामूहिक रूप से मकान की मालिक होती है। इस प्रकार की समिति एक बड़ा प्लाट ख़रीदती है और उस पर सदस्यो की आवश्यकतानुसार मकान बनाती है। सदस्य मकानों में किरायेदारों की भांति रहते हैं। सदस्य मकान की लागत की १/५ से लेकर १/३ तक पूँजी, समिति को देते है। बाक़ी पूँजी समिति इमारतो की जमानत पर डिबेञ्चर बेच कर इकट्ठी करती है। इंगलैंड मे इन समितियों के डिबेञ्चर जनता खूब ख़रीदती है। किन्तु भारतवर्ष में ऐसा नहीं है। इस कारण प्रान्तीय सरकार समितियों को ५॥ प्रति शत सूद पर ऋण दे देती है। १९१७ में भारत सरकार ने एक प्रस्ताव पास करके प्रान्तीय सरकारों को यह अधिकार दिया था कि वे गृह-निर्माण-समितियों को ऋण दे सकें।

इस प्रकार की समितियों में, इमारतों की मालिक समिति होती है, और समिति को सदस्य ही चलाते हैं; इस कारण उनसे अधिक किराया नहीं लिया जा सकता। मकानों का किराया, एक निश्चित सिद्धान्त पर तय किया जाता है। यदि कोई सदस्य चाहे तो नोटिस देकर मकान छोड़ सकता है। समिति वह मकान किसी दूसरे सदस्य को दे देती है। नया सदस्य जो पूँजी देता है, वह जाने वाले सदस्य को दे दीजाती है।

बम्बई में सबसे पहले सारस्वत सहकारी गृह-निर्माण समिति स्थापित हुई। समिति ने इम्प्रूवमेन्ट ट्रस्ट से ९९९ साल के पट्टे पर भूमि लेकर इमारतें बनवाईं। यह समिति सामूहिक स्वामित्व वाली है। सदस्यों ने एक-तिहाई पूँजी दी, तथा बाकी ऋण लिया गया। मकानों का किराया निर्धारित करते समय लगान टैक्स, रेट (शुल्क), अग्नि-बीमा, मरम्मत, पूँजी पर सूद, तथा सिंकिंग-

फंड इत्यादि सब खर्चों का हिसाब लगाया जाता है। सिंकिंग-फंड इस लिये आवश्यक होता है कि ८० या १०० वर्षों के उपरांत जब इमारतों को फिर से बनवाना पड़े, तो उनके लिये पूँजी मिल जाय।

अस्तु, इमारतों की लागत का १/३ प्रति शत इस फंड में जमा कर दिया जाता है, और यह द्रव्य इकट्ठा होता रहता है। प्रान्तीय सरकार ने ऋण देने के अतिरिक्त, लैंड एक्विजिशन एक्ट में संशोधन करके सहकारी समितियों को अपने लिये भूमि पाने की सुविधा प्रदान करदी है।

बम्बई प्रान्त में ६६ गृह-निर्माण-समितियाँ काम कर रही हैं। इनमें ५० तो केवल अहमदाबाद में हैं, और शेष बम्बई तथा अन्य स्थानों में हैं। इन समितियों की कुल कार्यशील पूँजी एक करोड़ बीस लाख रुपये है। सिंध में लगभग ३० गृह-निर्माण समितियां हैं, जिनमें से अधिकांश कराँची में हैं। मदरास मे १२२ गृह-निर्माण समितियाँ हैं, जिनकी कार्यशील पूँजी २१ लाख रुपये से अधिक है। बम्बई और मदरास को छोड़कर अन्य प्रान्तों में दो-चार ही गृह-निर्माण समितियाँ हैं। हाँ, देशी राज्यों में, मैसूर मे २८ समितियां हैं जिनकी कार्यशील पूँजी १२ लाख रुपये है।

भारतवर्ष में बड़े शहरों मे निम्न मध्यमश्रेणी के लोगों के लिये मकान की समस्या बहुत कठिन है। यदि गृह-निर्माण समितियाँ स्थापित की जा सके तो यह समस्या हल हो जावे। किन्तु अभी तक यह आन्दोलन धनी मध्यमवर्ग को ही कुछ सुविधा पहुँचा सका है। पश्चिमी देशों में गृह-निर्माण समितियाँ अधिकतर मिल-मजदूरों के लिए स्थापित की गई हैं, किन्तु भारतवर्ष में अभी तक कोई समिति मजदूरों के लिए नहीं

खोली गई।

सहकारी बीमा समितियाँ

अन्य देशों मे मनुष्यों तथा पशुओ का जीवन बीमा करने के लिये भी सहकारी बीमा समितियां स्थापित की गई हैं। भारतवर्ष मे पशुओ का जीवन बीमा करने वाली समितियों की बहुत आवश्यकता है। क्योंकि इस देश की अधिकांश जनसंख्या खेती करती है। ग़रीब किसान की अगर कोई कीमती चीज़ होती है तो वह गाय बैल, तथा भैंस ही हैं। पशुओ की बीमारियां इस देश में इतनी अधिक हैं कि उनके कारण प्रति वर्ष लाखों पशुओं की मृत्यु हो जाती है। ग़रीब किसान को कर्ज़ लेकर बैल खरीदने पड़ते है, इस कारण पशु-बीमा समितियां किसान को इस जोखिम से बचाने के लिये ज़रूरी हैं। पजाब तथा बर्मा मे कुछ पशु-बीमा समितियां स्थापित भी की गईं, किन्तु उनको अधिक सफलता नहीं मिली। कारण यह है कि जब तक पशुओं की मृत्यु-संख्या सम्बन्धी आंकड़े ठीक ठीक मालूम न हो तब तक यह हिसाब नहीं लगाया जा सकता कि अमुक उम्र के पशुओं का बीमा करने में कितनी जोखिम उठानी पड़ेगी। हाँ, सहकारी बीमा समितियां मनुष्यों का जीवन-बीमा बिना किसी कठिनाई के कर सकती हैं और अन्य बीमा कम्पनियों की प्रतिस्पर्धा में सफल भी हो सकतीं हैं, क्योंकि सहकारी ढंग से काम अधिक मितव्ययिता पूर्वक किया जा सकता है। भारतवर्ष मे ५ सहकारी जीवन-बीमा समितियां इस समय काम कर रहीं है। इनमें मदरास, बम्बई, बड़ौदा और हैदराबाद की जीवन-बीमा सहकारी समितियां अधिक सफल हुई हैं। बंगाल की समितिको अधिक सफलता नहीं मिली।

अभी हाल में मदरास में एक सहकारी बीमा समिति

स्थापित की गई है, जो अग्नि, मोटर, दुर्घटना, इत्यादि सभी प्रकार का बीमा-कार्य करती है। भारत जैसे गरीब देश में सहकारी बीमा समितियों की बहुत आवश्यकता है, क्योंकि वे कम खर्चीली होती हैं।

—०—

अठारहवाँ परिच्छेद

अन्य सहकारी समितियां

—०—

पिछले परिच्छेदों में कई प्रकार की सहकारी समितियों के बारे में ब्योरेवार लिखा जा चुका है। सहकारी समितियों के और भी बहुत से भेद हैं। हम शेष भेदों में से कुछ मुख्य मुख्य का इस परिच्छेद में विचार करेंगे। मूल सिद्धान्त सब के एक से ही हैं, और वे पहले बताये जा चुके हैं।

शिक्षा सहकारी समितियाँ—भारतवर्ष में, शहरों तथा बड़े बड़े कस्बो में सरकार, म्यूनिसपेल्टी, जिला-बोर्ड, तथा अन्य ग़ैर-सरकारी संस्थाओं ने शिक्षा का कुछ प्रबन्ध किया है, जिससे वहां के रहने वालों को अपने बालक पढ़ाने में अधिक अड़चन नहीं होती। परन्तु भारतीय ग्रामों की ओर से तो मानो सब ही उदासीन हैं। जब तक गांवों में शिक्षा का प्रचार नहीं कर दिया जाता तब तक गांवों का सुधार होना कठिन है। सहकारिता के द्वारा गांवों में शिक्षा का प्रचार किया जा सकता है। क्या ही अच्छा हो, यदि सरकार शिक्षा सहकारी समितियों को आर्थिक सहायता देकर ग्रामीण शिक्षा का कार्य उनको सौंप दे। इन समितियों की सफलता के लिये यह आवश्यक

है कि शिक्षक उत्साही हो। देश में इस समय शिक्षित नवयुवक वर्ग में भीषण बेकारी फैली हुई है, यदि सर्वव्यापी ग्रामीण शिक्षा आन्दोलन किया जावे और योग्य शिक्षित नवयुवकों को गांवों मे शिक्षा-कार्य करने की शिक्षा दी जावे तो सफलता मिल सकती है।

पञ्जाब—पञ्जाब में दो प्रकार की समितियां है—एक, प्रौढ़ों के लिये; दूसरी, बच्चो के लिये। प्रौढ़ो को शिक्षा देने वाली समितियों के सदस्यों को प्रति मास फ़ीस देनी पड़ती है, निर्धनों से फ़ीस नहीं ली जातीं, सदस्यों को स्कूल मे नियमित रूप से हाजरी देनी पड़ती है। जो मास्टर बालकों के स्कूल का शिक्षक होता है, उसी को कुछ मासिक वेतन देकर रख लिया जाता है। इस प्रकार के स्कूलो को आगे चल कर डिस्ट्रिक्ट बोर्ड ले लेता है। पञ्जाब में प्रौढ़ों को शिक्षा देने वाली लगभग १०० समितियां कार्य कर रही हैं।

बालकों को अनिवार्य शिक्षा देने वाली समितियों के सदस्य बालकों के माता पिता होते हैं। माता पिता को अपने बालकों को स्कूल में भेजने की प्रतिज्ञा करनी होती है, और प्रति मास कुछ फीस देनी पड़ती है, जिससे शिक्षक का वेतन दिया जाता है। इस समय पञ्जाब में डेढ़ सौ के लगभग समितियां शिक्षा देने का कार्य कर रही हैं।

संयुक्तप्रान्त—संयुक्तप्रान्त में पञ्जाब की ही भांति प्रौढ़ों को शिक्षा देने वाली समितियां स्थापित की गई हैं। इन समितियों की संख्या तीस के लगभग है, जिनमे तीन स्त्रियो के लिये हैं। संयुक्तप्रान्त में इन स्कूलों का उपयोग प्रचार-कार्य के लिये खूब हो रहा है। कृषि, स्वास्थ तथा शिक्षा विभाग के कर्मचारी इन

स्कूलों में जाकर गांव वालों को उपयोगी बातें बतलाते हैं। अब यह प्रयत्न किया जा रहा है कि शिक्षकों की पत्नियों को शिक्षा देकर उन्हें स्त्रियों की शिक्षा का कार्य सौंपा जावे।

बिहार उड़ीसा—बिहार उड़ीसा में सात्र समितियों ने गांवों में पाठशालाएँ स्थापित करके शिक्षा को खूब प्रोत्साहन दिया है। प्रति वर्ष यथेष्ट संख्या में पाठशालाएँ स्थापित की जाती हैं। सेन्ट्रल बैङ्क भी इन पाठशालाओं को प्रति वर्ष यथेष्ट आर्थिक सहायता देते हैं। खेद का विषय है कि जिला-बोर्ड अभी तक इन पाठशालाओं को पर्याप्त सहायता नहीं दे रहे हैं। कुछ बैङ्क पाठशाला की इमारत के लिये भी आर्थिक सहायता देते हैं। दो स्थानों में समितियों के सदस्यों ने पाठशाला के लिये भूमि दान दे दी है।

बङ्गाल—बङ्गाल में बहुत सी समितियां गांव की शिक्षा का आयोजन करती हैं, और रात्रि-पाठशालाएँ भी चलाती हैं। बङ्गाल में गांजा उत्पन्न करने वालों की समिति, तथा कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर की विश्व-भारती का कार्य विशेष उल्लेखनीय है।

बम्बई—बम्बई में समितियां पाठशालाओं को आर्थिक सहायता देती हैं। धारवार ज़िले में सहकारी शिक्षा समितियाँ भी स्थापित की गई हैं।

कश्मीर—कश्मीर में कुछ अनिवार्य सहकारी शिक्षा समितियां स्थापित की गई हैं, जिनके सदस्यों को अपने बालकों को अनिवार्य शिक्षा दिलाने की प्रतिज्ञा लेनी होती है। प्रौढ़ों के लिये भी समितियां स्थापित की जा रही हैं। सहकारिता विभाग भविष्य में शिक्षा विभाग की सहायता से अधिकाधिक समितियाँ स्थापित करने का प्रयत्न कर रहा है।

श्रमजीवी समितियाँ—सहकारी श्रमजीवी समितियों को सर्वप्रथम स्थापित करने का श्रेय इटली को है। इनका उद्देश्य ठेकेदारों को हटा कर स्वयं ठेके लेकर अपने सदस्यों द्वारा काम कराना है। आरम्भ मे इन समितियो ने सड़कों को बनाने, साधारण इमारतो को तैयार करने तथा अन्य साधारण कार्यों के ठेके लिये, किन्तु अब तो ये समितियां बड़े से बड़े कार्य करती हैं। यहां तक कि रेलवे लाइन डालने, तथा खानों को खोदने का काम भी करने लगी हैं। यह आन्दोलन १८८० में प्रारम्भ हुआ, और १९०० से यह उन्नति करने लगा। पिछले योरोपीय महायुद्ध के उपरान्त यह तीव्र गति से बढ़ने लगा। राज्य ने इन समितियों को खूब अपनाया, उसने इन समितियों को आर्थिक सहायता दी, तथा सरकारी संस्थाओं, म्यूनिसपेलिटियों, तथा अन्य संस्थाओ का सारा कार्य इन्हीं समितियों को दिया।

भारतवर्ष में बम्बई तथा मद्रास प्रान्तों में इस प्रकार की समितियां स्थापित की गई हैं। बम्बई में दो समितियां इस समय कार्य कर रही हैं; बेलगांव जिले में हुकेरी श्रमजीवी समिति अछूतों के लिये स्थापित की गई है। यह समिति सदस्यों को कुछ रुपया पेशगी दे देती है और बाद में मज़दूरी में से काट लेती है। यह समिति ठेके लेती है। दूसरी समिति भड़ौंच में इमारतें बनाने वाले मज़दूरो की है। बम्बई मे दो समितियां और भी स्थापित की गईं थीं किन्तु वे सफल नहीं हुई।

मद्रास प्रान्त में ६० से कुछ ऊपर श्रमजीवी समितियां हैं। समितियां सड़क बनाने का काम, लकड़ी काटने का काम, गाड़ी से माल ढोने का काम तथा मिट्टी खोदने का काम करती है। मद्रास प्रान्त के रजिस्ट्रार ने वार्षिक रिपोर्ट में इन समितियों का उल्लेख करते हुये लिखा है कि सरकारी

विभाग, ज़िला बोर्ड, तथा म्यूनिसपेलटी इन समितियाँ को प्रोत्साहन नहीं देते, इस कारण ये समितियां ठेकेदारों की प्रतिस्पर्धा में खड़ी नहीं हो सकतीं।

ट्रावंकोर राज्य में राज्य के प्रोत्साहन तथा सहानुभूति के कारण श्रमजीवी समितियां सफलता पूर्वक कार्य कर रही हैं।

यदि प्रान्तीय सरकार, जिला बोर्ड, और म्यूनिसपेलटी श्रमजीवी समितियों को प्रोत्साहन देने की नीति स्वीकार कर लें, तो यह आन्दोलन सफलता पूर्वक सब प्रान्तों में चलाया जा सकता है। यदि हमारे देश की प्रान्तीय सरकारें इन समितियों को आर्थिक सहायता देने लगें तो शीघ्र ही ये समितियाँ ठेकेदारों को हटा कर ठेके ले सकती हैं और मज़दूर वर्ग की आर्थिक उन्नति कर सकती है।

रहन सहन सुधार समितियाँ—भारतीय ग्रामों में सामाजिक तथा धार्मिक कार्यों पर बहुत अधिक अपव्यय होता है यद्यपि किसान निर्धन होता है फिर भी जन्म, मरण, तथा विवाहोत्सव के समय पर जाति बिरादरी को दावत देने में, तथा अन्य कार्यों में कर्ज़ लेकर व्यय कर देता है। इस अपव्यय को रोकने के लिये कुछ प्रान्तों में समितियां स्थापित की गई हैं। पंजाब में और संयुक्तप्रान्त में इन समितियों ने प्रशंसनीय कार्य किया है। पंजाब के रजिस्ट्रार का कथन है कि जिन स्थानों पर ये समितियां स्थापित हो गई हैं, वहाँ के रहने वालों को इनके द्वारा प्रति वर्ष हज़ारों रुपये की बचत होती है। जो मनुष्य इन समितियों के सदस्य होते हैं, वे तो नियमानुसार इस प्रकार का अपव्यय कर ही नहीं सकते, साथ ही वे अन्य किसी मनुष्य के विवाहोत्सव में सम्मिलित नहीं हो सकते, जहाँ इस प्रकार का अपव्यय किया जावे।

इस प्रकार समिति का प्रभाव ग़ैर सदस्यों पर भी पड़ता है। समिति, विवाह तथा अन्य उत्सवों में कितना व्यय होना चाहिये, यह निश्चित करती है; और जो सदस्य नियमानुसार कार्य नहीं करता, उस पर जुर्माना करती है। ये समितियाँ गांवों की सफ़ाई का कार्य भी करती हैं; गलियों को साफ़ तथा उनको एकसा करवाती हैं। कुछ समितियाँ गांव वालों को हवा का महत्व बतलाकर मकानों में खिड़की बनवाती हैं। ये समितियाँ ज़ेवर बनवाने का भी विरोध करती हैं क्योंकि आर्थिक दृष्टि से तो यह हानिकर है ही, साथ ही चोरों का भी भय रहता है। ये समितियाँ सदस्यों को बाध्य करती हैं कि खाद गड्ढों में डालें; जिससे कि गांव गन्दा न हो और खाद उत्तम हो। पंजाब में एक समिति ऐसी है, जिसके सदस्यों ने कंडे न बनाने और सारे गोबर की खाद बनाकर खेतों में डालने का निश्चय किया है। सब समितियों की संख्या पंजाब प्रान्त में लगभग ३०० है। ये समितियां इस बात का प्रयत्न करती हैं कि अपव्यय कम हो। कश्मीर राज्य में सहकारी साख समितियों ने यह नियम बना लिया है कि यदि कोई सदस्य सामाजिक कार्यों पर अधिक व्यय करे तो उस पर जुर्माना किया जावे।

पिछले वर्षों में संयुक्तप्रान्त में ये समितियाँ हज़ारों की संख्या में स्थापित की गई हैं। अधिकांश समितियां प्रान्त के पूर्वी भाग में हैं। सब समितियाँ ग्राम-सुधार विभाग की देखरेख में सड़कों की मरम्मत करती हैं, कुए खोदती हैं, तालाबों को साफ रखती हैं, औषधालय चलाती हैं, गाँव की सफ़ाई करती हैं, स्कूल खोलती हैं, सामाजिक कृत्यों पर फ़िजूलखर्ची रोकती हैं, अच्छे बीज और खाद देती हैं, वैज्ञानिक ढंग की खेती का प्रचार करती हैं और पशुओं की नसल का सुधार करती हैं। संक्षेप में ग्राम-

सुधार सम्बन्धी जितने भी कार्य होते हैं. सभी करती हैं। पंजाब में भी ग्राम-सुधार के लिए इन समितियों का खूब प्रयोग किया जा रहा है। बंगाल में भी इनकी स्थापना हुई है।

पंजाब में एक अत्यन्त उपयोगी संस्था को जन्म दिया गया है, वह है मुक़दमे तय करने वाली समितियां। आज हमारे देश में मुक़दमेबाज़ी का रोग बहुत बुरी तरह से फैला हुआ है। प्रत्येक गांव वर्ष भर मे हज़ारो रुपये वकीलों और अदालत को भेंट कर देता है। घर में भोजन नहीं है, किन्तु कर्ज़ लेकर, पशुधन बेचकर, हमारे मूर्ख किन्तु निर्धन किसान भाई मुक़दमे लड़ते हैं। इस भयंकर अपव्यय के लिये पंजाब में लगभग ५० सहकारी समितियाँ स्थापित की गई है। समिति की पंचायत के सदस्यों के मुक़दमों का फ़ैसला करती है। यदि पंचायत समझौता नहीं करा पाती तो पंच नियुक्त कर दिये जाते हैं और वे फ़ैसला करते हैं। पंचों का फैसला अदालत को मान्य होता है। किन्तु ऐसे बहुत कम अवसर आते हैं, जब कि समिति को फैसला अदालत के द्वारा मनवाना पड़े। सदस्य स्वयं फैसले को मान लेते हैं। संयुक्तप्रान्त में पंचायतें स्थापित की गई हैं, जो मुक़दमों का फ़ैसला करती हैं।

मितव्ययिता सहकारी समितियाँ—भारतवर्ष में नौकरी पेशा लोगों तथा मज़दूरों में मितव्ययिता के भाव जागृत करने की अत्यन्त आवश्यकता है, क्योंकि इस देश में सामाजिक तथा धार्मिक कृत्यों में मनुष्य को अत्याधिक व्यय करना पड़ता है। ग्राम निवासी को कुछ-न-कुछ अवश्य बचाना चाहिये; नहीं तो उसे बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ता है। मितव्ययिता सहकारी समितियाँ अपने सदस्यों से प्रति मास उनके वेतन में से कुछ लेकर जमा करती हैं तथा उस रुपये को किसी लाभदायक

कार्य में लगाकर अपने सदस्यों के लिये सूद प्राप्त करती हैं। दो या चार वर्षों के उपरान्त वह रुपया सूद सहित वापिस कर दिया जाता है। ये समितियाँ अधिकतर क़र्ज़ नहीं देतीं; हाँ, कुछ समितियाँ जितना रुपया जमा हो जाता है, उसका ६० फ़ी सदी क़र्ज़ दे देती हैं। यदि समिति जमा किये हुए रुपये से अधिक क़र्ज़ दे दे तो वह मितव्ययिता समिति नहीं रह जाती, वह साख समिति हो जाती है।

पंजाब में लगभग १००० मितव्ययिता समितियाँ हैं, जिनमें लगभग आठ लाख रुपये जमा हैं। इन समितियों में अधिकतर अध्यापक ही सदस्य होते हैं। किन्तु कुछ वकील, पुलिस मेन, रेलवे कमचारी तथा दूकानदार भी इन समितियों के सदस्य हैं। पंजाब में सवा सौ समितियाँ केवल स्त्रियों की हैं, जिन्होंने एक लाख रुपये जमा कर लिये हैं। इस प्रान्त में स्कूलों के विद्यार्थी के लिये भी मितव्ययिता समितियां स्थापित की गई हैं। एक स्कूल की समिति ने एक नई योजना निकाली है। विद्यर्थियों से जंगलों की कुछ चीज़ों को इकट्ठा करने के लिए कहा जाता है; जब वे चीजें अधिक राशि में इकट्ठी हो जाती हैं तो बेच दी जाती हैं और विद्यार्थियों के नाम उनका रुपया जमा कर लिया जाता है।

मदरास में ऐसी लगभग सवा सौ समितियाँ हैं; संयुक्त-प्रान्त, अजमेर-मेरवारा; और बम्बई में भी थोड़ी सी समितियाँ मज़दूरों में सफलता पूर्वक कार्य कर रही हैं। यह समितियाँ अपने सदस्यों को होम-सेफ़ (छोटी तिजोरी) देकर कुछ रुपया बचाने की आदत डाल सकती हैं। बम्बई, बिहार, तथा संयुक्तप्रान्त में कुछ समितियों ने ऐसा किया भी है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि यदि मितव्ययिता का प्रचार किया जावे तो यथेष्ट

रुपया जमा किया जा सकता है।

बङ्गाल तथा बिहार में सहकारी साख समितियों ने मुठिया पद्धति चलाई है। प्रति दिन प्रत्येक सदस्य से मुट्ठी भर चावल अथवा और कोई अनाज लिया जाता है और उसको बेचकर सदस्यों के नाम रुपया जमा कर दिया जाता है। बङ्गाल के एक ज़िले में सहकारी साख समितियों ने १९२९ में मुठियों द्वारा प्राप्त अन्न ८३,००० रु० को बेचा, गाँवों में मितव्ययिता का प्रचार करने का यह ढङ्ग अच्छा है।

अन्न-गोला—किसान को निर्धन होने के कारण अपना अनाज फसलकटते ही बेच देना पड़ता है; उस समय बाज़ार मे भाव गिरा रहता है। इसका फल यह होता है कि किसान के पास इतना अनाज नहीं रहता कि वह अपने कुटुम्ब का वर्ष भर भरण पोषण कर सके। उसे महाजनों से डयोढ़े पर अनाज उधार लेना पड़ता है। अन्न-गोला किसान को उस समय जब कि भाव गिरा होता है अनाज नहीं बेचने देता, वह किसान को अनाज उधार देता है तथा यथेष्ट अनाज एकत्रित कर लेता है, जिससे कि उसका उपभोग अकाल के समय हो सके।

गोला अपरिमित दायित्व वाली संस्था होती है। साधारण सभा को सब अधिकार होते हैं; प्रबन्धकारिणी सभा रोजमर्रा के काम की देखभाल करती है। गोले की पूँजी अनाज की डिपाजिट, अनाज के दान तथा अनाज के ऋण से इकट्ठी होती हैं, सदस्य केवल प्रवेश-फीस अनाज में नहीं देते। समिति अधिक से अधिक कितना अनाज डिपाज़िट के रूप में ले सकती है, तथा कितना उधार ले सकती है, इसका निश्चय साधारण सभा करती है। प्रत्येक सदस्य गोले को अनाज की, सभा द्वारा

निर्धारित, राशि देता है, जो उसे कुछ वर्षों में सूद सहित वापिस देदी जाती है। गोला सदस्यों को ही अनाज उधार देता है; अनाज बीज के लिए, कुटुम्ब के पालन के लिए, तथा अधिक सूद पर लिए हुए अनाज को वापिस देने के लिए, दिया जाता है। सूद २५ फी सदी लिया जाता है। अनाज के गोले बिहार-उड़ीसा, पंजाब, मैसूर तथा कुर्ग में पाये जाते हैं।

—०—

उन्नीसवाँ परिच्छेद

निरीक्षण, प्रचार और शिक्षा

—०—

भारतवर्ष में सहकारिता आन्दोलन को सरकार ने चलाया, जनता ने स्वयं नहीं चलाया। बात यह है कि भारतीय जनता विशेष कर किसान अशिक्षित, तथा कर्जदारी के बोझ से ऐसा दबा हुआ है कि उसको अपने आर्थिक सुधार की आशा ही नहीं रही। आत्मनिर्भरता तथा स्वावलम्बन के भाव ग्रामीण जनता से लुप्त हो चुके थे, इस कारण राज्य को ही इस आन्दोलन का श्रीगणेश करना पड़ा।

ऐसी दशा में यह स्वाभाविक ही था कि सरकारी अधिकारी, रजिस्ट्रार ही इस आन्दोलन का सर्वेसर्वा हो जावें। आरम्भ में रजिस्ट्रार को आन्दोलन चलाने के लिये प्रचार कार्य, समितियों का संगठन, उनकी देखभाल, निरीक्षण, आय-व्यय निरीक्षण, सहकारिता आन्दोलन से संबंध रखने वाले साहित्य का अध्ययन, जनता में आन्दोलन के विषय में रुचि उत्पन्न करना, अपने अधीन कर्मचारियों का शिक्षण, तथा अन्य प्रान्तों में आन्दोलन

की गति विधि का अध्ययन करने का कार्य और आन्दोलन, तथा समितियों के लिए पूँजी जुटाने का काम भी करना पड़ता था। यदि समिति तथा उसके सदस्यों में कोई झगड़ा हो तो उसका फ़ैसला रजिस्ट्रार ही करता, तथा समिति की दशा ख़राब हो जाने पर वही उसको तोड़ता तथा 'लिक्विडेटर' बनता था।

जैसे जैसे आन्दोलन बढ़ता गया इस बात का अनुभव होने लगा कि रजिस्ट्रार इतने कार्यों को भली भाँति नहीं कर सकता, रजिस्ट्रार के बोझ को कुछ हलका कर दिया जावे, तथा आन्दोकों क्रमशः जनता के हाथ में दिया जावे। अस्तु, सेन्ट्रल बैंक तथा प्रान्तीय बैंकों के स्थापित होते ही पूँजी जूटाने का कार्य रजिस्ट्रार के हाथ से निकल गया।

सहकारिता आन्दोलन जनता का आन्दोलन है और इस आन्दोलन को बाहरी सहायता पर निर्भर न रह कर स्वावलम्बी होना चाहिए। समितियों को डिपाजिट आकर्षित करके कार्यशील पूँजी इकट्ठी करनी चाहिए। प्रबन्धकारणी समिति को समिति की देखभाल करना चाहिए। समितियों की सम्मिलित यूनियन को आय-व्यय निरीक्षण करना चाहिये, और सहकारिता की शिक्षा देनी चाहिये। रहा प्रचार कार्य, उसके लिये सफलतापूर्वक कार्य करती हुई सहकारी समिति ही सर्वोत्तम साधन है! किन्तु भारत वर्ष में अशिक्षा, तथा रूढ़ियों में फंसे हुये भाग्यवादी ग्रामीण जन यह कार्य नहीं कर सकते थे। इसलिये यह आवश्यकता प्रतीत हुई कि जो कार्य कि एक समिति नहीं कर सकती, वह यूनियन करे। इस उद्देश्यसे भारतवर्ष में भिन्न भिन्न कार्यों को करने के लिये यूनियन स्थापित की गईं—गारन्टी यूनियन तथा सुपरवाजिंग यूनियन।

गारंटी यूनियन—यद्यपि गारन्टी यूनियन अपने से संबंधित सहकारी साख समितियों की देख भाल भी करती थीं, उनका मुख्य कार्य सेन्ट्रल बैंक को अपनी सहकारी समितियों को दिये हुए ऋण की गारन्टी देना था। इसी लिये उनको गारंटी यूनियन कहते थे। गारन्टी यूनियन का प्रयोग बर्मा में किया गया। पीछे इसका उपयोग प्रान्तों में भी किया गया किन्तु वे नितान्त असफल हुईं, अतएव वे तोड़ दी गईं। फिर किसी भी प्रान्त या देशी राज्य ने उन्हें नहीं अपनाया। सच तो यह है कि अपरिमित दायित्व वाली साख समितियो के लिये इस प्रकार की संस्था की आवश्यकता ही नहीं थी।

सुपरवाइज़िंग यूनियन—सुपरवाइजिंग यूनियन निम्नलिखितकार्य करती हैं:—ग्रामीण सहकारी समितियों की देखभाल करना, उनको उन्नति का मार्ग दिखलाना, अपने क्षेत्र में नई सहकारी समितियों का संगठन करना, तथा उनकी उन्नति करना, अपने से सम्बधिन्त समितियों की पूँजी की आवश्यकता का पता लगाना, उनके सदस्यों की हैसियत का लेखा तैयार करके समिति की साख निर्धारित करना, समितियों को उनके प्रबन्ध तथा कार्य-संचालन के विषय में उचित परामर्श देना, समिति के सदस्यों तथा उनके पंचायतदारों को सहकारिता की शिक्षा देने का प्रबन्ध करना, समितियों को आवश्यकता होने पर क्रय विक्रय कार्य में सहायता देना, तथा समिति और सेन्ट्रल बैङ्क के बीच में सम्बन्ध स्थापित करना।

सुपरवाइजिंग यूनियन से सम्बन्धित समितियां अपने प्रतिनिधि यूनियन की साधारण सभा में भेजती है। साधारण सभा एक कार्यकारिणी समिति का निर्वाचन करती है, इस समिति में उस क्षेत्र के सेन्ट्रल बैंक का भी एक प्रतिनिधि रहता है। यह

समिति सारा प्रबन्ध करती है, और सहकारी समितियों की देख भाल के लिये एक सुपरवाइज़र नियुक्त करती है। प्रत्येक समिति अपनी कार्यशील पूँजी के अनुपात मे यूनियन को चन्दा देती है। सेन्ट्रल बैङ्क भी यूनियन को आर्थिक सहायता देते है।

इन यूनियनो को चलाने में कुछ व्यय अवश्य होता है, किन्तु ग्रामीण सहकारी समितियों का सगठन करने तथा आन्दोलन को सफल बनाने के लिये यह आवश्यक है।

मदरास प्रान्त में २६४ यूनियन देख भाल कर रही हैं। एक यूनियन एक तालुके से बड़े क्षेत्र मे कार्य नहीं करती। २० से ४० समितियाँ तक एक यूनियन से सम्बन्धित रहती हैं। मदरास में यूनियनों ने ज़िला-संघ बना लिये थे। ज़िले में जितनी यूनियन होती थी उनका एक संघ बनाया जाता था जो कि यूनियन की देख भाल करता था। किन्तु जिला-संघ सब तोड़ दिये गये और अब यह यूनियनें ही देख भाल का काम करती हैं। इनकी देख-भाल सेन्ट्रल बैंक करते हैं।

बम्बई में मदरास की ही भाँति, देख भाल का काम सुपर-वाइज़िंग यूनियन करती हैं। अभी हाल में वहाँ इन सुपरवाइज़िंग यूनियनो की देख भाल करने के लिए जिला-बोर्ड स्थापित किये गए हैं। ये बोर्ड सुपरवाइजरों का नियन्त्रण करते हैं। बोर्ड में सेन्ट्रल बैंक, सहकारिता विभाग, तथा सुपरवाइज़िंग यूनियनों के प्रतिनिधि होते हैं। सिंध में भी सुपरवाइज़िंग यूनियन देखभाल का काम करती है। वहाँ सब यूनियनो के ऊपर एक प्रान्तीय सुपरविज़न बोर्ड है।

उड़ीसा में देखभाल का काम सुपरवाइज़िंग यूनियन ही करती हैं। किन्तु सुपरवाइज़रों की नियुक्ति सन्ट्रल बैंकों द्वारा होती हैं। बैंक ही उनका वेतन देता है।

सुपरवाइजर इन यूनियनों द्वारा समितियों की देखभाल करता है। उत्तर उड़ीसा में सुपरवाइज़िङ्ग यूनियन नहीं है, वहाँ बैङ्क का सुपरवाइज़र अकेला ही यह काम करता है।

पजाब में देखभाल करने का काम प्रान्तीय यूनियन के नियुक्त किये हुए सुपरवाइज़र और इंस्पेक्टर करते हैं। समितियों से प्रान्तीय समिति जो फीस लेती है और प्रान्तीय सरकार प्रान्तीय यूनियन को जो ग्रान्ट देती है, उसमें से ही देखभाल करने वाले कर्मचारियो को रखा जाता है। संयुक्तप्रान्त में पंजाब की तरह ही प्रान्तीय-यूनियन सुपरवाइज़र नियुक्त करके प्रारम्भिक समितियों की देखभाल करती है।

मध्यप्रान्त और बरार में डिविज़नल सहकारी इन्स्टिट्यूट हैं, इन का केन्द्रीय बोर्ड सुपरवाइज़रो द्वारा देखभाल और शिक्षा का काम करवाते हैं। इस इंस्टिट्यूट के केन्द्रीय बोर्ड की अधीनता में प्रत्येक सेन्ट्रल बैंक एक स्थानीय सुपरविज़न और शिक्षा कमेटी संगठित करता है और यह कमेटी केन्द्रीय बोर्ड द्वारा नियुक्त किये हुए सुपरवाइज़रों के काम का नियंत्रण करती है। सहकारिता विभाग का सर्किल-आडिटर भी इस कमेटी के काम में सहायता पहुँचाता है। बरार में बरार-सहकारी इंस्टिट्यूट सुपरविज़न कमेटियों की सहायता के लिए सुपरवाइज़रों से अलहदा कुछ ग्रूप आफिसर नियुक्त करती है।

बंगाल में प्रत्येक सेन्ट्रल बैङ्क अपने से सम्बन्धित सहकारी समितियों के सुपरर्विज़न (देखभाल) और इंस्पेक्शन (निरीक्षण) के लिए कर्मचारी नियुक्त करता है जो उस सर्किल के सहकारिता विभाग के आफिसर की अधीनता में कार्य करता है।

आसाम में बंगाल का सा ही प्रबन्ध है, परन्तु वहां देखभाल का काम तो कुछ होता नहीं, सुपरवाइज़र केवल सैन्ट्रल बैंक का

रुपया समितियों के सदस्यों से उगाहते हैं।

अन्य छोटे प्रान्तो तथा देशी राज्यों मे सहकारी विभाग के कर्मचारी ही समितियों की देख भाल का काम भी करते हैं। वहां कोई स्वतन्त्र संस्था इस काम को नहीं करती।

ऊपर दिये हुए विवरण से यह स्पष्ट है कि सब जगह देख भाल की पद्धति एकसी नहीं है। बहुत से प्रान्तो में देखभाल का समुचित प्रबन्ध नहीं है। समिति को कई आदमी सलाह देते है, इससे विचार-भेद पैदा होता है। जो लोग समितियो के सम्पर्क मे आते है, उनमें कोई जोड़ने वाली कड़ी नही होती। कहीं कहीं सेन्ट्रल बैंक तथा सहकारिता विभाग के कर्मचारियों द्वारा जो निरीक्षण होता है उसका और सुपरवाइज़रों का कार्य क्षेत्र एकसा ही है।

इस सम्बन्ध में रिज़र्व बैंक की राय यह है कि प्रत्येक ताल्लुका या तहसील में एक बैंकिंग-यूनियन स्थापित की जाय और वह अपने सम्बन्धित समितियों के सभी कार्यों में दिलचस्पी ले। यही यूनियन समितियों की देखभाल भी करे। इसमें कोई संदेह नहीं कि भारतवर्ष में सहकारी समितियों को सबल और सफल बनाने के लिए यह आवश्यक है कि देखभाल का समुचित प्रबन्ध हो।

निरीक्षण—सहकारिता आन्दोलन शिथिल न होने देने के लिए, समितियों का निरीक्षण होते रहना आवश्यक है। इस कार्य का भार सहकारिता विभाग पर है। सहकारिता विभाग का सर्वोच्च कर्मचारी रजिस्ट्रार होता है जिसके नीचे असिस्टेंट रजिस्ट्रार होते हैं, जो एक सर्किल के जिम्मेवार होते हैं। सर्किल में कई ज़िले होते हैं। इनके नीचे इंस्पेक्टर होते हैं, जो एक-एक ज़िले के काम का निरीक्षण करते हैं। कहीं सब-इंस्पेटर भी होते

हैं। रजिस्ट्रार तथा उसके सहकारी आन्दोलन की नीति निर्धारित करते हैं, बराबर दौरा करके वे सहकारी संस्थाओं का निरीक्षण करते हैं और उनकी त्रुटियाँ बतलाते है और भावी कार्य क्रम के विषय में सलाह देते है। बम्बई, सिंध और मदरास में सेन्ट्रल बैंक भी निरीक्षण कार्य करने के लिए इंस्पेक्टर नियुक्त करते हैं।

आय-व्यय परीक्षा—सहकारिता कानून के अनुसार प्रति वर्ष प्रत्येक सहकारी समिति के आय-व्यय की परीक्षा करना रजिस्ट्रार का कर्तव्य है। इस कार्य को करते समय आय-व्यय परीक्षक लेनी और देनी की जाँच करता है, उनका मूल्यांकन करता है, साथ ही ऐसे ऋण की भी जांच करता है, जिनकी अदायगी का समय व्यतीय हो गया किन्तु वह अदा नहीं किये गए। भिन्न भिन्न प्रान्तों में आय व्यय परीक्षा की पद्धति में भी थोड़ी थोड़ी भिन्नता है। बम्बई, सिंध, बिहार, उड़ीसा, संयुक्तप्रान्त और आसाम में आय-व्यय परीक्षा का कार्य सहकाहिता विभाग के आडिटर (आय व्यय परीक्षक) करते हैं। इन प्रान्तों में कुछ बैंकों के आय-व्यय की जाँच रजिस्टर्ड अकाऊंटेंट भी करते हैं, पर उसको पर्याप्त नहीं समझा जाता और सहकारिता विभाग के आडिटर भी उस कार्य को करते हैं। मदरास, बंगाल और पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त में यद्यपि सहकारिता विभाग के आडिटर ही आय-व्यय की जाँच करते हैं, किन्तु रजिस्ट्रार कुछ बैङ्कों के आय व्यय की जाँच रजिस्टर्ड अकाऊन्टेंट से करा लेने की आज्ञा दे देते हैं और उनके द्वारा किये जाने पर ही-आयव्यय जाँच यथेष्ट समझ जाता है। मध्यप्रान्त और बरार में बड़ी बड़ी समितियों के आय व्यय की परीक्षा सहकारिता विभाग के सर्किल आडिटर करते हैं; परन्तु छोटी समितियों का

आय व्यय निरीक्षण आय-व्यय-परीक्षकों द्वारा होता है, जो रजिस्ट्रार की अधीनता में काम करते हैं। उनका वेतन रजिस्ट्रार-आडिट फंड में से दिया जाता है। पंजाब में रजिस्ट्रार ने प्रान्तीय सहकारी यूनियन के आडिटरों को समितियों के आय व्यय की जाँच की आज्ञा प्रदान करदी है और प्रान्तीय यूनियन को आय व्यय-परीक्षा की फीस लगाने का भी अधिकार दे दिया है। प्रत्येक प्रान्त में सहकारी समितियों को आडिट-फीस देनी पड़ती है।

आय-व्यय परीक्षा को सुचारू रूप से करने के लिए यथेष्ट आय-व्यय-परीक्षक होने चाहिएँ, उन्हें अपने कार्य की अच्छी शिक्षा मिलनी चाहिए और उनका उचित नियंत्रण होना चाहिए। साथ ही निरीक्षण करने वाले कर्मचारियों से आय-व्यय परीक्षक भिन्न और प्रथक होने चाहिएँ।

सहकारिता की शिक्षा—सहकारिता आन्दोलन की पूर्ण सफलता के लिये यह आवश्यक है कि सहकारिता आन्दोलन को चलाने वाले कर्मचारी तथा समितियों और सेन्ट्रल बैंकों के पंचायतदार तथा डायरैक्टर गण सहकारिता के सिद्धान्त को भली भाँति जानें। यह कार्य केवल शिक्षा के द्वारा हो सकता है। सहकारिता के सिद्धान्तों की शिक्षा देने की आवश्यकता पर मैकलेगन सहकरिता कमेटी तथा कृषि कमीशन दोनों ने ही बहुत जोर दिया था। इसी उद्देश्य से प्रत्येक प्रान्त में प्रान्तीय सहकारी यूनियन, इंस्टिट्यूट या फैडरेशन स्थापित की गई थीं। जहाँ तक प्रचार कार्य का प्रश्न है इन प्रान्तीय संस्थाओं ने अच्छा कार्य किया किन्तु सहकारी समितियों के सदस्यों को सहकारिता के सिद्धान्तों की शिक्षा देने का कार्य उन्होंने नहीं के बराबर किया।

१६३४-३५ में सर मैलकम डार्लिंग ने भारत सरकार को सहकारिता आन्दोलन के सम्बन्ध में जो रिपोर्ट दी थी उसमें उन्होंने एक बार फिर सहकारिता के सिद्धान्तों और व्यवहार की शिक्षा पर जोर दिया। उस रिपोर्ट के फल स्वरूप भारत-सरकार ने १६३५ मे सहकारिता की शिक्षा के लिए प्रान्तों को विशेष ग्रान्ट (सहायता) दी। इसके अतिरिक्त प्रान्तीय सरकार ने भी उन सस्थाओं को जो सहकारिता की शिक्षा देती है अधिक ग्रान्ट देना शुरू कर दिया है।

प्रत्येक प्रान्त में दो प्रकार की कक्षाएँ खोली गई है। (१) वे कक्षाएँ जिनमें सहकारिता विभाग, तथा सहकारी संस्थाओं मे कार्य करने वालों को, सहकारिता के सिद्धान्त, ग्राम्य अर्थशास्त्र, बैंकिंग तथा हिसाब की शिक्षा दी जाती है इसके अतिरिक्त आडिटरो, भूमि का मूल्य जाँचने वालो, विक्रय समितियों के मैनेजरो, सेन्ट्रल बैङ्क के मेनेजरों को अपने अपने कार्यों की विशेष शिक्षा दी जाती है। (२) वे कक्षाएँ जिनमें समितियो के निर्वाचित पदाधिकारियों और सदस्यों को शिक्षा दी जाती है। यह शिक्षा बहुत साधारण होती हैं इसमें अधिकतर सहकारिता के सिद्धान्तों की मोटी मोटी बातों, समितियों का प्रबन्ध, पदा-धिकारियों के कर्तव्य, ग्राम संगठन इत्यादि का ज्ञान कराया जाता है और भाषण दिये जाते हैं।

इसके अतिरिक्त रजिस्ट्रार भिन्न-भिन्न स्थानों पर रिफ्रैशर कोर्स की कक्षायें भी लगाते है, जिनमें सहकारिता सम्बन्धी भाषण होते हैं और विशेष समस्याओं पर वाद विवाद होते है।

बंगाल, बिहार, तथा सयुक्तप्रान्त में इंस्टिट्यूट स्थापित की गई हैं जहाँ सहकारिता विभाग के अनुभवी आफिसर सहकारिता

विभाग तथा सहकारी संस्थाओं के भावी कर्मचारियों को शिक्षा देते हैं। सदस्यों और पंचों की शिक्षा के लिए कक्षायें खोली जाती हैं। बम्बई और मदरास मे प्रांतीय सहकारी इंस्टिट्यूट शिक्षा का प्रबन्ध करती है। अन्य प्रान्तों मे सहकारिता विभाग अपने कर्मचारियों को शिक्षा के कार्य के लिए नियुक्त करके शिक्षा का प्रबन्ध करते है। मदरास सहकारी कमेटी (१६४०) की राय है कि प्रत्येक प्रान्त मे एक कालेज स्थापित किया जावे, जिसमे स्थायी रूप से सहकारिता की शिक्षा का प्रबन्ध हो सके। जब तक स्थायी रूप से कोई संस्था स्थापित नहीं की जावेगी तब तक शिक्षा का समुचित प्रबन्ध नहीं हो सकता।

अब भिन्न भिन्न प्रान्तों में प्रचार और शिक्षा का कार्य करने वाली संस्थाओं का कुछ परिचय दिया जाता है।

प्रान्तीय सहकारी संस्थाऐं

बम्बई—बम्बई प्रान्तीय सहकारी इंस्टिट्यूट के निम्नलिखित मुख्य कार्य हैं:—(१) शिक्षा, (२) प्रचार, (३) सुपरविज़न, (४) सुधार कार्य, (५) जनता की आन्दोलन के संबन्ध मे सम्मति प्रकट करना। समितियां तथा व्यक्ति दोनों ही इसके सदस्य हो सकते हैं। इसे सदस्यों के चन्दे के अतिरिक्त सरकार से ३०,००० रु० वार्षिक सहायता मिलती है। कुछ जिला-बोर्ड तथा म्युनिसिपल बोर्ड भी इसे आर्थिक सहायता देते हैं। इसकी शाखाएँ प्रत्येक जिले में हैं। इंस्टिट्यूट ने एक शिक्षा बोर्ड नियुक्त कर दिया है जिसकी देख रेख में प्रान्त के भिन्न भिन्न स्थानों पर स्कूल खोले गये हैं, जिनमें सहकारिता की शिक्षा दी जाती है। इसके अतिरिक्त अँग्रेजी तथा देशी भाषाओं में त्रैमासिक पत्रिकाएँ प्रकाशित की जाती हैं। प्रचार कार्य जिला तथा डिवि-

जनल कार्यकर्त्ता, शाखाओं की सहायता से करते हैं। इंस्टिट्यूट ने गृह-निर्माण तथा विक्रय समितियों की स्थापना की है. वह ग्राम-सुधार कार्य के लिये आर्थिक सहायता देती है। इंस्टिट्यूट का प्रबन्ध करने के लिये दो समितियां हैं:—कौंसिल जिसमें रजिस्ट्रार के १० मनोनीत सदस्य रहते हैं, और कार्यकारिणी जिसमें रजिस्ट्रार के दो प्रतिनिधि रहते हैं।

पंजाब—पंजाब में प्रान्तीय कोआपरेटिव यूनियन है। इसका मुख्य काम प्रचार, शिक्षा, आय-व्यय-परीक्षा तथा देख भाल करना है, रजिष्ट्रार इसका सभापति होता है। यूनियन आय-व्यय परीक्षा तथा देख भाल का कार्य अपने कर्मचारियों से कराती है, जिनकी संख्या लगभग ५०० है। प्रचार का काम इन्सपेक्टर करते हैं। यूनियन एक मासिक पत्र उर्दू में निकालती है। इसके अतिरिक्त सिनेमा, मैजिक लैन्टर्न, व्याख्यान, प्रदर्शन करने वाली ट्रेन, तथा पुस्तकों को प्रकाशित करके प्रचार करती है। यूनियन प्रान्तीय सम्मेलन का भी आयोजन करती है। यूनियन को आडिट फ़ीस मिलती है तथा प्रान्तीय सरकार आर्थिक सहायता देती है।

मदरास—मदरास यूनियन के मुख्य कार्य प्रचार, नई तथा विशेष प्रकार की समितियों को स्थापित करना तथा सुपरवाइ-ज़िंग यूनियन की सहायता करना है। यूनियन अंग्रेज़ी में सहकारिता विषय मासिक पत्रिका प्रकाशित करती है. पंचायतदारों की शिक्षा का प्रबन्ध करती है, सहकारिता के सिद्धांत का प्रचार करती है, ग्राम संगठन केन्द्र चलाती है. तथा प्रान्तीय सहकारिता सम्मेलन का आयोजन करती है। ग्राम संगठन केन्द्रों का व्यय उस क्षेत्र का सेन्ट्रल बैङ्क तथा सहकारी बैङ्क देता है। प्रत्येक ग्राम सङ्गठन केन्द्र पर एक अच्छी रक़म वार्षिक व्यय होती है।

मदरास सरकार यूनियन को केवल वार्षिक सहायता देती है। साथ ही सहकारी समितियों से भी उसे आर्थिक सहायता मिलती है।

विहार—में प्रान्तीय फैडरेशन है। प्रत्येक समिति अपना प्रतिनिधि कॉग्रेस में भेजती है जिसका वार्षिक अधिवेशन होता है। प्रचार कार्य के लिये प्रत्येक डिवीजन में पाँच कर्मचारी रक्खे गये हैं। प्रत्येक समिति तथा सेन्ट्रल बैङ्क को अपनी कार्यशील पूँजी के अनुपात से फैडरेशन को चन्दा देना पड़ता है। प्रान्तीय सरकार लगभग १०,००० रु० वार्षिक सहायता देती है। सहकारिता की शिक्षा देने के लिये इंस्टिट्यूट स्थापित की गई है। फैडरेशन एक हिन्दी मासिक पत्रिका (विहार सहयोग) तथा एक अंग्रेजी त्रैमासिक पत्रिका प्रकाशित करती है।

बंगाल—बंगाल में सहकारी आरगैनीज़ेशन सोसायटी थी, अब इसका नाम बङ्गाल सहकारी एलायस है। यह प्रान्तीय सस्था अपने से सम्बन्धित समितियों की देख भाल करती हैं, दो पत्रिकायें प्रकाशित करती है, कलकत्ते में एक पुस्तकालय चलाती है। व्याख्यान दाताओं को जिलों में भेजकर प्रचार कार्य करती है, प्रान्तीय सम्मेलन का आयोजन करती है, तथा कर्मचारियों की शिक्षा का प्रबन्ध करती है।

संयुक्त प्रान्त—यहाँ प्रान्तीय सरकारी यूनियन है, जिसका सभापति रजिस्ट्रार होता है, सेन्ट्रल बैङ्क तथा सहकारी समितियाँ उसके सदस्य होते हैं। यूनियन सम्बन्धित समितियों की देख भाल कार्य करती है। यूनियन १०० से अधिक आय व्यय निरीक्षक नियुक्त करती है। प्रांतीय सरकार यूनियन को लगभग ६६०००) रु० वार्षिक सहायता देती है। इसके अतिरिक्त सदस्यों

से फीस ली जाती है। आय-व्यय परीक्षण कार्य के लिये अलहदा फ़ीस ली जाती है।

मध्यप्रान्त—यहाँ प्रान्तीय फैडरेशन शिक्षा, तथा देखभाल का कार्य करती है। प्रान्त को पांच भागों में बाँटा गया है, और प्रत्येक डिवीज़न में एक इंस्टिट्यूट स्थापित की गई है, जो इस कार्य को करता है। इनमें बरार इंस्टिट्यूट सबसे अच्छा कार्य कर रही है। समितियों की देख भाल करने के लिये कर्मचारी नियुक्त किये गये हैं। फेडरेशन एक हिन्दी मासिक पत्र (ग्राम) भी प्रकाशित करती है।

आसाम—यहाँ सुरमा घाटी की एक प्रान्तीय संगठन समिति स्थापित की गई है। प्रत्येक समिति प्रान्तीय समिति को अपनी कार्यशील पूँजी के अनुपात में चन्दा देती है। आसाम में शिक्षा का सर्वथा अभाव है, इस कारण समिति मैजिक के लालटेन द्वारा प्रचार कार्य करती है। इस कार्य के लिये उपदेशक भेजे जाते हैं। समिति एक बंगाली त्रैमासिक पत्रिका भी प्रकाशित करती है। इसी प्रकार की एक और समिति की स्थापना हुई है, जो आसाम के ऊपरी आधे हिस्से में कार्य करती है।

अखिल भारतवर्षीय सहकारी इंस्टिट्यूट—यह प्रांतीय सहकारी संस्थायें अखिल भारतवर्षीय सहकारी इंस्टिट्यूट से सम्बन्धित हैं। यह इंस्टिट्यूट एक त्रैमासिक अंग्रेजी पत्रिका "कोअपरेटिव जरनल" निकालती है। सहकारिता आन्दोलन से सम्बन्धित साहित्य प्रकाशित करती है और आन्दोलन संम्बन्धी समस्याओं पर अपना मत प्रगट करती है। समय समय पर वह अखिल भारतीय सम्मेलन भी करवाती है। सहकारी समस्याओं पर वाद-विवाद होता है।

यद्यपि अखिल भारतवर्षीय इस्टिट्यूट अभी बहुत पुरानी संस्था नहीं है परन्तु उसके आयोजित सम्मेलनों ने बहुत उपयोगी काम किया है। उसकी त्रैमासिक पत्रिका सहिकारिता आन्दोलन पर इस देश में सर्वोत्तम पत्रिका है और उसकी प्रकाशित पुस्तकें बहुत उपयोगी। १९४२ से इस्टिट्यूट ने "कोआपरेटिव इयर-बुक" प्रकाशित करना शुरु की है. वह सहकारिता आन्दोलन सम्बंधी ज्ञातव्य बातों की खान है। एक प्रकार से यह संस्था सहकारिता आन्दोलन के प्लेटफार्म और प्रेस का काम करती है।

बीसवाँ परिच्छेद

ग्राम सुधार और सहकारिता

भारतवर्ष गांवों का देश है, सात लाख गांवों में देश की लगभग ९० फ़ी सदी आबादी रह रही है। लेकिन गांवों में ग़रीबी, कलह, बीमारियों, गंदगी, अशिक्षा, और पुरानी हानिकर रस्मों का ऐसा ज़ोर है कि गांवों की दशा बहुत गिरगई हैं। हमारे गांव मनुष्यों के रहने लायक़ नहीं रहे हैं, यही कारण है कि गांव का रहने वाला जो आदमी पढ़ लिख जाता है, वह गांव में न रहकर शहर की ओर दौड़ता है। यही नहीं, वृद्ध अवस्था होने पर जब वह नौकरी या अपने धन्धे से छुट्टी लेता है, तब भी वह गांव को न लौटकर शहर में बस जाता है। पढ़े लिखे लोगो की बात जाने दीजिये, ज़मींदार भी गांवों में रहना नहीं चाहते. वे भी ज़मींदारी की आमदनी से शहरों में ही रहना चाहते हैं। जो कारीगर गांव में रहकर कुशलता प्राप्त कर लेता है, वह भी शहर की ओर चल देता है। इस प्रकार आज हमारे गांवों से

पूँजी, मस्तिष्क, तथा हुनर बाहर निकला जा रहा है और गांवों में अशिक्षित तथा निर्धन किसान और कारीगरों के बीच में चतुर साहूकार उनको लूटने के लिये रहजाता है। फल यह हो रहा है कि गांवों में निर्धन किसानों को रास्ता दिखलाने वाला कोई नहीं है। गावों को उजड़ने से बचाने के लिये यह आवश्यक है कि गांवो की दशा मे सुधार किया जावे, जिससे पढ़े लिखे तथा पैसे वाले ग्रामीण गांव छोड़कर बाहर न जावें।

गांवो की दशा इतनी बुरी होते हुए भी सरकार और जनता सभी गांवो की ओर से उदासीन है। शिक्षा स्वास्थ्य तथा सड़कें बनवाने का जो कुछ थोड़ा बहुत कार्य होता है, शहरों में ही होता है। बात यह है कि शहर वालों के पास पत्र हैं, प्लेटफार्म हैं, वे शोर मचाना जानते हैं, एसेंब्ली तथा कौंसलों में हमारे प्रतिनिधि चिल्लाया करते हैं, इस कारण सरकार को शहरों के लिये कुछ न कुछ करना ही पड़ता है। कैसे आश्चर्य की बात है कि यदि कपड़े, स्टील, तथा शक्कर के कारखानों के मालिक, व्यवस्थापक सभा के सदस्य तथा समाचार पत्र आकाश पाताल एक कर देते हैं और इन धन्धों को संरक्षण मिल जाता है, किन्तु खेती बारी की ओर, जिस पर इस देश का आर्थिक संगठन अवलम्बित है, कोई ध्यान तक नहीं देता। ग्रामीण जनता मूक तथा अशिक्षित है, इस कारण यह प्रतिवाद भी नहीं कर सकती। किन्तु कतिपय सज्जनों ने ग्रामीण जीवन के दुखदाई पतन को देखकर इस दिशा में कार्य करना प्रारम्भ किया है। बम्बई के कांग्रेस अधिवेशन (दिसम्बर १९३४ ई०) ने महात्मा गांधी के नेतृत्व में जो ग्राम-उद्योग-संघ नामक संस्था को जन्म दिया उसके कारण जनता और सरकार का ध्यान इस ओर आकर्षित अवश्य हुआ। सरकार ने महात्माजी के इस

कार्य को केवल गांवों में कांग्रेस के प्रभाव को बढ़ाने की एक चाल समझी। अतएव भारत सरकार ने भी एक करोड़ रुपये की ग्रांट देकर प्रान्तीय सरकारों को ग्राम सुधार करने को प्रोत्साहित किया। अस्तु, सभी प्रान्तों में १६३५ के आरम्भ से ग्राम-संगठन का कार्य होने लगा। तब तक इस कार्य के लिए प्रान्तो मे कोई पृथक विभाग स्थापित नहीं किया गया था। जब नया निर्वाचन हुआ और सब प्रान्तो में उत्तरदायी मंत्रि-मडल स्थापित हुए तो हर एक प्रान्त मे ग्राम सुधार विभाग स्थापित करके मंत्रि-मडलों ने इस कार्य को आगे बढ़ाने का प्रयत्न किया।

१६३५ के पूर्व भी देश में कुछ स्थानों पर ग्राम-सुधार कार्य हो रहा था। पजाब के कुरगांव जिले में श्री एफ० एल० ब्राइन तथा श्रीमती ब्राइन ने १४०० गांवों में ग्राम-सुधार कार्य किया था। किन्तु उनकी योजना दोष पूर्ण थी; उनका तबादला हो जाने पर क्रमशः उनका सारा कार्य नष्ट हो गया और गांव पूर्व दशा मे पहुंच गए। बंगाल में महाकवि स्वर्गीय रवीन्द्र नाथ ठाकुर के नेतृत्व में, शान्ति श्रीनिकेतन विश्व भारती के साथ साथ श्रीनिके-तन नाम की ग्राम सुधार कार्य करने वाली संस्था स्थापित हुई। श्रीनिकेतन वीरभूमि जिले के गांवों में सुधार कार्य करता है। किन्तु महाकवि की मृत्यु के उपरान्त इस कार्य में भी शिथिलता आ गई, बंगाल के सुंदरवन के प्रदेश में स्वर्गीय सर डेनियल हैमिल्टन ने आधुनिक ढंग की बस्तियां बसाई थीं, जिनमें सह-कारी समितियों के द्वारा ग्राम सुधार होता था। दक्षिण भारत में वाइ० एम० सी० ए० (यंग मेन क्रिश्चियन ऐसोसियेशन) का ग्राम-सुधार कार्य भी उल्लेखनीय है। उसका कार्य विशेष रूप से ट्रांवकोर राज्य में केन्द्रित है। कुछ अन्य स्थानों पर भी

कार्य हो रहा था किन्तु बड़ी मात्रा में ग्राम सुधार कार्य का आरम्भ भारत सरकार द्वारा एक करोड़ रुपये की ग्रांट दिये जाने पर ही आरम्भ हुआ।

ग्राम सुधार कार्य में सहकारिता का कहां तक उपयोग हो सकता है, इसको समझने के लिए गांवों की और ग्राम-सुधार कार्य की समस्याओं को जान लेना आवश्यक है।

भारतीय गांवों की समस्याएँ—हमारे गांवों की मुख्य मुख्य समस्याएँ निम्नलिखित है—

(१) ग्रामवासियों का निराशावादी दृष्टिकोण। गांव का रहने वाला इस बात का विश्वास ही नहीं करता कि उसकी दशा सुधर सकती है। वह ग्राम सुधार कार्य में रुचि नहीं दिखाता और न अपनी दशा को सुधारने का प्रयत्न ही करता है।

(२) गांवों में सफाई का अभाव।

(३) गांवों में चिकित्सा के साधनों का अभाव।

(४) गांवों में शिक्षा का अभाव।

(५) गांवों में सुरुचिपूर्ण मनोरंजन के साधनों का अभाव।

(६) पशुओं की समस्या और उनकी उन्नति की आवश्यकता।

(७) खेती के धंधे की उन्नति की आवश्यकता।

(८) गांवों में मुकदमेबाजी को कम करने की आवश्यकता।

(९) गांवों में ऋण की समस्या।

(१०) स्वास्थ्य-रक्षा के सिद्धान्तों की जानकारी न होना।

(११) गांव के घरों को आकर्षक और सुन्दर बनाने की आवश्यकता।

(१२) गांवों में रहने वाले किसानों के लिए बेकार समय में

गौण सहायक धंधों की आवश्यकता।

(१३) सामाजिक कुरीतियां और बुरी रस्में।

(१४) गांवों में आने जाने के साधनों का अभाव।

यह स्पष्ट है कि ये सब समस्याएँ एक दूसरे से मिली हुई हैं, पृथक् नहीं की जा सकतीं। उदाहरण के लिए मुकदमेबाज़ी. सामाजिक कुरीतियां और पशु की मृत्यु किसान के ऋणी होने का मुख्य कारण हैं। इसी तरह अशिक्षा. आकर्षणहीन घर से, और मनोरंजन के साधन न होने से, गांव वालों में मुकदमेबाज़ी की आदत पड़ गई है। कहने का तात्पर्य यह है एक समस्या दूसरी का कारण है अथवा किसी तीसरी समस्या का फल है।

ग्राम सुधार कार्य—वास्तव में इन समस्याओं का हल करना ही ग्राम सुधार है। किन्तु इस सम्बन्ध में कुछ महत्व पूर्ण बातें ऐसी हैं. जिनको कार्यकर्त्ता भूल जाते हैं—

(१) शासन के बढ़ते हुये करों का बोझ,बढ़ा हुआ लगान, ज़मींदार, महाजन, नगरवासी, व्यापारी, दलाल, वकील, पुलिस, तहसील के कर्मचारी इत्यादि, शिक्षित वर्ग के वैज्ञानिक शोषण ने भारतीय ग्रामीण के अन्तिम रक्त-बिन्दु को चूस लिया है। अतएव ग्राम सुधार पूर्णतः तभी सम्भव है कि जब बिना विलम्ब यह बहुमुखी शोषण रोका जावे। और इसके लिए आवश्यक है कि देश में उत्तरदायी शासन हो और गाँवों में राजनैतिक जागृति हो जाये।

इसका यह अर्थ नहीं है कि ग्राम सुधार आन्दोलन को तब तक के लिये स्थगित कर दिया जावे। हमारा तात्पर्य यह है कि उस होने वाले शोषण का सदैव ध्यान रखना चाहिये और जहाँ तक हो सके इसको रोकने का प्रयत्न करना चाहिए।

(२) आज हमारी ग्राम संस्था निर्बल और निर्जीव हो रही

है, उसे सबल और सतेज बनाने के लिए यह आवश्यक है कि गाँव वालों में अपनी वर्तमान दयनीय स्थिति से असंतोष उत्पन्न कर दिया जाय, जिससे ग्रामीण जनता में अपनी स्थिति में सुधार करने की इच्छा बलवती हो उठे। गाँवों में बाहर से सुधार लादने से कभी भी स्थायी सफलता नहीं मिल सकती। खेद है कि इस महत्वपूर्ण तथ्य और कार्य कर्ताओं की ओर ध्यान बहुत कम गया है। गाँव वाले अधिकांश बातों को अधिकारियों के दबाव के कारण स्वीकार कर लेते है। कुछ समय के उपरान्त सुधार के सब चिह्न नष्ट हो जाते है। ग्राम सुधार कार्य तभी स्थायी हो सकता है जबकि सुधार अन्दर से हो। ग्राम सुधार कार्य को चलाने के लिये ग्रामीण नेतृत्व उत्पन्न किया जाय, नहीं तो ७ लाख गाँवों में ग्राम सुधार कार्य कर सकना सम्भव न होगा।

(३) अभी तक ग्राम सुधार कार्य टुकड़े टुकड़े करने का प्रयत्न किया गया है। किन्तु इस प्रकार सफलता मिलना कठिन है। ऊपर बतलाया जा चुका है कि गाँव की जितनी भी समस्याएँ हैं वे एक दूसरे से घनिष्ट सम्बन्ध रखती हैं। अतएव ग्राम-सुधार कार्य में सफलता तभी मिल सकती है कि जब सारी समस्याओं के विरुद्ध एक साथ युद्ध छेड़ दिया जाय। भारतीय समस्याओ को एक एक करके हल नहीं किया जा सकता।

(४) ग्राम-सुधार की प्रणाली कैसी हो? एक केन्द्रीय ग्राम में ग्राम सुधार केन्द्र स्थापित किया जाय। वहाँ जो कार्य हो, उसे आस-पास के गाँव ग्रहण करते रहें। कार्यकर्ता का आरम्भ से ही यह उद्देश्य होना चाहिए कि वह उस क्षेत्र के गाँवों मे स्थानीय संस्था और स्थानीय नेता उत्पन्न करदे, जो कि उस काम को अपने हाथ मे ले लें। नहीं तो इस देश के सात लाख गाँवों का सुधार करने के लिये असख्य कार्यकर्त्ता चाहिएँ।

जब स्थानीय ग्रामीण संस्था और नेता ग्राम-सुधार को चलाये रखने के योग्य हो जावें तो ग्राम-सुधार केन्द्र को वहाँ से हटाया जा सकता है।

ऊपर दी हुई ग्रामीण समस्याओं तथा ग्राम-सुधार संबंधी महत्वपूर्ण बातों को ध्यान में रखते हुये यह कहना कठिन नहीं है कि यह कार्य सहकारिता के आधार पर ही हो सकता है; स्वास्थ्य सफाई शिक्षा, मनोरंजन, मुक़दमेबाज़ी, खेती और पशु की उन्नति, बिना सहकारिता को अपनाये सम्भव ही नहीं है, फिर गाँवों में ग्रामसुधार कार्य को स्थायित्व प्रदान करने के लिये भी एक सहकारी संस्था की स्थापना की आवश्यकता है जो इन सभी समस्याओं के विरुद्ध एक साथ युद्ध छेड़ सके। अस्तु, आवश्यकता इस बात की है कि प्रत्येक गाँव में एक बहु-उद्देश्य वाली सहकारी समिति स्थापित की जाय। यह समिति एक प्रकार से गाँव की शासनकर्ता होगी, जिसका संचालन बाहर वाले के हाथ में न होकर स्वयं गाँव वालों के हाथ में होगा। प्रत्येक घर का मुख्य पुरुष या स्त्री इस की सदस्य होगी। यह समिति उन सभी कार्यों को करेगी, जो आवश्यक होंगे। इसके कई विभाग होंगे और प्रत्येक विभाग को एक विशेष कार्य सिपुर्द कर दिया जावेगा। उदाहरण के लिये एक विभाग स्वास्थ्य और सफ़ाई, दूसरा विभाग मनोरञ्जन, तीसरा शिक्षा का कार्य देखेगा, इत्यादि। पूरी समिति की बैठक प्रति पखवारा या महीने में होगी, जिसमें प्रत्येक विभाग को क्या करना चाहिए इस सम्बन्ध में नीति निर्धारित की जावे। समिति की कार्यपरिणी यह देखेगी कि निर्धारित नीति पर कार्य हो रहा है।

इस प्रकार की एक बहुउद्देश्य वाली सहकारी समिति होने से, ग्राम-सुधार केन्द्र का कार्यकर्ता इस समिति तथा इसके

नेतृत्व का ग्राम-सुधार कार्य के लिये, सफलतापूर्वक उपयोग कर सकता है। राज्य के जनहितकारी विभाग, जैसे कृषि, स्वास्थ्य, शिक्षा इत्यादि, इन समितियों के द्वारा अपना अपना कार्य करें और इन्हें सहायता दें। समिति को राज्य सहायता दे, और कुछ फ़ीस समिति सदस्यों से लें। इस प्रकार ऐसी समिति के द्वारा ग्राम-सुधार कार्य सफलतापूर्वक हो सकता है।

हर्ष की बात है कि ग्राम सुधार कार्य में सहकारिता का उपयोग समझ लिया गया है। संयुक्तप्रान्त में हज़ारों रहन सहन सुधार समितियां स्थापित करके यह कार्य किया जा रहा है। पंजाब तथा अन्य प्रान्तो में सहकारिता का पूरा उपयोग करने का प्रयत्न हो रहा है। सच तो यह है कि बिना सहकारिता के ग्राम-सुधार कार्य हो ही नहीं सकता।

इक्कीसवाँ परिच्छेद

उपसंहार

भारतवर्ष में सहकारिता आन्दोलन को आरम्भ हुए ४० वर्ष हो गये, किन्तु आन्दोलन ने इस देश के आर्थिक जीवन में विशेष परिवर्तन उपस्थित कर दिया हो, ऐसा दिखलाई नहीं देता। इसका कारण यह है कि आन्दोलन अभीतक शक्तिहीन है, बर्मा में तो आन्दोलन की मृत्यु ही हो गयी। आसाम, मध्यप्रान्त, बिहार-उड़ीसा, बंगाल तथा पश्चिमोत्तर सीमा-प्रान्त में भी आन्दोलन फैल नहीं रहा हैं। १९२९ के उपरान्त

आर्थिक मंदी का भयंकर प्रभाव पड़ा तो इन प्रान्तों में आन्दोलन के जर्जर होकर नष्ट होने का भय होने लगा। सहकारी साख समितियों के सदस्य अपने ऋण न चुका सके। सेन्ट्रल बैङ्कों की स्थिति डांवाडोल हो उठी, यहां तक कि प्रांतीय बैङ्क भी डगमगाने लगे। यदि प्रान्तीय सरकारों की सहायता न मिली होती और पुन निर्माण योजनाएँ न चलाई जातीं तो इन प्रान्तो में आन्दोलन के मर जाने में कोई संदेह नहीं था। फिर भी स्थिति बहुत अच्छी नहीं है। सौभाग्यवश खेती की पैदावार का युद्ध के समय का कल्पनातीत ऊंचा मूल्य आन्दोलन के पुनः निर्माण के लिए अनुकूल है।

पंजाब, बम्बई, मदरास और संयुक्तप्रान्त में पूर्ण रूप से तो नहीं किन्तु साधारण रूप से आन्दोलन की स्थिति अच्छी है। बम्बई और मदरास में गैर-सरकारी कार्यकर्ताओं के कारण और संयुक्तप्रांत तथा पजाब में सरकारी कर्मचारियों की सर्तकता के कारण आन्दोलन कुछ हद तक सफल हुआ है। यद्यपि इन प्रान्तों में भी बहुत सी समितियां हैं कि जिनकी दशा सन्तोषजनक नहीं है और प्रति वर्ष सैड़कों समितियां दिवालिया होती हैं, किन्तु फिर भी आन्दोलन की दशा अत्यन्त शोचनीय नहीं है। अजमेर-मेरवाड़ा कुर्ग तथा देहली प्रान्तों में आन्दोलन की दशा साधारण है।

देशी राज्यों में भी आन्दोलन की दशा सन्तोषजनक नहीं है। भूपाल में आन्दोलन की दशा अत्यन्त शोचनीय है। ग्वालियर, इन्दौर तथा कश्मीर में आन्दोलन अभी शक्तिहीन है, मैसूर, हैदराबाद, बड़ौदा तथा ट्रांवकोर राज्यों में आन्दोलन की साधारण दशा है। अधिकतर देशी राज्यों में आन्दोलन अभी आरंभ ही नहीं हुआ।

चालीस वर्षों में सहकारिता आन्दोलन को देश में एक प्रबल, शक्तिशाली आन्दोलन बन जाना चाहिये था। आन्दोलन को स्वयं अपने आप बढ़ना चाहिये था। ग्रामीण जनता को अन्य सहकारी समितियों की मांग करनी चाहिये थी, महाजन को इस आन्दोलन से डरना चाहिये था, तथा सहकारी समितियों के सदस्यों की आर्थिक स्थिति सुधरनी चाहिये थी, किन्तु अभीतक ऊपर लिखे चिन्ह दृष्टिगोचर नहीं हो रहे हैं। इसलिए हम इस नतीजे पर पहुँचते हैं कि आन्दोलन की दशा संतोषजनक नहीं है।

आन्दोलन की असफलता के कारण बहुत से हैं; भिन्न भिन्न विद्वानों ने भिन्न भिन्न कारणों को मुख्य माना है, जिनके विषय में आगे लिखा जावेगा। किन्तु अभी तक विद्वानों का ध्यान ग्रामीण ऋण की ओर यथेष्ट आकर्षित नहीं हुआ है; लेखक की सम्मति में आन्दोलन की असफलता का यह कारण मुख्य है। यहाँ ग्रामीण ऋण के विषय में वे सब बातें दोहराने की आवश्यकता नहीं जो तीसरे परिच्छेद में लिखी जा चुकी हैं; इतना कह देना पर्याप्त होगा कि किसान ऋण के चंगुल में बुरी तरह से फंसा हुआ है। महाजन के शोषण करने का ढंग ऐसा विचित्र तथा भयंकर है कि किसान कभी ऋण-मुक्त नहीं हो सकता। इस का फल यह हुआ है कि किसान तथा अन्य निर्धन वर्गों का जीवन निराशावादी बनगया है। जिनको विश्वास नहीं, जिनको आशा नहीं कि हमारी दशा सुधर सकती है, उनमें सहकारिता आन्दोलन कैसे सफल हो सकता है! अस्तु, इस समस्या को हल करने का सर्व प्रथम प्रयत्न होना चाहिये। यद्यपि पिछले वर्षों में कुछ कानून बने, किन्तु जब तक भावनगर की योजना की भांति कोई क्रान्तिकारी योजना न हो तब तक समस्या हल नहीं

हो सकती।

भारतीय किसान तथा निर्धन वर्गों में अशिक्षा का अखंड साम्राज्य है। शिक्षा प्रत्येक आन्दोलन की सफलता के लिये आवश्यक होती है। सहकारिता आन्दोलन में तो शिक्षा की और भी आवश्यकता है, क्योंकि सदस्यों को स्वयं सहकारी साख समितियों को चलाना पड़ता है। समितियों के हिसाब रखने के लिये उनकी कार्यवाही लिखने के लिये, शिक्षा की आवश्यकता है। भारतवर्ष में सहकारी साख समितियों के लिये पढ़े लिखे सदस्य नहीं मिलते, जो मंत्री का कार्य कर सके। इस लिए ऐसे आदमी को मंत्री बनाना पड़ता है, जो सदस्य न हो। आठ या दस समितियों का एक ही मन्त्री होता है, फल यह होता है कि मन्त्री ही इन समितियों का कर्ता धर्ता बन जाता है और सदस्यों को कार्य करने की कोई शिक्षा नहीं मिलती। इन मंत्रियों के विरुद्ध बहुत शिकायत है, किन्तु वे जमे हुए हैं। इससे शिक्षा प्रचार की आवश्यकता स्पष्ट है। यदि यह न भी हो तो सहकारिता की शिक्षा की व्यवस्था तो होनी ही चाहिए। गांव वालों को सहकारिता के सिद्धान्तों की शिक्षा ठीक प्रकार से दीजावे तो वे समिति भली प्रकार चला सकते हैं।

भारत में बहुत से विद्वानों का मत है कि आन्दोलन सार्वजनिक न हो कर एक सरकारी नीति ('स्टेट पालिसी') के रूप में चलाया जा रहा है, यही आन्दोलन की निर्बलता है। है भी यह बहुत कुछ सत्य। यदि देखा जावे तो सहकारिता विभाग का रजिस्ट्रार ही आन्दोलन का सर्वेसर्वा है। समितियों का निरीक्षण करना, नई समितियों का रजिस्टर करना, ख़राब समितियों का तोड़ना तथा उनका आडिट कराना उसके मुख्य कार्य हैं। रजिस्ट्रार अधिकतर कोई सिविलियन होता है, अथवा

उसी ग्रेड का कोई कर्मचारी, उसके नीचे डिप्टी रजिस्ट्रार तथा इन्सपेक्टर होते हैं। असिस्टेंट रजिस्ट्रार तथा डिप्टी रजिस्ट्रार प्रान्तीय सिविल सर्विस के होते हैं। कोई भी सिविलियन अधिक दिनों तक रजिस्ट्रार नहीं रह पाता, क्योंकि वह अपनी उन्नति को, आन्दोलन के लिये नहीं छोड़ सकता। फल यह होता है कि रजिस्ट्रार जल्दी जल्दी बदला करते हैं, और एक नीति स्थायी रूप से काम मे नहीं लाई जाती। रजिस्ट्रार को नियुक्त होते समय सहकारिता का ज्ञान नहीं होता, (सर्व श्री कैल्वर्ट. स्टिकलैंड तथा डार्लिंग आदि इसके अपवाद स्वरूप है)। डिप्टी रजिस्ट्रारों को आन्दोलन से कोई विशेष प्रेम नहीं होता, क्योंकि वे दूसरे विभागो में जाने की चेष्टा करते रहते है। एक डिप्टी कलेक्टर डिप्टी रजिस्ट्रार बनने पर प्रसन्न नहीं होता। किसी भी आन्दोलन के लिये यह आवश्यक है कि उसके सचालक उत्साह और लगन के साथ उसमे जुटें। अधिकतर सहकारिता विभाग के कार्यकर्ताओं में इस बात का अभाव है। जो सज्जन इस आन्दोलन में अवैतनिक कार्य करते है, वे सेवाभाव से काम नहीं करते वरन सरकार को प्रसन्न करके पदवी इत्यादि प्राप्त करने के उद्देश्य से करते हैं। यहां यह कह देना आवश्यक होगा कि मदरास तथा अन्य प्रान्तों में भी कुछ ऐसे सज्जन अवश्य मिलेंगे कि जो शुद्ध सेवा भाव से काम कर रहे हैं। श्रीयुत देवधर, सर लल्लू भाई सांवल दास, श्री० एस० एस० तलमाकी, श्रीयुत् राम दास पंतलू, तथा मदरास के श्री टी० के० हनुमत राव और सर्वेन्ट-आफ़-इण्डिया सोसायटी के कार्यकर्ताओं की जितनी प्रशंसा की जावे, वह थोड़ी है, किंतु अधिकतर कार्यकर्ता सेवाभाव से कार्य नहीं करते।

इस सबका फल यह है कि सहकारी साख समिति का सदस्य

समिति को अपनी संस्था न समझ कर सरकारी बैंक समझता है। वह तो समझता है कि जिस प्रकार सरकार तक़ावी बांटती है,उसी प्रकार यह सरकारी बैङ्क ऋण देता है। इसका अर्थ यह है कि सहकारी समिति का सदस्य सहकारिता के मूल सिद्धान्त से अपरिचित है। वह यह नहीं समझता कि सहकारिता का मूल सिद्धान्त स्वावलम्बन है। इस अनभिज्ञता का मुख्य कारण है कि सेन्ट्रल बैंक के कर्मचारी तथा अन्य संगठनकर्त्ता सदस्यों को सहकारिता के सिद्धांतों की शिक्षा नहीं देते, जो अत्यंत आवश्यक है, और जिस पर मैकलेगन कमेटी ने विशेष ज़ोर दिया था। वे सदस्यों को यह नहीं बतलाते कि यह समिति तुम्हारी है, तुम्हीं इसके मालिक हो, तुम इसका प्रबन्ध स्वयं जैसा चाहो कर सकते हो। कारण यह है कि कर्मचारीगण यह समझते हैं कि ऐसा करने से सदस्यों पर रौब नहीं रहेगा, तथा सेन्ट्रल बैंक का रुपया वसूल नहीं होगा। ऐसी परिस्थिति में भला किसान यह कैसे समझ सकता है कि समिति उसी की चीज़ है। और जब तक कि किसान ऐसा न समझने लगें, उनमें स्वावलम्बन के भाव जागृत न हो उठें, तब तक यह आन्दोलन सहकारिता आन्दोलन नहीं कहा जा सकता और सफल नहीं हो सकता। आन्दोलन की प्रारम्भिक स्थिति में सरकारी सहायता की आवश्यकता थी। अब वह बात नहीं रही। अब तो यह विचार ज़ोर पकड़ता जा रहा है कि आन्दोलन को जनता के हाथों में सौंप देना चाहिए; गैर-सरकारी अवैतनिक कार्यकर्ताओं को आन्दोलन में आने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए।

इस सम्बन्ध में एक बात उल्लेखनीय है, कहीं कहीं सहकारी समितियों का उपयोग डिस्ट्रिक्ट बोर्ड, प्रान्तीय कौंसिल, तथा एसेम्बली के चुनाव सम्बन्धी प्रचार में किया जाने लगा है। सेन्ट्रल

बैंकों के डायरेक्टर तथा अन्य प्रभावशाली कार्यकर्ता अपने चुनाव में समितियों का उपयोग करते हैं। पंजाब के रजिस्ट्रार महोदय ने पिछली रिपोर्टों मे इस ओर संकेत किया। अभी तक यह रोग अधिक नहीं है, किन्तु सम्भव है कि भविष्य में यह भयंकर रूप धारण करे, इस कारण अभी से इसे रोकने का प्रयत्न होना चाहिये। कहीं कहीं सहकारी समितियों के द्वारा सरकार राष्ट्रीय आन्दोलनों के विरुद्ध प्रचार कार्य कराती है उससे आन्दोलन जनता की सहानुभूति खो देता है।

सहकारिता आन्दोलन की असफलता का एक कारण सहकारी समिति के साथ असभ्य व्यवहार भी है। बैंक के कर्मचारी उस गांव में पहुँचते हैं, जिसके सदस्यों पर ऋण होता है। बैंक के मैनेजर अथवा प्रबन्धक (सुपरवाइज़र) मालिक की भाँति बैठते हैं और सदस्य हाथ बांध कर दूर खड़ा रहता है, जो समय पर रुपया अदा नहीं कर पाते उन पर फटकार पड़ती है, गाली दी जाती है, और कभी कभी पिटवाया भी जाता है। इससे दो बड़ी हानियां होती हैं, एक तो सदस्य की दृष्टि में समिति का मूल्य नहीं रहता, वह महाजन की तरह ही बैंक के कर्मचारी को ऋण-दाता समझता है। दूसरे जो किसान यह सब देखते हैं, वे यह समझते हैं कि समिति से तो महाजन ही अच्छा है क्योंकि वह सब के सामने अपमानित तो नहीं करता। यही कारण है कि सहकारिता आन्दोलन अभी तक जनता को आकर्षित नहीं कर सका। पंजाब, बम्बई, तथा मदरास को छोड़कर अन्य प्रान्तों में तो सहकारी साख समितियों ने महाजन का ध्यान भी अपनी ओर आकर्षित नहीं किया है। महाजन की स्थिति गाँवों में उतनी ही मज़बूत है, जैसी पहले थी; वह सहकारी साख समितियों से भयभीत नहीं हुआ

है। इन सब बातों से स्पष्ट हो जाता है कि आन्दोलन में जीवन शक्ति की कमी है।

भारतीय सहकारिता आंदोलन की एक कमी यह भी है कि आन्दोलन साख समितियों तक ही सीमित रहा। ग़ैर-साख समितियां सख्या में बहुत कम हैं। बात यह थी कि ग्रामीण-ऋण की इतनी भयङ्कर समस्या सामने उपस्थित थी कि आरम्भ, मे केवल साख समितियाँ ही स्थापित करने का प्रयत्न किया गया और आज कार्यकर्त्ताओं का ध्यान साख समितियों की ओर ही अधिक है। भारतवर्ष जैसे कृषि प्रधान देश में साख समितियाँ अत्यन्त आवश्यक हैं, उनके महत्व को कोई अस्वीकार नहीं कर सकता, किन्तु ग़ैर-साख समितियों की भी उतनी ही आवश्यकता है। गाँव का महाजन किसान को केवल ऋण ही नहीं देता, वह गांव का दूकानदार भी होता है, अर्थात् किसान के हाथ आवश्यक वस्तुएँ बेचता है और उसके खेतों की पैदावार खरीदता है, जब तक कि सहकारी समितियां क्रय-विक्रय को भी अपने हाथ में लेकर महाजन को उसके स्थान से हटा नहीं देती, तब तक महाजन का बल नष्ट नहीं होगा और न किसान की आर्थिक दशा ही सुधर सकती है। गृह-उद्योग धंधों में लगे हुये कारीगरों के लिये भी उत्पादक समितियों की नितान्त आवश्यकता है। हर्ष का विषय है कि कुछ दिनों से सहकारिता विभाग तथा अन्य कार्यकर्त्ता ग़ैर-साख-समितियों की आवश्यकता का अनुभव करने लगे हैं और इस ओर भी प्रयत्न किया जा रहा है।

एक दोष जो कि आन्दोलन में घुस आया है; वह है काग़जी लेन देन। जब समिति के सदस्य रुपया अदा नहीं करते तो समिति बैङ्क से उतना ही ऋण ले लेते हैं जितनी किस्त उन्हें

चुकानी होती है। बैंक के बही खाते में पिछली क़िस्त चुकती दिखा दी जाती है और उतना ही रुपया नये ऋण के रूप में दिखला दिया जाता है। इसका अर्थ यह है कि रुपया वसूल नहीं होता. केवल लिखा पढ़ी कर ली जाती है, और अधिकारियों को धोखा दिया जाता है।

आन्दोलन की निर्बलता का एक कारण यह भी है कि सहकारिता विभाग के कर्मचारी तथा आरगेनाइजर ऊँचे अधिकारियों की दृष्टि में अच्छे कार्यकर्त्ता साबित होने के लिये शीघ्रता पूर्वक, बिना अधिक ध्यान दिये, समितियाँ स्थपित करते चले जाते है। कुछ समय उपरान्त वह कर्मचारी दूसरे स्थान पर चला जाता है। जल्दी में संगठित समिति ठीक तरह से कार्य नहीं करतीं; अन्त में दिवालिया हो जाती हैं। आन्दोलन पर इसका प्रभाव बुरा पड़ता है।

कहीं कहीं पंचायत के सदस्य बेइमानी करते हैं, कहीं कहीं महाजन ही समिति को हथियाने का प्रबन्ध करता है, किन्तु भाग्यवश अब यह दोष कम दृष्टिगोचर हो रहे हैं। परन्तु एक स्थिति भयानक है, कहीं कहीं समिति के प्रभावशाली सदस्य समिति को हथिया लेते हैं और वे ही उससे अधिक लाभ उठाते हैं।

ऊपर की लिखी हुई समालोचना से पाठकगण यह न समझ लें कि आन्दोलन से कोई लाभ ही नहीं हुआ है। यह ठीक है कि आन्दोलन अभी निर्बल है, दोप-पूर्ण-संगठन तथा कार्यकर्त्ताओं की अकर्मण्यता के कारण यह अभी तक सबल नहीं हो सका है। फिर भी आन्दोलन से देश को बहुत लाभ हुआ है। शाही कृषि कमीशन की सम्मति में "सहकारिता आन्दोलन के विषय में जानकारी बढ़ रही है. मितव्ययिता को प्रोत्साहन दिया जा

रहा है। बैंकिंग के सिद्धांतों की शिक्षा दी जा रही है, जहां आन्दोलन की नींव दृढ़ है, वहां महाजन ने सूद की दर घटा दी है, तथा महाजन का प्रभुत्व कम हो गया है। इसका परिणाम यह हुआ है कि किसानों की मनोवृत्तियाँ बदल रही हैं।" आन्दोलन के दोषों की ओर संकेत करते हुये कृषि कमीशन ने कहा है कि आन्दोलन की आर्थिक दशा सन्तोषजनक है; हाँ उसके सञ्चालन मे बहुत से दोष हैं।

अभी तक सहकारिता आन्दोलन का प्रचार बहुत कम हो पाया है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि सहकारी साख समितियाँ ग्रामीण जनता को जितने ऋण की आवश्यकता होती है, उसका केवल पांच फीसदी ऋण देती हैं। सहकारी साख समितियों के सदस्यों को एक शिकायत यह रही है कि जब उनको रुपये की आवश्यकता होती है, तब उन्हें रुपया नहीं मिलता; लिखा पढ़ी तथा जाँच मे बहुत समय लग जाता है। किसान को समय पर रुपया न मिलने पर उसे बहुत कठिनाई होती है, इस कारण विवश होकर उसे महाजन से रुपया लेना पड़ता है।

भारतवर्ष में लगभग ७ लाख गाँव हैं, अधिकाँश (६० प्रति शत) जनसंख्या गाँवों में निवासी करती है। आज हमारे गाँवों की दशा अत्यन्त शोचनीय है, और उनमें रहने वाली जनता के अधिकाँश भाग का जीवन निर्धनता, अज्ञान तथा गन्दगी से भरा हुआ है, उसका शोषण अत्यन्त निर्दयता से हो रहा है। ऐसी दशा में ग्रामीण जनता जीवित है, यही क्या कम आश्चर्य की बात है। आयरिश किसानों के उद्धारकर्त्ता आयरलैंड में सहकारिता आन्दोलन के जन्म-दाता. सर होरेस-प्लैंकट के शब्दों में किसान के उद्धार के लिये तीन वस्तुओं की आवश्यकता

है, अच्छी खेती, अच्छा जीवन तथा अच्छा कारोबार। भारतीय ग्रामीणों को इनकी अत्यन्त आवश्यकता है।

हर्ष का विषय है कि कुछ दिनों से शिक्षित भारतीयों का ध्यान ग्राम-जीवन को सुधारने की ओर गया है। किन्तु ग्राम-सङ्गठन कार्य, सहकारिता के बिना हो ही नहीं सकता। यदि हम चाहें कि हमारे ग्रामीण भाइयों की दशा सुधरे तो हमें सहकारिता आन्दोलन में लग जाना चाहिये। जो चमत्कार सहकारिता आंदोलन ने आयरलैंड, जर्मनी और इटली में कर दिखलाया वह भारतवर्ष में भी हो सकता है। यदि हमारा शिक्षित वर्ग विशेषकर नवयुवक समुदाय इस ओर लग जावे तो थोड़े समय में आन्दोलन गाँवों की काया पलट कर दे। अब हम संक्षेप में यहाँ यह बतलाने का प्रयत्न करेंगे कि सहकारी समितियाँ किस प्रकार स्थापित की जा सकती है।

उत्साही कार्यकर्ता द्वारा सहयोग समिति की स्थापना—यदि कोई शिक्षित कार्यकर्ता गाँव में या शहर में सहकारी समिति की स्थापना करना चाहता है तो उसे नीचे लिखे अनुसार कार्य करना होगा—

(१) सर्वप्रथम कार्यकर्ता को उस गाँव या उस वर्ग की सामाजिक, आर्थिक तथा अन्य समस्याओं को दृष्टि में रख कर यह तय करना चाहिए कि वह किस प्रकार की सहकारी समिति स्थापित करेगा; चकबन्दी समिति, साख समिति, विक्रय समिति आदि। कौन सी समिति किस गाँव के लिए अधिक आवश्यक है यह उस गाँव की स्थानीय बातों पर निर्भर रहेगी।

(२) इसका निर्णय करलेने के उपरान्त कि कौन-सी समिति स्थापित की जाय, कार्यकर्ता को चाहिए कि वह गाँव वालों को उस समिति का उद्देश्य, उसकी स्थापना से होने वाला लाभ और

उसके सदस्यों को क्या करना होगा, इत्यादि बातें भली भाँति समझावे। समिति का विधान कैसा होगा, प्रत्येक सदस्य का क्या कर्तव्य होगा, उसकी जिम्मेदारी क्या होगी, यह भी बतला देना आवश्यक है। इस प्रकार उसे २५ या ३० सदस्यों को तैयार करना चाहिए। यद्यपि कानून के अनुसार केवल १० सदस्य ही आवश्यक हैं, परन्तु व्यवहार में सहकारिता विभाग समिति की स्थापना के लिए २५ सदस्य आवश्यक समझता है।

(३) जब सदस्य तैयार हो जावें तो कार्यकर्ता को चाहिये कि वह उस जिले के सहकारी विभाग के इन्स्पेक्टर या आरगेनाइजर से मिले और उसकी सहायता से उस समिति के उपनियम इत्यादि बना ले। उपनियम बनाने की सबसे सरल विधि यह है कि कार्यकर्ता सहकारिता विभाग के जिला इन्स्पेक्टर से या जिला सहकारी बैङ्क के दफ़्तर से "कोआपरेटिव मैनुअल" नामक पुस्तक ले ले। उस पुस्तक में सब प्रकार की समितियों के माडेल यानी नमूने के उपनियम दिये रहते हैं। मेनुअल के विधान और उपनियमों की नकल कर लें और आवश्यकता हो तो उसमें कुछ परिवर्तन कर ले।

(४) इतना कर चुकने के उपरान्त कार्यकर्ता को उस प्रान्त या राज्य के सहकारिता विभाग के सर्वोच्च अधिकारी रजिस्ट्रार को इस आशय का प्रार्थना पत्र लिखना चाहिये कि निम्नलिखित व्यक्ति अमुक सहकारी समिति की स्थापना करना चाहते हैं। प्रस्तावित समिति का विधान तथा उपनियम साथ में भेजना चाहिये। समिति के होने वाले सदस्यों के नाम, उपनियमों की नक़ल, गाँव, जिला इत्यादि सभी लिख भेजना चाहिए।

(५) रजिस्ट्रार उस जिले के सहकारिता विभाग के इस्पेक्टर को आदेश देगा कि वह जाकर जाँच करे कि उक्त गांव के

लोग वास्तव में सहकारी समिति की स्थापना करना चाहते हैं, और वे उस प्रकार की समिति के उद्देश्य या लाभों को समझते हैं या नहीं। जब इंस्पेक्टर जाँच कर लेता है और अनुकूल रिपोर्ट दे देता है तो रजिस्ट्रार समिति को रजिस्टर कर लेता है, रजिस्टर हो जाने के उपरान्त समिति काम करने लगती है।

रजिस्टर होने पर समिति की साधारण सभा बुलाई जाती है, जिसमे अन्य बातों के अतिरिक्त पंच, सरपञ्च तथा मन्त्री का चुनाव होता है और कार्य आरम्भ हो जाता है।

कार्य किस प्रकार रखा जावे, हिसाब किस प्रकार रखा जावे, तथा अन्य प्रकार की लिखा पढ़ी का कार्य किस प्रकार किया जावे, इसकी शिक्षा सहकारिता विभाग के कर्मचारी अरगेनाइज़र और इंस्पेक्टर देते हैं। यह उनका मुख्य कार्य है उसकी कोई चिन्ता न करनी चाहिए।

समिति का हिसाब रखने के लिये तथा अन्य कार्यों के जो रजिस्टर इत्यादि होते है, वे सहकारिता विभाग के द्वारा ख़रीदे जा सकते हैं।

(६) कार्यकर्ता को यह बात ध्यान में रखनी चाहिये कि सहकारी समिति की सफलता उसके सदस्यो में सहकारिता की भावना के जागृत होने पर निर्भर है। अतएव उसे सदस्यों को सदैव समिति के कार्य में भाग लेने और उसके उद्देश्य प्रचार में सहयोग प्रदान करने के लिये प्रोत्साहित करते रहना चाहिए, उसे सदस्यों पर अपनी सम्मति लादने की चेष्टा न करनी चाहिए, वरन् सब सदस्यों को अपनी स्वतन्त्र सम्मति प्रकट करने देना चाहिए। सदस्यों में यह भावना जागृत होना चाहिए कि समिति उनकी अपनी संस्था है और वे हैं उसके मालिक। स्वावलंबन की भावना के जगाये बिना सहकारिता आन्दोलन को सफलता प्राप्त नहीं

हो सकती।

(७) जब कार्यकर्ता कोई समिति खोलना चाहेगा तो महाजन, ज़मींदार, पटवारी तथा अन्य स्थिर स्वार्थ वाले लोग उसका विरोध करेंगे। इस लिए कार्यकर्ता को बड़ी सावधानी से कार्य करना चाहिए। होने वाले सदस्यों को सब बातें समझाकर समिति का सदस्य बनने के लिए तैयार करना उसका काम है। आवश्यकता इस बात की है कि जहाँ तक हो सके आरम्भ में जब तक कि समिति का सगठन दृढ़ न हो जावे, स्थिर स्वार्थ वाले लोगों के विरोध को बचाया जावे।

कार्यकर्ता यदि समिति को स्थापित करने में इतना झंझट तथा लिखा पढ़ी न करना चाहे तो एक और भी सरल उपाय है। वह गाँव वालों से बात चीत करके उन्हें समझा बुझाकर समिति का सदस्य बनाने के लिए तैयार कर ले। फिर यदि वह चाहे तो उस सर्किल या जिले के कोआपरेटिव इंस्पेक्टर से मिल ले या उसको पत्र लिखकर गाँव की आवश्यकता तथा गाँव वालों की रजामंदी बताकर उससे एक समिति उसके गाँव में स्थापित करने के लिये कहे। सहकारिता विभाग के कर्मचारियों का यह मुख्य काय है। अतएव जैसे ही इंस्पेक्टर को यह सूचना मिलेगी कि अमुक गाँव में समिति के स्थापित होने की सम्भावना है, वह उस क्षेत्र के आरगेनाइजर को उस गाँव में भेजेगा। आरगेनाइजर पहले इस बात की जाँच करेगा कि उस गाँव में उस समिति के सफल होने की सम्भावना है अथवा नहीं। फिर वह वहाँ के निवासियों को समिति के उद्देश्य, उसके सदस्य होने से लाभ तथा उनके कर्तव्य समझाकर उन्हें सदस्य बनने के लिये प्रोत्साहित करेगा।

जब आरगेनाइजर सब प्रारम्भिक कार्यवाही कर चुकेगा तो वह इंस्पेक्टर को सूचित कर देगा कि समिति स्थापित कर दी

जाय। इंस्पेक्टर स्वयं उस गाँव में जाकर एक बार जाँच कर लेगा, फिर रजिस्ट्रार को अनुकूल रिपोर्ट कर देगा और समिति रजिस्टर कर ली जावेगी। तदुपरान्त समिति की देख भाल सहकारी विभाग के कर्मचारी करते रहेंगे। वे पंचों को सब प्रकार का परामर्श और सहायता देते रहते हैं।

यदि अशिक्षित ग्रामीण व्यक्ति अपने गाँव में समिति खुलवाना चाहे तो उन्हें एक प्रार्थना पत्र इस आशय का कि हम अपने गाँव में अमुक सहकारी समिति खुलवाना चाहते हैं, सहकारिता विभाग के रजिस्ट्रार या उस जिले के इंस्पेक्टर को भेजना चाहिए। और अच्छा हो कि उनमें से कोई एक इंस्पेक्टर से स्वयं मिलकर उसे सब बातें बतला दे। यदि सहकारिता विभाग के कर्मचारियों को विश्वास हो गया कि उस गाँव में समिति सफलतापूर्वक स्थापित की जा सकती है तो वे उसको स्थापित कर देंगे।

सहकारिता आन्दोलन का भविष्य—सच तो यह है कि सहकारिता आंदोलन की सफलता की जांच, समितियों की संख्या, सदस्यों की संख्या और कार्यशील पूँजी से नहीं लगाई जा सकती। उसकी जाँच तो केवल इससे ही हो सकती है कि जिन लोगों की आर्थिक दशा को सुधारने के लिए उसको देश में चलाया गया है, उसकी दशा कुछ सुधर रही है या नहीं। जब तक कि सहकारिता आंदोलन ग्रामीण जनता, कारीगर और कारखानों के मजदूरों की आर्थिक स्थिति में पर्याप्त सुधार करने में सफल नहीं होता, तब तक वह सफल नहीं कहा जा सकता, यद्यपि सहकारिता आन्दोलन में बहुत से दोष हैं जिनके कारण वह इस देश में सफल नहीं हुआ, किन्तु ऐसा कहते समय हम लोग एक अत्य-

न्त महत्वपूर्ण बात को भूल जाते हैं। सहकारिता आन्दोलन तब तक इस देश में अधिक उन्नति नहीं कर सकता जब तक कि साधारण ग्रामीण का बजट घाटे का बजट रहेगा। जहाँ प्रतिवर्ष घाटा ही घाटा हो, खर्च से आमदनी कम हो, वहां सहकारिता आन्दोलन उस घाटे को मुनाफे में कैसे परिणत कर सकता है। सच तो यह है कि साख आन्दोलन खेती की उन्नति के साथ बंधा हुआ है। जब तक कि खेती का धंधा पनपता नहीं, तब तक सहकारिता आन्दोलन भी नहीं पनप सकता। आज तो भारतीय किसान इस लिए ऋण लेता है कि बिना ऋण लिए उसका काम ही नहीं चल सकता। अतएव जब तक उसकी आर्थिक स्थिति को नहीं संभाला जाता, तब तक उसको ऋणी होने से नहीं बचाया जा सकता।

किसान की आर्थिक स्थिति को सम्हालने के लिए देश की अर्थनीति में मौलिक परिवर्तन होने की आवश्कता है और वह तभी सम्भव है जब कि जनता और सरकार के आर्थिक और राजनैतिन स्वार्थ एक हों। ऐसा होने पर ही सहकारिता आन्दोलन पूर्णतया सफल हो सकता है।

शब्दावली

इस पुस्तक में जो पारिभाषिक शब्द आये हैं, उनके लिए भारतीय ग्रन्थमाला की 'अर्थशास्त्र शब्दावली' पुस्तक देखना बहुत उपयोगी होगा। यहाँ कुछ खास खास हिन्दी शब्दों के बारे में यह बताया जाता है कि वे अंगरेजी के किन किन शब्दों की जगह काम में लाये गये हैं।

अपरिमित दायित्व	Unlimited liability
आय व्यय की जांच	Auditing
आर्थिक	Economic
उत्पत्ति	Production
उत्पादक	Productive, Producer
उपभोक्ता	Consumer
उपभोग	Consumption
एकाधिकार	Monopoly
औद्योगिक संगठन	Industrial organisation
क्रय-विक्रय समितियां	Purchase and Sale Societies
कार्यशील पूँजी	Working capital
ग़ैर-साख-समितियां	Non-Credit-Societies
गृह-उद्योग-धन्धे	Cottage-industries

गृह-निर्माण समिति	House-building Society
घन फुट	Cubic foot
चल पूँजी	Fluid Capital
चल सम्पत्ति	Moveable Property
चालू जमा	Current deposit
ज़मानत	Security
ट्रेड यूनियन	Trade Union
दायित्व	Liability
देनी	Liabilities
द्रव्य बाज़ार	Money market
धन वितरण	Distribution of wealth
नक़द साख	Cash-credit
निरीक्षण कौंसिल	Supervising Council
परिमित दायित्व	Limited Liability
पूँजीपति	Capitalist
प्रतिद्वंदिता, प्रतिस्पर्धा	Competition
प्रारम्भिक सहकारी समिति	Primary co-oprative Society
बट्टा खाता	Bad debt
भूमि बन्धक बैंक	Land Mortgage Banks
मिश्रित पूँजी वाली कम्पनी	Joint Stock Company
मुद्दती जमा	Fixed deposit

रहन सहन सुधार समितियां	Better-living Societies
रक्षित कोष	Reserve Fund
लगान क़ानून	Tenancy Act
लायसैंस	License
लेनी	Assets
लेनी देनी का लेखा	Balance Sheet
विनिमय	Exchange
विनिमय व्यापार	Exchange business
शक्तातिजीवन	Survival of the fittest
श्रमजीवी	Labourer
श्रम विभाग	Division of labour
श्रम समितियां	Labour Societies
सहकारिता	Co-operation
सहकारिता आन्दोलन	Co-operative movement
साख	Credit
साधारण साख	Normal credit
साम्यवाद	Socialism
सुरक्षित कोष	Reserve Fund
संघ	Federation
संतुलन	Balancing
स्थिर सम्पत्ति	Immoveable property